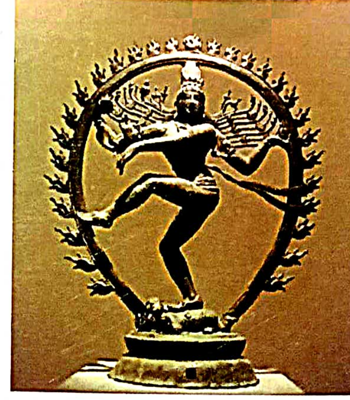


साहित्यशास्त्रीयराष्ट्रियशोधसङ्गोष्ठी



नाट्यशास्त्रोक्ततत्त्वानाम् अनुशीलनम्

गोष्ठीगव्यम्

२०१५-१६

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(विश्वविद्यालयसमम्)

(भारतसर्वकारस्य मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)

(NAAC द्वारा 'ए' श्रेण्यां प्रत्यायितम्)

क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्, विद्याविहार:, मुम्बई-७७

दूरभाष:- ०२२-२१०२५४८५, २१०२५४५२

गोष्ठीगव्यम्

साहित्यराष्ट्रियसंगोष्ठी

2015-16

नाट्यशास्त्रोक्ततत्त्वानाम् अनुशीलनम्

संगोष्ठीसंरक्षकः

प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री

कुलपतिः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली

संगोष्ठीसमितेः अध्यक्षः

प्रो. एम्. चन्द्रशेखरः

प्राचार्यः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,

क.जे.सोमैया संस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई

प्रधानसम्पादकः मुख्यसंयोजकश्च

प्रो. ई. एम्. राजन्,

साहित्यविभागाध्यक्षः

सम्पादकः संयोजकश्च

डा. नारायणन्. ई. आर्.

सहसम्पादकाः

डा. स्वर्गकुमारमिश्रः

डा. एम्. सुदर्शनचिपळूणकरः

डां. राकेशकुमारजैनः



साहित्यविभागः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,

क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्

विद्याविहारः, मुम्बई।

पत्रिका नाम- **गोष्ठीगव्यम्**

प्रसङ्गः- राष्ट्रियसाहित्यसङ्गोष्ठ्यां प्रस्तुतानि शोधलेखनानि।

विषयः- **नाट्यशास्त्रोक्ततत्त्वानाम् अनुशीलनम्**

© प्रकाशकः- साहित्यविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,
क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्।

संगोष्ठीसंरक्षकः - प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री
कुलपतिः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली

संगोष्ठीसमितेः अध्यक्षः - प्रो. एम्. चन्द्रशेखरः
प्राचार्यः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,
क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

प्रधानसम्पादकः मुख्यसंयोजकश्च- प्रो. ई. एम्. राजन्
साहित्यविभागाध्यक्षः।

सम्पादकः संयोजकश्च- डा. नारायणन्. ई. आर्.

सहसम्पादकाः- डा. स्वर्गकुमारमिश्रः
डा. एम्. सुदर्शनचिपळूणकरः
डा. राकेशकुमारजैनः

प्रकाशनावधिः - 2015-16
अनुकृतयः- 200
अक्षरसंयोजनम्- साहित्यविभागः, रा. सं. सं., मुम्बई
मुद्रकः- वन्दना आर्ट्स्, मुम्बई




01 12 2015


01 12 2015

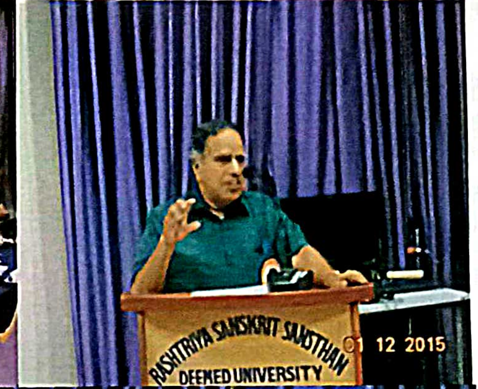

01 12 2015


01 12 2015

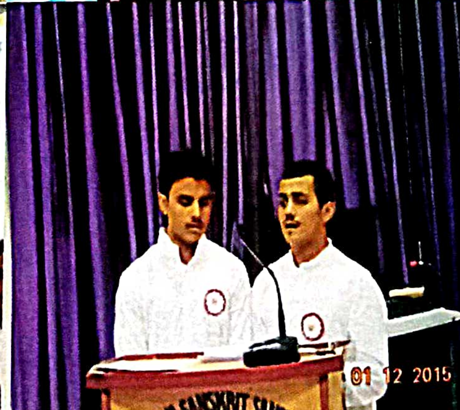

DEEMED UNIV
UNDER MHRD.G
01 12 2015

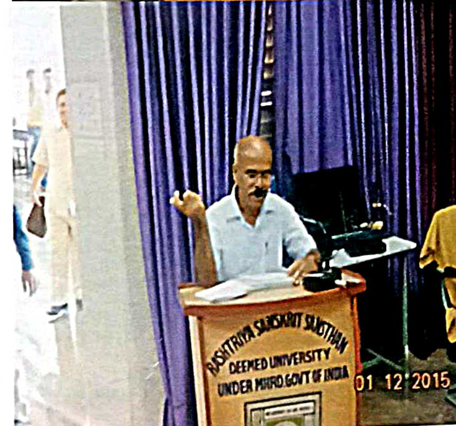

01 12 2015

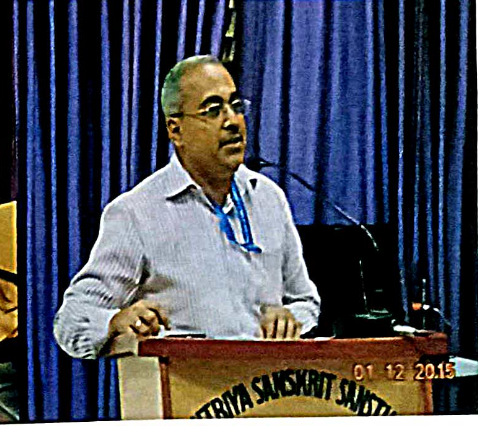

01 12 2015


RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
01 12 2015


01 12 2015


01 12 2015


RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
UNDER MHRD.GOVT OF INDIA
01 12 2015


01 12 2015



पुरोवाक्

अपूर्वं वस्तु निर्मातुं कवेरशक्तिप्रदायिनी।
मिथोऽर्धं तनुमास्थाय दीव्यन्तौ दम्पती भजे।

विदितमिदं समेषां यत्साहित्यमालोचनामृतमिति। तदाहुर्मनीषिणः-

सङ्गीतमथ साहित्यं सरस्वत्याः स्तनद्वयम्। पूर्वमापातमधुरमन्यदालोचनामृतमिति।

आलोचनेह पुनः पुनरनुसन्धानम्। भावनाऽपर्यायमिति वदति पण्डितराजः। नाट्यं साहित्यस्य व्याप्यो धर्मः। यत्साहित्यपदेन काव्यं दृश्य-श्रव्यात्मकं समस्तं व्याप्नोतीति तद्व्यापकं तदेकदेशीति नाट्यं व्याप्यम्। प्रवृत्तसङ्गोष्ठ्यां विषयः नाट्यशास्त्रसम्बन्धी।

भरतमुनिना सङ्ग्रथितं नाट्यशास्त्रम् उपलब्धग्रन्थेषु प्रथमं विस्तृतञ्च, यत्र षट्त्रिंशदध्यायाः वर्तन्ते। नाट्यस्य सर्वे विषयाः यत्राध्यायेषु विभक्तास्सन्ति। नाट्यशास्त्रे नाट्यसम्बन्धिनः- नाट्येतरसम्बन्धिनश्च विषयाः दरीदृश्यन्ते। तत्र नाट्यमण्डपनिर्माणादि नाट्यमात्रसम्बन्धि, किन्तु रस-भावादिविषयकोऽध्यायः काव्यमात्रसम्बन्धी।

नाट्यशास्त्रे क्वचित्सूत्रैर्विषयोल्लेखः क्वचिच्च कारिकाभिः। तत्र षष्ठेऽध्याये रसनिष्पत्तिप्रतिपादकं रससूत्रं बहुभिर्बहुधा चर्चितम्। तेषु आचार्यलोल्लट-शङ्कुक-भट्टनायकाऽऽनन्दवर्धनाः मुख्याः। तत्रापि आचार्याभिनवगुप्तमतं प्रायेण सर्वैरङ्गीकृतम्।

क. जे. सोमैयापरिसरे प्रवृत्तायां द्विदिवसीय-नाट्यशास्त्रविषयक-सङ्गोष्ठ्यां भारतस्य नानाकोणेभ्यो राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानपरिसरेभ्यः विद्वांसस्समायाता इतीयं राष्ट्रियसङ्गोष्ठीति निश्चप्रचम्।

यया भागग्रहीतारः उपकृता स्युरिति मत्याऽऽस्माभिरियं समायोजिता। न केवलमेतेऽपि तु श्रोतारः व्युत्पित्सवः छात्रा अपि नवीकृताऽवर्तन्त। अत्रैतस्याः सङ्गोष्ठ्याः समायोजनेऽनुज्ञां कृतवते राष्ट्रिय-संस्थानकुलपतये आचार्याय परमेश्वरनारायणशास्त्रिणे तथौचित्येन समायोजनं विधातुं कृतभूरिपरिश्रमाय प्राचार्याचार्याय एम्. चन्द्रशेखराय परिसरीयाचार्येभ्यः कर्मचारिभ्यः छात्रेभ्यः च हार्दकृतज्ञतां विधाय सङ्गोष्ठीगव्यमिदं विदुषां समक्षं समर्पयामि।

इत्थम्-

विद्वद्जनविधेयः-

प्रो. राजन्. ई. एम्.

(साहित्यविभागाध्यक्षः)

विद्याविहारः

दि. 05-01-2016

लेखानुक्रमणिका

सं. शोधपत्रनाम	लेखकनाम	पृष्ठानि
1. नाट्यशास्त्रीयरसस्वरूपविमर्शः	प्रो. विद्यानन्दझाः	1-9
2. नाट्यशास्त्रे धर्मिविचारः	आचार्यः केशवन्. के. पि.	10-12
3. उत्तररामचरिते नाट्यतत्त्वानि	प्रो. सुर्यमणिरथः	13-20
4. धर्मीद्वयानुशीलनम्	आचार्या इन्दिरा पि.	21-25
5. नाट्यशास्त्रप्रोक्तस्यातोद्यविधेः समीक्षणम्	डा. नारायणन्. ई. आर्.	26-29
6. त्रिभाषासूत्रस्वरूपम्	गुलाम दस्तगीर विराजदार	30-32
7. संस्कृतरूपकेषु आस्वादोपयोगितया वाचिकाभिनयस्य निर्वाहः	डा. राघवेन्द्रभट्टः	32-35
8. नाट्यशास्त्रे प्रवृत्तिविवेचनम्	डा. रत्नमोहनझाः	36-41
9. भरतमुनिप्रोक्तं वृत्तिस्वरूपम्	डॉ. सनन्दनकुमारत्रिपाठी	42-48
10. साम्प्रतिकाभिनेयकाव्ये निषिद्धदृश्यं तत्प्रभावश्च	डा. स्वर्गकुमारमिश्रः	49-53
11. नाट्यशास्त्रानुसारं सप्रभेदमाहार्याभिनयस्यानुशीलनम्	डा. राकेशकुमारजैनः	53-61
12. नाट्यशास्त्रानुसारं यक्षगाने आहार्याभिनयस्यानुशीलनम्	डा.एम्.सुदर्शनचिपळूणकरः	61-63
13. नाट्यशास्त्रोक्ततत्त्वेषु एकोनपञ्चाशद्भावानाम् अनुशीलनम्	योगेन्द्रकुमारः	64-70
14. नाट्यशास्त्रानुसारम् अमरुशतकस्थ-नायिकाभेदसमीक्षणम्	अश्विनीकदम	70-74
15. नाट्यशास्त्रोक्त 'भाव'	हितेश त्रिवेदी	74-78
16. नाट्यशास्त्रदिशा शान्तरसनिरूपणम्	सत्यनारायणः	79-80
17. मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.एस. में नाट्यसंधियों का निर्वहण	राजेश कुमार मिश्र	81-84
18. नाट्यशास्त्रीय तत्वों के आलोक में "शोले" चलचित्र की समीक्षा	ब्रिजेश कुमार मिश्र	84-88
19. नाट्यशास्त्रोक्तरससूत्रव्याख्यानम्	श्री जीतेन्द्र कुमार गुप्ता	88-89
20. भरतकृतं रससूत्रं तत्समीक्षणञ्च	स्मिताकुमारी सामन्तराय	90-91
21. नाट्यशास्त्रदिशा शृङ्गाररसनिरूपणम्	रविकुमारः	91-92
22. आचार्य तुलसी प्रणीत संस्कृत साहित्य-काव्यशास्त्रीय समीक्षा रस के संदर्भ में	डा. प्रकाश वर्मा सोनी	93-100

नाट्यशास्त्रीयरसस्वरूपविमर्शः

प्रो. विद्यानन्द झाः
प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
भोपाल परिसर, भोपाल

रस शब्द संस्कृतवाङ्मय के अत्यन्त प्राचीन शब्दों में से अन्यतम है जिसका प्रयोग वेदों में हुआ है तथा साहित्य के विकास के साथ इसके अर्थ में भी परिवर्तन होते गये हैं। चुरादिगण की आस्वादनार्थक रस् धातु से घ प्रत्यय करने पर 'रस' शब्द बना है। 'रस्यते आस्वाद्यते' इस निरुक्ति से जिसका आस्वादन किया जाय, वह रस है। रसतीति रसः अर्थात् जो आस्वाद प्रदान करे यह भी निरुक्ति स्वीकार की गयी है। इस प्रकार आस्वादन की क्रिया का विषय रस है। इस दृष्टि से स्थूल जगत् के समस्त भोग्य विषयों को पाँच श्रेणियों में रखा गया हैउनमें एक र-स है। अमरकोष में कहा हैरूपं शब्दो गन्धरसस्पर्शाश्च विषया अमी। गोचरा इन्द्रियार्थाश्च।-[1]

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धये पाँच विषय आकाष-, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीइन पाँच महाभूतों से संबद्ध हैं। रस का - संबंध जल से है, अतः जल के अर्थ में रस उपचरित प्रयोग किया गया ऐसा प्रतीत होता है। काव्य में-'रस' शब्द का प्रयोग विष के अर्थ में हुआ है तथा मदनरस का मादक विष के अर्थ में। मुद्राराक्षस नाटक के लेखक ने विष के अर्थ में रस का प्रयोग किया है-
ये मन्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिताः।[2]

वेद में रस का उत्स है, जो साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है रसराज 'शृङ्गाररस ' की चर्चा कई मन्त्रों एवं मन्त्रखण्डों में हुई हैआ जाया युवते पतिं परिदाय रसं दुहे -[3] यहाँ रस प्रणयजन्य सुख का द्योतक है।
वेदों में रस का प्रयोग सोमरस, जल एवं दूध के लिए हुआ है। यद्यपि वहाँ रस का शास्त्रीय विवेचन नहीं किया गया, फिर भी विभिन्न रसों के उदाहरण भरे पड़े हैं।

अथर्ववेद में इसका अर्थ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता गया और वहाँ सोमरस से उसमें शक्ति, मद एवं आह्लाद का समावेश हुआ। यह आह्लाद अन्त में जीवन का आह्लाद न होकर आत्मा के आह्लाद के रूप में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार का विकास स्पष्टतः अथर्ववेद में दिखाई पड़ता है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्च नोनः।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥[4]

उपनिषद् तक आतेआते रस के अर्थविकास में सूक्ष्मता आती गई और तैत्ति-रीय उपनिषद् में इसका प्रयोग नित्य ब्रह्म के लिए हुआ है। जैसेरसो वै सः। तं लब्ध्वा आनन्दीभवति। रसो वै आनन्दः।-[5]

उपर्युक्त विवेचन से रस के विषय में दो अवधारणाएँ सामने आती हैं। एक में वह किसी भी पदार्थ का निचोड़ या सार है, जिसमें आस्वाद्यता या आनंद प्रदान करने की क्षमता है। उपनिषद् में रस को सारभूत तत्त्व माना गया हैरसः सारः चिदानन्दप्रकाशः। रसो वै सः। - रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।[6]उपनिषद् युग तक रस शब्द अपने मुख्य अर्थ से ऊपर उठ कर सूक्ष्म अर्थ का द्योतक हो गया है और उसे प्राणस्वरूप स्वीकार किया गया। प्राणो वा अंगानां रसः।[7]

इस प्रकार वेदों से उपनिषदों तक रस का अर्थविकास भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता गया, किन्तु काव्यशास्त्रीय अर्थ में रसशब्द का प्रयोग इन ग्रन्थों में नहीं हुआ। उपनिषदों में आनन्द की चरमसीमा की प्राप्ति के रूप में वर्णन कर ऋषियों ने परवर्ती आचार्यों का मार्ग प्रशस्त कर दिया कि यह ब्रह्मास्वादसहोदर है। पण्डितराज जगन्नाथ का विवेचन बहुत कुछ उपनिषदों में विवेचित मान्यताओं के ही आधार पर अधिष्ठित है।

इसी से जुड़कर दूसरी अवधारणा आती है, जो रस को आस्वाद रस या आनंदरूप-अपूर्व तत्त्व के रूप में देखती है। रसात्मक तत्त्व के ये दो पक्ष कहे जा सकते हैं और रस की यह द्विपक्षीय धारणा नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र में भी संक्रांत हुई है।

नाट्य के क्षेत्र में रस

रसशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत ने)6.16) आठ रसों का निरूपण करने वाले अपने पूर्ववर्ती आचार्य द्रुहिण का उल्लेख किया है। भावों से रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया वासुकि नाम आचार्य ने समझाई थी, इसका उल्लेख शारदातनय ने किया है-
नानाद्रव्यौषधैः पाकैर्व्यञ्जनं भाव्यते यथा।
एते भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह।

इति वासुकिनाप्युक्तो भावेभ्यो रससंभवः॥[8]

रसोत्पत्ति के विषय में उन्होंने वासुकि के साथ नारद का भी स्मरण किया है-

उत्पत्तिस्तु रसानां या पुरा वासुकिनोदिता।
नारदस्य मते सैषा प्रकारान्तरकल्पिता॥[9]

विभिन्न ग्रन्थों मे भरत के पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिनमें वासुकि, सदाशिव, अगस्त्य, व्यास, नन्दिकेश्वर, वृद्ध भरत, आंजनेय आदि मुख्य हैं। जनश्रुति के आधार पर नन्दिकेश्वर रस के तथा भरत नाट्यशास्त्र के आचार्य माने गए हैं। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में काव्यपुरुष के जन्म की कहानी दी है, जिसमें कहा गया है कि काव्यपुरुष ने काव्यशास्त्र के अठारह अधिकरणों को लिखने के लिए अपने अठारह शिष्यों को नियुक्त किया था, उनमें नन्दिकेश्वर ने रस एवं भरत ने नाट्यशास्त्र का प्रणयन किया।

रूपकनिरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः।[10]

भरत ने नाट्यशास्त्र के छठे एवं सातवें अध्याय में रस का विस्तार के साथ विवेचन किया है जो नाट्य एवं रंगमंच को दृष्टि में रख प्रस्तुत किया गया है। उक्त ग्रंथ के दोनों अध्याय 'रसविकल्प' एवं 'भावव्यंजक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। नाट्यशास्त्र में रस का विवेचन अत्यन्त ही व्यापक एवं व्यवस्थित है, जिसे देख कर उससे पूर्ववर्ती सिद्धान्तों की प्रौढ़ता का भी ज्ञान होता है कि नाट्यशास्त्र कोई आकस्मिक कृति नहीं है। इन्होंने आठ ही रस माने हैं तथा प्रत्येक रस के विभाव, अनुभाव, संचारीभाव एवं स्थायीभावों तथा सात्त्विक भावों का भी परिचय दिया है। इन्होंने रसों के भेद, वर्ण तथा देवताओं का भी उल्लेख किया है।

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।[11]

नाट्यशास्त्र में मुख्य चार ही रस माने गये है शृङ्गार, रौद्र वीर एवं बीभत्स। इन्हीं चार रसों से अन्य चार रसों की उत्पत्ति हुई। जैसे शृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत एवं बीभत्स से भयानक की।

शृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः। वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः॥[12]

इन्होंने रसों के रंगों का वर्णन करते हुए कहा है कि शृङ्गार का श्याम, हास्य का श्वेत, करुण का कपोत वर्ण, रौद्र का रक्त, वीर का गौर, भयानक का काला, बीभत्स का नीला एवं अद्भुत का पीत वर्ण होता है।[13] इसी प्रकार शृङ्गार के देवता विष्णु, हास्य के प्रमथ, रौद्र के रुद्र, करुण के यम, बीभत्स के महाकाल, भयानक के काल, वीर के महेन्द्र एवं अद्भुत के देवता ब्रह्मा हैं।

इन्होंने भावों की संख्या 46 बताई है स्थायीभाव -8, व्यभिचारिभाव 33 एवं सात्त्विकभाव 8। इस प्रकार भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है अर्थात् स्थायीभाव अन्य 41 भावों के साथ मिलकर रसत्व को प्राप्त होता हैभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।विभावानुभावव्य-[14]

भरत ने कवि के आंतरिक भावों या मानसिक आवेगों को भाव की संज्ञा दी है। उन्होंने भाव की व्युत्पत्ति देते हुए कहा हैवाचिक-, आंगिक एवं सात्त्विक अभिनयों के द्वारा सामाजिक के हृदय में काव्यार्थ का भावन कराने वाले या आस्वादयोग्य बनाने वाले को भाव कहते हैं।

भावयन्तीति भावाः। उच्यते वागङ्गसत्त्वोपैतान्काव्यार्थान्भावयन्तीति भावाः[15] इति।

इन्होंने सात्त्विकभावों को भी भाव की संज्ञा दी है जबकि परवर्ती आचार्यों ने इन्हें अनुभाव के अन्तर्गत रखा है। ये मानसिक आवेगों को ही भाव कहते हैं। जैसे-

वागङ्गमुखरागैष्च, सत्त्वेनाभिनयेन च। कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते॥
विभावेनाहतो योऽर्थस्त्वनुमानेन गम्यते। वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥[16]

विभाव को इन्होंने रस का कारण माना है। इसलिए विभाव को कारण, निमित्त एवं हेतु का पर्याय कहा है। नाटक में वाचिक, आंगिक एवं सात्त्विक अभिनय का विशेषरूप से ज्ञान कराने वाले तत्त्व को विभाव कहते हैं। जैसा कि कहा गया है -

विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यन्तेऽनेन वागङ्गसत्त्वाभिनया इत्यतो विभावः।[17]

रस के स्वरूप पर विचार करते हुए भरत ने कहा है कि जिसका आस्वादन किया जाय वह रस है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खाने वाले व्यक्ति अन्न के रस का आस्वादन करते हैं उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों एवं अभिनयों के द्वारा किये गये वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से युक्त स्थायीभावों का सामाजिक आनन्द प्राप्त करते हैं। इन्होंने रस के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए पाकरस का दृष्टान्त उपस्थित किया है।-

रस इति कः पदार्थः? उच्चते आस्वाद्यत्वात्। कथम् आस्वाद्यते रसः? यथाहि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति हर्षादींश्चाधिगच्छन्तीति सुमनसः पुरुषा इत्यभिव्याख्याताः। तथा नानाभावाभिनयव्यंजितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति हर्षादींश्चाधिगच्छन्तीति प्रेक्षकाः 'सुमनस' इत्यभिव्याख्याताः।[18]

भरत के नाटयशास्त्र के बाद भामह के 'काव्यालंकार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रससिद्वान्त के प्रति भामह का दृष्टिकोण एक विरोधी विचार के जैसा है। ये रससिद्वान्त के पोषक न होकर उसके विरोधी हैं। इनके अनुसार उत्तम काव्य के लिए अलंकार एक आवश्यक तत्त्व है। उन्होंने काव्य में रस को गौण स्थान दिया है।

इन्होंने रस की सीमा को संकीर्ण कर उसे कतिपय अलंकारों में अन्तर्भूत कर दिया है। ऐसे अलंकारों में प्रेयस्, रसवत् एवं ऊर्जस्वी हैं।

रसवद्दर्शितस्पष्टशृङ्गारादिरसं यथा। देवी समागमद्धर्ममस्करिण्यतिरोहिता॥[19]

अर्थात् रसवत् अलंकार वहाँ होता है जहाँ शृङ्गारादि रस स्पष्ट रूप से दिखाये गये हों।

फिर भी विवेचन में भामह ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। महाकाव्य के लिए वे समस्त रसों के विधान की अनिवार्यता सिद्व करते हैं। जिस प्रकार महाकाव्य के लिए सर्गबद्धता, शब्द एवं अर्थ सौष्ठव, पंचसंधियों का गठन तथा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग आवश्यक है, उसी प्रकार सकल रसों का समावेश भी अनिवार्य है।

युक्तं लोकस्वभावेन रसैष्च सकलैः पृथक्।[20]

इतना होने पर भी भामह का दृष्टिकोण रसवादी नहीं कहा जा सकता। वे भरतविरोधी आचार्य हैं तथा विभाव को ही रस मानते हैं। -

भामह के बाद दूसरे प्रधान आचार्य है दण्डी जो भामह की भाँति अलंकार को ही काव्य का मुख्य तत्त्व मानते हैं। वैसे वे गुण का ही अधिक समर्थन करते हैं। रस के प्रति इनकी दृष्टि भामह से साम्य रखती है अर्थात् ये भी रसों को अलंकारो में समाहित कर देते हैं फिर भी ये कविता में रसों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

गुणों को काव्य की आत्मा मानते हुए भी कवि होने के नाते वे रसों के महत्त्व को समझ कर उन्हें गुणों के समान ही काव्य का आवश्यक अंग मानते दिखाई पड़ते हैं।

प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद्रसपेशलम्। ऊर्जस्विरूढाहङ्कारयुक्तोत्कर्षं च तत्त्रयम्॥

उन्होंने बताया है कि रसवत् रचना में माधुर्य गुण का समावेश रहता है। इन्होंने प्रकारान्तर से रस एवं गुणों के पारस्परिक सम्बंध को भी स्वीकार किया है।

मधुर गुण का सम्बन्ध रस से बताते हुए दण्डी ने कहा है कि रसवत् वाक्य ही मधुर होता है अतएव रस एवं माधुर्य एक ही पदार्थ है। जिस शब्दार्थजन्य आह्लादकता से सहृदयगण मत्त हो जायें उसे रस कहते हैं। इस प्रकार दण्डी माधुर्य को रस का स्थान देते हुए दिखाई पड़ते है।

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः। येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः॥[21]

दण्डी के अनुसार "प्रत्येक अलंकार अर्थ में रस सिंचन" की क्षमता रखता है।

कामं सर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिञ्चति॥[22]

विभाव, अनुभाव एवं संचारी से पुष्ट स्थायी को ही रस मानकर दण्डी ने उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

"इत्यारुह्य परां कोटिं क्रोधो रौद्रात्मतां गतः।" "इत्युत्साहः प्रकृष्टात्मा तिष्ठन् वीररसात्मना॥"[23]

दण्डी के विवेचन पर भरत एवं भामह दोनों का संयुक्त प्रभाव है। रस को रसवत् अलंकार के भीतर मानने के कारण यहाँ वे भामह के निकट पहुँचते हैं तो विभावादि का सम्यक् वर्णन करने के कारण भरत की परम्परा को छू लेते हैं। कुल मिलाकर दण्डी का दृष्टिकोण भामह की भाँति रस के प्रति हठधर्मिता का नहीं है। वे रस के प्रति उदार दृष्टि रखते हैं। इसका मुख्य कारण उनका रस सिद्ध कवीश्वर होना ही है।

आचार्य वामन रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इन्होंने रीति को ही काव्य की आत्मा माना है। रस के प्रति वामन मत बहुत कुछ दण्डी से मिलता जुलता है। दण्डी एवं वामन दोनों ने ही अपने अपने ग्रन्थों में रस विवेचन के लिए स्थान दिया है। किन्तु दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है जहाँ दण्डी ने अलंकार प्रकरण के अन्तर्गत रस का विवेचन किया है, वहाँ वामन ने गुण के भीतर। वामन ने गुणों का वर्णन करते हुए रस को उसका एक आवश्यक तत्त्व बतलाया है एवं कान्ति गुण के अन्तर्गत रस का समावेश कियादीप्तरसत्वं - कान्तिः।

इन्होंने काव्य के दो धर्म माने हैं नित्य एवं अनित्य। अलंकार काव्य के अनित्य धर्म हैं एवं गुण नित्य धर्म । इस प्रकार काव्य - के अनित्य धर्म अलंकार में रस का -समावेश न कर इन्होंने काव्य के नित्य धर्म में रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। इसका यह महत्त्व भामह एवं दण्डी को ही ध्यान में रखकर स्वीकार किया जा सकता है। भामहादि की अपेक्षा इनका दृष्टिकोण अधिक उदार है। समस्त काव्यभेदों में इन्होने नाटक को श्रेष्ठ माना है। -

सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः[24]

इस प्रकार नाटक को श्रेष्ठ बताकर प्रकारान्तर से इन्होने रस का महत्त्व स्वीकार किया है।

उद्भट अलंकारवादी आचार्य होते हुए भी रस के पृष्ठपोषक भी हैं। एक ओर तो अलंकार मत के अनुयायी दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर ये भरत के भी निकट हैं।

इन्होने भामह एवं दण्डी से अपेक्षाकृत विस्तृतरूप से रस का विवरण प्रस्तुत किया है। दोनों आचार्यो ने केवल रसवत्, प्रेयस्, एवं ऊर्जस्वी अलंकारों का ही वर्णन किया था, किन्तु उद्भट ने एक नवीन अलंकार समाहित की कल्पना की। उद्भट के अनुसार समाहित वहाँ होता है जहाँ भाव,

रसाभास, भावाभास की षान्ति का तो उल्लेख हो, किन्तु दूसरे रसों के अनुभव आदि का वर्णन न हो ।

रसभावतदाभासवृत्तेः प्रषमबन्धनम्। अन्यानुभावनिश्शून्यरूपं यत्तत् समाहितम्।।[25]

रस के क्षेत्र में इन्होंने अत्यंत महत्त्व की बात कही है। षान्त रस को नाटक में स्थान देकर इन्होंने पहले पहल ये बतलाया कि षान्त रस का भी नाटक में अनुभव किया जा सकता है -

नव नाट्ये रसाः स्मृताः

उद्भट ने रसवत् आदि अलंकारो का वर्णन किया है एवं रसों के अनुभव के लिए भाव का चित्रण स्पष्टरूप से उपस्थित किया।

उद्भट ने रसों के पाँच साधनों का निर्देष किया

स्थायी ,संचारी, विभाव, अभिनय एवं स्वशब्द।

रसवद्दर्षितस्पष्टशृङ्गारादिरसोदयम्।

स्वशब्दस्थायिसंचारिविभावाभिनयास्पदम्।।[26]

इन्होंने ऊर्जस्वी अलंकार वहाँ माना है जहाँ काम, क्रोध आदि के कारण रस एवं भावों का अनुचित ढंग से वर्णन हो।

अनौचित्यप्रवृत्तानां कामक्रोधादिकारणात्।

भावानां च रसानां च बन्ध ऊर्जस्वि कथ्यते।।[27]

यहाँ रसवादी आचार्यों एवं उद्भट में यही अन्तर है कि रसवादी अंगरूप रसाभास एवं भावाभास को ऊर्जस्वी अलंकार कहते हैं तो उद्भट अंगीभूत को।

इस प्रकार के विवेचन से यह पता चलता है कि उद्भट अलंकारमत के साथ ही साथ रसवाद के भी समर्थक थे।

रुद्रट रसमत से प्रभावित होकर भी अलंकारवादी आचार्य है। इन्होंने सभी अलंकारवादी आचार्ये से रस का विस्तार के साथ विवेचन किया है। इन्होंने अपने अपने काव्यालंकारो में सबसे पहले रस का स्वन्तन्त्र रूपसे से विवेचन् प्रस्तुत किया है। इनका रस विवेचन विस्तृत एवं वैज्ञानिक है। इन्होंने (भारत के आठ)रसों की संख्या दष कर दी है तथा शान्त एवं प्रेयान् को रस के अन्तर्गत स्थान दिया है।

शृङ्गारवीरकरुणबीभत्सभयानकाद्भुता हास्याः।

रौद्रः शान्तः प्रेयानिति मन्तव्या रसाः सर्वे।।[28]

वे रस को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते है।

ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमष्चतुर्वर्गे।

लघु मृदु च नीरसेऽभ्यस्ते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्यः।।

तस्मात्तत्कत्र्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्।

उद्वेजनमेतेषां शास्त्रवदेवान्यथा हि स्यात्।।[29]

रस को काव्य का सर्वाधिक उपयोगी तत्त्व मानते हुए रुद्रट ने बताया है कि रस के समावेश से काव्य में मोहकता आ जाती है और पुरुष उसमें रमण करने लगते हैं।

एते रसा रसवतो रमयन्ति पुंसः सम्यग्विभज्य रचिताष्चतुरेण चारु।

यस्मादिमाननधिगम्य न सर्वरम्यं काव्यं विधातुमलमत्र तदाद्रियेत।।[30]

रुद्रट का रस विवेचन उत्तरवत्र्ती आचार्यों के पथ को प्रषस्त करने वाला था। उसने वस्तुतः ध्वनिकार के रसविवेचन का मार्ग सुगम कर दिया था।

रुद्रभट्ट ने शृंगारतिलक नामक ग्रन्थ की रचना की थी। शृंगारतिलक के तीन परिच्छेदों में रस निरूपण किया है।

रुद्रट की अपेक्षा इन्होंने रसों का विस्तार के साथ वर्णन किया है, विशेष रूप से शृंगार का। नायक नायिकाभेद एवं उनके अन्य सहयोगियों तथा दूतियों का भी इन्होंने उल्लेख किया है। इन्होंने रस हीन काव्य की चन्द्रमारहित रात्रि से उपमा देकर रस की महत्ता प्रतिष्ठित की है।

यामिनीवेन्दुना मुक्ता नारीव रमणं विना।

लक्ष्मीरिव ऋते त्यागान्नो वाणी भाति नीरसा।।[31]

इन्होंने नव रसों में षान्त को भी स्थान दिया है।

भरत से रुद्रभट्ट तक रसनिरूपण क्रमशः रस की लोकप्रियता का परिचायक है। अलंकार, गुण रीतिवादी आचार्यों को भी रसमत ने आकृष्ट किया था और कालान्तर में उनका प्रभाव फीका पड़ने लग गया था और रस निरूपण काव्य में भी होने लगा।

आनन्दवर्धन ध्वनिसंप्रदाय की स्थापना के पूर्व अलंकार -, गुण एवं रीति ही काव्यालोचन के मुख्य मानदंड थे जिनके आधार पर काव्य का मूल्यांकन किया जाता था। इन्होंने प्रधान रूप से प्रकाशित होने वाले व्यंग्य अर्थ को ही ध्वनि की आत्मा माना। वह रस, भाव, रसाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावषबलता के द्वारा अक्रम रूप से प्रतीत होकर ध्वनि की आत्मा के स्वरूप में स्थिर होता है।

रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रमः। ध्वनेरात्माऽङ्गिभावेन भासमानो व्यस्थितः।।[32]

उन्होंने रस का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए अलंकार, गुण रीति आदि का रस का सहायक बताया और कवियों के यह व्यवस्था की कि उन्हें रसोत्कर्ष विद्यायक अलंकारों का ही प्रयोग करना चाहिए। ध्वनिकार ने अलंकारो का उद्देष्य रससिद्धि में गति देना ही माना है। अलंकार रस से गौण हैं। रस की सिद्धि में इनका काम गति देना ही है। जिस अलंकार की रचना रस से आक्षिप्त हो वही अलंकार मान्य है। प्रयत्नसाध्य अलंकारो का प्रयोग काव्य में हेय समझा जाता है।

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्। अपृथग्यत्ननिर्वत्र्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः।।[33]

इन्होंने रसदोष, रसविरोध एवं रसदोषपरिहार का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है जो आचार्य मम्मट के लिए उपजीव्य बना है। आनन्दवर्धन ने श्रव्य एवं दृष्य दोनों काव्यों के लिए रस का निबन्धन आवश्यक माना है तथा भरत की भाँति दृष्य काव्य या नाटक को ही दृष्टि में रख कर रस की उपयोगिता नहीं सिद्ध की। इन्होंने बताया कि नाट्क एवं प्रबन्धकाव्य में विभिन्न रसों का अंगांगिभाव से समावेश होना चाहिए किन्तु सौन्दर्यातिषय के लिए एक ही रस का प्रधान रूप से प्रतिपादन होना आवश्यक है।

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने। एको रसोऽङ्गीकत्र्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता।।[34]

आनन्दवर्धन ने कई दृष्टियों से रस की महत्ता का समर्थन किया है। भरत ने उत्तम कविता उसे कहा है जो विभाव, अनुभाव के प्रदर्षन से आनन्दानुभूति का सृजन करे किन्तु आनन्दवर्धन के अनुसार नाटक अथवा काव्य में रस, अलंकार एवं वस्तु की व्यंजना ही काव्य का मूल है। ध्वन्यालोक में ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए भी आनन्दवर्धन ने रसध्वनि को ही सर्वोच्च पद का अधिकारी ठहराया है। इन्होंने रसध्वनि के साथ अलंकार, रीति, वक्रोक्ति एवं औचित्य आदि काव्य के इतर तत्त्वों का समन्वय कर उसकी व्यापकता सिद्ध की है। रसध्वनि के द्वारा उपर्युक्त सभी तत्त्वों का समन्वय ही आनन्द की महती देन है।

अग्निपुराण का समय निरूपण अभी तक विवाद कर विषय रहा है। कतिपय विद्वानों के अनुसार इसकी रचना भरत से पूर्व हुई थी किन्तु इस ग्रन्थ में भाभह, दण्डी एवं आनन्दवर्धन द्वारा विवेचित सिद्धान्तों की छाया देखकर इनका समय आनन्दवर्धन के बाद ही आँका गया है। इन्होंने काव्य में रस को सर्वाधिक महत्त्व देकर उसे उसका 'प्राण' स्वीकार किया हैवाग् -वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।[35] इनका रस वर्णन विलक्षण स्थान का अधिकारी है। इन्होंने काव्य मे शृंगार का ही प्राधान्य माना है। इनका रस विवेचन दार्षनिक भावों में से संवलित है। इन्होंने बताया है कि रस परब्रह्म परमेष्वर एवं अक्षय है।

भट्टतौत अभिनवगुप्त के गुरु थे। इन्होंने काव्यकौतुक नामक ग्रन्थ लिखा था जो रस ग्रन्थ था। इस पर अभिनवगुप्त ने टीका भी
लिखी थी जो अप्राप्य है। अभिनवभारती में उल्लिखित इनका रस सम्बन्धी अन्य मत यह मिलता है कि पाठक को तभी रसानुभूति होती
है जब कवि चित्रण की विचित्र कला के द्वारा विषय का प्रत्यक्षीकरण कर देता है। केवल नाटक में ही रस नहीं होता अपितु काव्य के
द्वारा भी रस की प्रतीति होती है। रससमुदायो हि नाट्यम्। न नाट्य एव रसाः काव्येऽपि नाट्यमान् एव रसः। काव्यार्थविषये हि
प्रत्यक्षकल्पसंवेदनोदये रसोदयः इत्युपाध्यायाः। यदाहुः काव्यकौतुके -

प्रयोगत्वमनापन्ने काव्येनास्वादसम्भवः। इति।

वर्णनोत्कलिकाभोगप्रौढोक्त्या सम्यगर्पिताः। उद्यानचन्द्राद्या भावाः प्रत्यक्षवत् स्फुटाः।।इति।-कान्ता-[36]

रससिद्ध कवि के लिए द-सिद्धान्त की दृष्टि से इन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह कही है कि रस-र्शन एवं वर्णन दोनों ही
अत्यन्त आवश्यक है। रससिद्धान्त के विकास में भट्टतौत की अन्य महत्त्वपूर्ण देन यह है कि इन्होंने भट्टनायक के श्साधारणीकरणश् के -
सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। इन्होने बताया कि रस की पूर्णता में कवि, नायक एवं सहृदय तीनों का रस एक श्रेणी का हो जाता है। रस की
पूर्ण स्थिति में तीनों का ही साधारणीकरण होता है।

धनंजय और धनिक - प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ दशरूपक के रचयिता धनंजय एवं उसकी अवलोक नामक टीका के लेखक
धनिक रस-सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं। दोनों ही ध्वनि-विरोधी है और धनिक तो ध्वनि की सत्ता भी नहीं स्वीकार करते। वे भट्टनायक
का समर्थन कर, तात्पर्यशक्ति के द्वारा ही ध्वनि की अभिव्यक्ति होती है, इस मत का प्रतिपादन करते हैं। काव्य एवं रस में भाव्य-भावक
सम्बन्ध को ही इन्होंने स्वीकार किया है। इन्हें काव्य एवं रस का व्यंग्य-व्यंजक भाव मान्य नहीं है।

अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यंग्यव्यंजकभावः, किं तर्हि भाव्यभावकसम्बन्धः काव्यं हि भावकं, भाव्या रसादयः।[37]

काव्य भाव है एवं रसादि भाव्य हैं। विभावादि के साथ रस का भाव्य-भावक भाव सम्बन्ध होता है। दशरूपक के चतुर्थ अध्याय में रस
का विस्तार के साथ विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रस का स्वरूप उसके विभिन्न अंग, रस के भेद, रस की चर्वणा आदि पर इनका
विवेचन अत्यन्त महनीय है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा जब स्थायी भाव आस्वाद्य के योग्य बनता है तो
उसे रस कहते है।

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः। आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः।।[38]

रस के दार्शनिक सम्बन्ध को इन्होंने निर्भरानन्दसंविदात्मतामानीयमानो रसः कहा है। रस के सम्बन्ध में इनकी अन्य देन है
काव्य एवं रस के स्थान की सीमा का स्पष्टीकरण। अर्थात् काव्य एवं नाटक में रस की इतनी प्रधानता न हो जाय कि वह कथा को ही
आच्छादित कर ले जिससे कथावस्तु विच्छिन्न हो जाय और न वस्तु, अलंकार अथवा नाटकीय लक्षणों के घटाटोप में रस को
तिरोहित किया जाय। इस प्रकार रस की अतिव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोनों का विरोध कर इन्होंने उसमें व्यावहारिकता लाने का प्रयत्न किया
है।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्। रसं वा न तिरोदव्याद्वस्त्वलङ्कारलक्षणैः।।[39]

धनंजय के उपर्युक्त सभी विचार मौलिक न होकर शंकुक एवं भट्टनायक से ही प्रभावित है। इन्होंने शान्त रस की रसनीयता को
अमान्य ठहरा दिया है। आठ स्थायी भावों का उल्लेख करते हुए उन्होंने नवं भाव शम को अस्वीकृत कर दिया है। शम स्थायी की पुष्टि
नाटक में नहीं होती है। यह भाव नाट्यानुकूल है ही नहीं, ऐसा धनंजय का मत है।

कुंतक प्रसिद्ध ग्रन्थ वक्रोक्तिजीवितम् के रचयिता एवं वक्रोक्तिवाद के प्रतिष्ठापक हैं। इनके अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य की
आत्मा है। इन्होंने रस का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी वक्रोक्ति को काव्य का प्राण कह रससिद्धान्त के प्रवाह में बहुत बड़ा अवरोध -
उपस्थित किया है। इनके विवेचन से रस सिद्धान्त को जबरदस्त धक्का लगा है। काव्य के लक्षण, प्रयोजन एवं वक्रोक्ति के अनेक भेदों के
अन्तर्गत रस को समुचित महत्त्व देकर भी ये काव्य का सर्वस्व वक्रोक्ति को ही मानते हैं। इसलिए इनका रसविवेचन अनौपचारिक एवं
आनुषंगिक है। इन्होंने प्रबन्धवक्रता में ही वक्रोक्ति का उत्कृष्ट एवं प्रौढ रूप माना है। निरन्तर रसोद्गार- करने वाले संदर्भ से पूर्ण कवि की
वाणी केवल कथा के आधार पर ही जीवित नहीं रहती। इस प्रकार इन्होंने काव्य का श्रेष्ठ रूप प्रबन्ध एवं प्रबन्ध का प्राण रस को ही माना
है।

निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः। गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिताः।।[40]

कुन्तक भामहादि की भाँति वक्रोक्ति के अन्तर्गत ही रस को अन्तर्निविष्ट करते है। काव्य में रस के उन्मीलन की आवश्यकता
उन्हें मान्य हैं, परन्तु इसे स्वतन्त्र स्थान न देकर अपनी वक्रोक्ति के भीतर उपादेय मानते हैं। कुन्तक के ध्वनि सिद्धान्त की तरह रस को
व्यंग्य माना है वाच्य नहीं।

महिमभट्ट अनुमानवाद के पोषक एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ श्व्यक्तिविवेकश् के प्रणेता हैं। ये श्ध्वनिविरोधीश् आचार्य हैं। इन्होंने रस -
विरोधी होकर भी महिम ने रस को कविता का प्राण माना है तथा सब प्रकार-को अनुमान की प्रक्रिया से सिद्ध किया है। ध्वनिसे काव्य
में रस की महत्ता सिद्ध की है। रस को काव्य की आत्मा मानने में इन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है किन्तु इनका विरोध इस अर्थ में है
कि रस व्यंग्य है। वे उसे अनुमेय मानते है। काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद्विमतिः।[41] धारानरेश राजा भोज के
सरस्वतीकण्ठाभरण एवं शृङ्गारप्रकाश नामक दो ग्रन्थ काव्यशास्त्र से सम्बन्धित है। श्सरस्वतीकण्ठाभरणश् में रस का विस्तार के साथ
वर्णन है। रस के भेद, अंग, नायक-नायिका, हाव आदि का इन्होंने व्यापक आधारफलक पर उपस्थापन किया है किन्तु इस ग्रन्थ में इनके
विचार अधिकतर संकलनप्रधान ही हैं। इन्होंने वाङ्मय के तीन प्रकार माने हैं।

वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम्। सर्वासु ग्राहिणीं तासु रसोक्तिं प्रतिजानते।।[42]

रस के सम्बन्ध में सर्वाधिक मौलिक विवेचन शृङ्गारप्रकाश में ही प्रस्तुत किया गया है। भोज का रस-विवेचन रस-सिद्धान्त के
विकास में किसी भी अन्य रस की सत्ता को स्वीकार न कर मात्र शृङ्गार को ही रस की संज्ञा देता है। उनका कहना है कि शृङ्गार ही एक
मात्र रस है और उसका इतना व्यापक क्षेत्र है कि उसमें अन्य सभी रसों का समावेश हो जाता है।

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्यबीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।[43]

क्षेमेन्द्र औचित्य सम्प्रदाय के पोषक हैं। इन्होंने औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ में औचित्य-सिद्धान्त की व्यापकता पर
विचार किया है। इन्होंने रस एवं औचित्य के सम्बन्ध का स्पष्ट रूप से वर्णन कर रस को काव्य की आत्मा माना है। पुनः ये औचित्य को
काव्य जीवन मानते हैं। क्षेमेन्द्र रस को काव्य का प्राण एवं औचित्य को उसका जीवभूत स्वीकार करते हैं।

मम्मट का महत्त्व रस सम्बन्धी किसी नवीन सिद्धान्त के प्रतिपादन के रूप में न होकर रस के निर्भ्रान्त विवेचन में है। इनका रस
सम्बन्धी मत अभिनवगुप्त का सार-संग्रह है उन्हीं के अनुरूप है। ये वस्तुतः ध्वनिप्रतिष्ठापक आचार्य हैं। इन्होंने काव्य के प्रयोजन में
आनन्द तत्त्व की प्रतिष्ठा कर रसतत्त्व की ही महत्ता प्रदर्शित की है तथा रस को ही काव्य का सर्वातिशायी तत्त्व कहा है। तथा पूर्ववर्ती
आचार्यों - लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त के निर्भ्रान्त विचारों का संकलन कर अध्येताओं के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त
किया है। काव्य-प्रकाश में इन्होंने रस का स्वरूप, संख्या, उसके विविध अंग एवं उसकी अलौकिकता पर विचार किया है जो वो
पूर्ववर्ती आचार्यों के ही अनुरूप है।

रामचन्द्र गुणचन्द्र दोनों लेखकों की प्रसिद्ध कृति श्नाट्यदर्पणश् है। यह मूलतः नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ है। इसमें नाटक की दृष्टि -
से ही रस का विवेचन किया गया है। इसमें रस सम्बन्धी बहुत से नवीन तथ्यों को उपस्थित किया गया है जैसे रसों कीदुःखात्मकता का
वर्णन इनकी दृष्टि में कुछ रस सुखात्मक हैं कुछ दुःखात्मक। शृङ्गार, हास्य, वीर, अद्भुत तथा शान्त रस को इन्होंने सुखात्मक एवं रौद्र,
करुण, भयानक तथा बीभत्स को दुःखात्मक माना है। इन्होंने बहुत से ऐसे रसों एवं संचारियों का उल्लेख किया है जो अप्रचलित हैं।
जैसे क्षुत, तृष्णा, मैत्री, मुदिता, श्रद्धा, दया, उपेक्षा, रति, सन्तोष, क्षमा, मार्दव, आर्जव और दाक्षिण्य आदि संचारी तथा लौल्य, स्नेह,
व्यसन, दुःख एवं सुख आदि रस हैं। इन रसों के संचारी भाव क्रमशः गर्द्ध, आर्द्रता, आसक्ति, अरति तथा संतोष हैं। इन्होंने यह भी कहा
है कि कुछ आचार्य इनका अन्तर्भाव नवरसों में ही कर देते हैं।

इन्होंने कवि अथवा नाटककार की समग्र चेतना को रसविधान में संलग्न होना बताया है-

रसविधानैकचेतसः कवेः रसनिवेशैकव्यवसायिनः प्रबन्धकवयः।

इन सारे कथनों से यह प्रतीत होता है कि लेखक ने नाटक का प्रधान तत्त्व रस एवं नाटक का उद्देश्य एक मात्र रस की निष्पत्ति
को माना है।

शारदातनय- इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश है जो नाट्यशास्त्रविषयक रचना है। इसमे चारुप्रतिपाद्य विषय- भाव, रस, शब्दार्थसम्बन्ध
एवं रूपक। इन्होंने रस के स्वरूप, भाव, रस के भेद एवं नायक-नायिकाभेद पर नाटक को दृष्टि में रखकर विचार किया है। शारदातनय ने
स्थायी भाव, संचारी, अनुभाव, नायिका आदि के सम्बन्ध में बहुत से नवीन तथ्य प्रस्तुत किये है जिनका परवर्ती साहित्यशास्त्रियों ने
अनुकरण किया है। इसका महत्त्व बहुत से अज्ञात रसाचार्यों- वासुकि, नारद, व्यास- के मतों का निर्देश करने के कारण भी है। इसमें

अत्यन्त महत्त्व की बात यह बतलायी गई है कि विभिन्न प्रकार के व्यक्ति विभिन्न दृष्टियों एवं रुचि के अनुसार नाटक का रसास्वादन करते हैं। तरुण व्यक्ति नायिका के रूप एवं काम की तृप्ति में, विदग्ध व्यक्ति नीति संबंधी बातों में, धनी व्यक्ति अर्थ में, विरागी मोक्ष में, वीर बीभत्स, रौद्र एवं वीरता की वार्ता में, वृद्ध धर्म संबंधी बातों में विद्वान् सात्त्विक भावों में आनन्द प्राप्त करते हैं।

तुष्यन्ति तरुणाः कामे विदग्धाः समयक्षिते। अर्थेष्वर्थपराश्चैव मोक्षेष्वर्थविरागिणः।।

विश्वनाथ - सिद्धान्त के विकास में विश्वनाथ का स्थान कई दृष्टियों से आचार्य मम्मट की अपेक्षा अधिक महत्त्व का है। इन्होंने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में रस को काव्य की आत्मा कहकर नवीन विचार का उद्योतन किया है एवं उसे काव्य का सर्वातिशायी अंग माना है। इन्होंने रस का वर्णन ध्वनि के अन्तर्गत न कर स्वतन्त्र रूप से किया है। इस प्रकार रस की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर उन्होंने उसे सर्वोच्च महत्त्व का तत्त्व माना है। साहित्यदर्पण में रससंबंधी कई बातों का सन्निवेश किया जिससे रस-सिद्धान्त को पर्याप्त गति मिली।

विश्वनाथ के रस विवेचन पर भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त के विचारों का सम्मिलित प्रभाव है। उन्होंने रस की व्याख्या वेदान्त दर्शन के आधार पर की है। रसास्वाद का वर्णन करते हुए बताया है कि मन में तमोगुण एवं रजोगुण को दबाकर सत्त्वगुण का उद्रेक एवं प्राबल्य होने पर ही रस का साक्षात्कार या अनुभव होता है। रस का स्वरूप उपस्थित करते हुए वे उसे अखण्ड, अद्वितीय, स्वयं प्रकाशमान्, आनन्दस्वरूप एवं चमत्कारमय मानते हैं। इसके अनुभव के समय अन्य वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता अर्थात् रसास्वाद के समय विषयान्तर के ज्ञान का अभाव होता है। यह ब्रह्मानन्द सहोदर है अर्थात् ब्रह्मास्वाद के समान आनन्ददायक है।

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः। वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।।[44]

साधारणीकरण के सिद्धान्त के सम्बन्ध में विश्वनाथ को अभिनवगुप्त का ही विचार मान्य है किन्तु इन्होंने उसे अभिनवगुप्त से भी अधिक महत्त्व दिया है। इन्होंने रस की उत्तम स्थिति वहाँ स्वीकार की है जहाँ आश्रय का तादात्म्य एवं आलंबन के साथ साधरणीकरण होता है।

रूपगोस्वामी - रूपगोस्वामी भक्तिरस के उन्नायक हैं। इन्होंने एतद्विषयक दो ग्रन्थों - हरिभक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि की रचना की है एवं इतर रसों को भक्ति रस में ही समाविष्ट किया है। इनका रस-विवेचन महाप्रभु चैतन्य के अचिन्त्यभेदाभेद नामक दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है। रस-सिद्धान्त के विकास में रूपगोस्वामी का विवेचन एक नया मोड उपस्थित करता है और रसतत्त्व में आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता का समावेश करता है। इन्होंने वैष्णव विचार के अनुसार उज्ज्वल रस माधुर्यरस का विवेचन किया जो शृङ्गाररस ही है। माधुर्यरस का विवेचन लौकिक दृष्टि से न कर भक्तिपरक भावना से किया गया है जिसे इन्होंने भक्तिरस कहा है। पाँच प्रकार की भक्ति के आधार पर पाँच प्रकार के भक्तिरस की कल्पना की गई है। वे हैं- शान्त, दास्य या प्रीति, सख्य या प्रेयस्, वात्सल्य एवं माधुर्य। मुख्य भक्तिरस पाँच हैं- मुख्यस्तु पंचधा शान्तः प्रीतिः प्रेयांश्च वत्सलः। मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमाः।।

वास्तव में नाट्यशास्त्र में आठ रस ही अभिप्रेत हैं जो मम्मट के समय तक प्रयोग में चला- शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।[45]

किन्तु शान्तरस की स्थिति के विषय में न केवल आधुनिक विद्वानों में किन्तु प्राचीन विद्वानों मे भी, मतभेद पाया जाता है। इस मतभेद का मुख्य आधार भरतमुनि का यह अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः श्लोक ही है। उसी को यहाँ काव्यप्रकाशकार ने भी रसों की संख्या का निरूपण करते हुए उद्धृत किया है। भरत के इसी वचन के आधार पर प्राचीन आचार्यों में महाकवि कालिदास, अमरसिंह, भामह और दण्डी आदि ने भी नाटक के आठ रसों का उल्लेख किया है तथा शान्तरस का प्रतिपादन नहीं किया है। इसके विपरीत उद्भट, आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त ने स्पष्टरूप से शान्त रस का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः साहित्यदर्पणोक्त जो 33 व्यभिचारिभाव बताये है उनमें निर्वेद स्थायिभाव तथा व्यभिचारि भाव दोनों है अतः नवम रस भी स्वीकार किया गया है।

निर्वेदस्थायिभावोस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।[46]

सन्दर्भ सूची

1. अमरकोष 1.5.7
2. मुद्राराक्षस
3. ऋग्वेद 1.105.1
4. अथर्ववेद 10.5.45
5. तैत्तिरीय उपनिषद् 2.6.1
6. तैत्तिरीय उपनिषद् 2.7.1

7. बृहदारण्यकोपनिषद् 1,3,19
8. भावप्रकाश 2.36-37
9. भावप्रकाश अधि .2 पृ.47
10. काव्यमीमांसा अध्याय -1 पृ .4
11. नाट्यशास्त्र 6.15
12. नाट्यशास्त्र 6.39
13. नाट्यशास्त्र 6.42-45
14. नाट्यशास्त्र 6.32
15. नाट्यशास्त्र अध्याय 7 (आरंभिक पंक्तियां(
16. नाट्यशास्त्र 7.2,1
17. नाट्यशास्त्र 7.3
18. हिन्दी अभिनव भारती पृ- .479, अध्याय 6
19. काव्यालङ्कार -3/6
20. काव्यालङ्कार -3/121
21. काव्यादर्श 1/51
22. काव्यादर्श 1/63
23. काव्यादर्श 2/283,285
24. काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 1.2.30
25. काव्यालङ्कारसारसंग्रह 4.7
26. काव्यालङ्कारसारसंग्रह 4.3
27. काव्यालङ्काररसारसंग्रह 4.5
28. काव्यालङ्कार 12/3
29. काव्यालङ्कार 12/1-2
30. काव्यालङ्कार 15/21
31. शृङ्गारतिलक 1/6
32. ध्वन्यालोक 2/3
33. ध्वन्यालोक 2/16
34. ध्वन्यालोक 3/21
35. अग्निपुराण 337/33
36. अभिनवभारती पृ .290-291 (गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज(
37. दशरूपक, भोलाशंकर व्यास, पृ .243
38. दशरूपक, भोलाशंकर व्यास 4.1
39. दशरूपक, भोलाशंकर व्यास 3.32
40. वक्रोक्तिजीवितम् 4.11
41. व्यक्तिविवेक पृ .105
42. सरस्वतीकण्ठाभरण 5/8
43. शृङ्गारप्रकाश भाग -2, पृ .368, डॉराघवन .
44. साहित्यदर्पण 3.2
45. काव्यप्रकाश कारिका 29
46. काव्यप्रकाश सूत्र 44

****

नाट्यशास्त्रे धर्मिविचारः

आचार्यः केशवन्. के. पि.
रा.सं. सं. गुरुवायूर् परिसरः

अनुभावविभावानां वर्णना काव्यभूच्यते।
तेषामेव प्रयोगस्तु नाट्यं गीतादिरञ्जितम्॥

उपलब्धेषु नाट्यप्रतिपादुकग्रन्थेषु भरतमुनेः नाट्यशास्त्रं प्राचीनतमं भवति। ग्रन्थेऽस्मिन् षट्त्रिंशदध्यायाः सन्ति। नाट्यरचनायाः नाट्यप्रयोगस्य नाट्यास्वादनस्य च सर्वाङ्गीणं प्रतिपादनम् अस्मिन् दृश्यते। प्रोः राधावल्लभत्रिपाठीवर्य्यः स्वकीये निबन्धे एतस्तर्वं स्पष्टं प्रतिपादयति। आचार्यमतेन नाट्यरचयिता कविः प्रथमः स्रष्टा भवति। नाट्यसाहित्यञ्च प्रयोगस्य आधारभूतं भवति। कविः त्रैलोक्यस्य अनूकीर्तनं करोति। "त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावनुकीर्तनम"(2) इति अस्मिन्नर्थे भरतभूनिः कथयति। नटादिः नाट्यसाहित्यस्यास्य प्रयोगं करोति। प्रयोगः इति नाट्यस्य अपरं नाम भवति। प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्म् इति मालाविकाग्निमित्रे कथितमस्ति। अभिनवभारत्याम् अभिनवगूप्तोऽपि – "कविना प्रयोगपरतन्त्रेण भाव्यम्। प्रयोगेण कविपरतनत्रेण न भाव्यम्।" प्रयोगः परिषदि प्रकटीकरणम्" इत्यादिभिः वचनैः नाट्यस्य प्रयोगप्राधान्यं द्रढयति। प्रयोगस्तु चतुर्विधाभिनयैः रङ्गशालायां भवति। प्रयोग इत्यर्थे नाट्यमनूकरणं भवति।

"लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम्।"

"सप्तद्वीपानूकरणं नाट्यमेतद् भविव्यति।" इत्यादीनि भरतवचनानि प्रयोगस्य अनुकरणप्रधानतां प्रकाशयन्ति। अवस्थानूकृतिर्नाट्यम् इति भरतवचनमपि एतमेवार्थं द्रढयति।

एष नाट्यप्रयोगः सहृदयैः दर्शकैः आस्वाद्यते। एतच्च अनुदर्शनानुभावनानुव्यवसायादिशब्दैः मुनिना भरतेन तथा अभिनवगुप्तेन च प्रकटितमस्ति। नाट्यमेव रसो भवति। "तस्मान्नाट्यरसः स्मृतः" इति कथनमप्यस्मिन्नेवार्थे भवति। एवं नाट्यशब्दस्य काव्यपक्षे प्रयोगपक्षे आस्वादपक्षे च प्रयोगः नाट्यशास्त्रे अवलोक्यते।

सर्वेषु च अर्थेषु रसस्यैव प्रधान्यं भरतेन निर्दिष्टमस्ति। रसाध्याये "नहि रसादृते कश्चिदुर्थः प्रवर्तते" इति मुनेः सूत्रं नाट्ये रसस्य प्राधान्यं प्रकाशयति। कविपक्षतः, नटपक्षतः व्याख्यातृपक्षतश्च रसस्यैव प्राधान्यं सूत्रेऽस्मिन् मुनिना प्रदर्शितमिति अभिनवगुप्तः कथयति। अस्मात् सूत्रात् पूर्वं भरतमुनिः नाट्यगतानिं तत्त्वानिं सङ्ग्रहेण प्रतिपादयति। तानि च तत्त्वानि एकादश भवन्ति। तद्यथा –

रसा भावाह्यभिनयाः धर्मीवृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिःस्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः॥ इति नाट्यशास्त्रे षष्ठे अहयाये।

'युक्तं हि विदूषां लोके समासव्यासभाषणम्' इति महाभारतवचनानुसारेण एतेषां सङ्ग्रहाणां विस्तरेण प्रतिपादनमेव सम्पूर्णे नाट्यशास्त्रे भरतमुनिना विहितमस्ति।

रसाः, भावाः अभिनयाः धर्म्यौ, वृत्तयः, प्रवृत्तयः सिद्धि स्वराः आतोद्यं गानं, रङ्गः चेत्येते सङ्ग्रहाः भवन्ति। संक्षिप्य गृह्यते अनेनेति सङ्ग्रहः। रसभावौ प्रधानभूतौ पदार्थौ। प्राधान्यात् तयोरूपक्रमं कृत्वा सङ्ग्रहः कथितः।

अन्येषां तावद् रससाधनोपायत्वमेव। अयञ्च क्रमः कविपक्षतः भवति। कविः रसमेव नाट्यरूपेण परिणमयति। रसाविष्टः कविः काव्यं रचयति। "यावत्पूर्णे नचैतेन तावन्नैव वमत्यमूम्" इति भट्टतौतस्य प्रसिद्धं वचनमास्ति। शोकः श्लोकत्वमागतः इति ध्वनिकारवचनमपि कवेः रसपरिपूर्णहृदयत्वं ख्यापयति। रसपरिपूर्णकुम्भोच्चलनवत् कवेः काव्यं निर्गच्छति इति अभिनवगुप्तपादा अपि वदन्ति। रसानां भावानाञ्च सम्यङ्विनिवेशनार्थमेव अभिनयादयः प्रयोजकीभवन्ति। अभिनयादयः सङ्ग्रहाः परस्परं सम्बद्धाः पूरकाश्च भवन्ति। तत्रापि अभिनयः प्रधानः। आङ्गिकवाचिकसात्विकाहार्यभेदैः अभिनयः चतुर्विधः। हस्ताभिनयः आङ्गिकाभिनयेन गृह्यते। भावानां स्फुरणं नेत्राभिनयेन जायते। सर्वे भावाः चक्षुषि स्फुरन्ति। 'इह भावाः रसाश्चैव दृष्टावेव प्रतिष्ठिताः' इत्यपि प्रसिद्धमास्ति। आङ्गिकाभिनयादापि प्रधानतरोऽस्ति वाचिकाभिनयः।

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता।
अङ्गनेपश्यसत्वानि वाक्यार्थंव्यञ्जयन्ति हि॥

इतिभरतवचनं वाचिकाभिनयस्य प्राधान्यमेव प्रकाशयति।

अभिनयस्य इतिकर्तव्यतारूपेण विद्यमाना धर्मी सङ्ग्रहेषु अन्यतमा वर्तते। एते द्वे। लोकधर्मीनाट्यधर्म्यौ। अनयोः इतिकर्तव्यतात्वं सङ्गीतरत्नाकरे एवमुच्यते-

इतिकर्तव्यता तस्य द्विविधा परिकीतिता।
लोकधर्मीनाट्यधर्मीत्येते च द्विविधे पुनः॥ इति।

अभिनयः लोकव्यवहारमनुसृत्य अथवा नाट्यसङ्केतमनुसृत्य भवति। लोकधर्मानुसारेण या क्रिया भवति सा लोकधर्मी इत्युच्यते। तदितरेण नाट्यमात्रप्रसिद्धेन सङ्केतेन या क्रिया भवति सा नाट्यधर्मीत्युच्यते। स्वराः गानं रङ्गश्चेत्यन्ये सङ्ग्रहाः नाट्यधर्मिप्रकारा एव भवन्ति। लोकव्यवहारे भावाभिव्यक्तये गीतीदिप्रयोगः प्रायः नोपलभ्यते।

लोके या क्रिया वा यद्वस्तु यथा अस्ति काव्येऽपि सा क्रिया तद्वस्तु वा तथैवास्ति चेत् सा लोकधर्मी इत्यूच्यते। काव्यनाट्ययोः लोकानुसारित्वं विचित्रयोगित्वं वा धर्म इत्यभिनवभारती।

नाट्यशास्त्रे त्रयोदशे अध्याये धर्मिलक्षणं विस्तरेण प्रतिपादितमस्ति। तत्राद्यायाः लोकधर्म्याः लक्षणमेवमास्ति। तद्यथा –

स्वभावभावोपगतं शुद्धं त्वविकृतं तथा
लोकवार्ताक्रियोपेतमङ्गलीलाविवर्जितम्।
स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्रीपूरुशाश्रयं
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता॥ इति।

यत्र नाट्ये भावः स्वभावोपगतः शुद्धः सहजः लोकवार्ताक्रियोपेतः अङ्गलीलाविवर्जितश्च तन्नाट्यं लोकधर्मी भवति। एवमेव सहजः नानास्त्रीपुरुषाश्रयश्च अभिनयः यत्र भवति तन्नाट्यमपि लोकधर्मी भवति। अभिनयस्य भावानां वा लोकानुसारित्वं लोकधर्मी उच्यते।

यत्र पुनः लोकव्यवहारव्यतिरेकी भावः अभिनयो वा भवति तन्नाट्यं नाट्यधर्मी भवति। तल्लक्षणं नाट्यशास्त्रे–

अतिवाक्यक्रियोपेतमतिसत्वातिभाषितम्
लीलाङ्गहाराभिनयं नाट्यलक्षणलक्षितम्।
स्वरालङ्कारसंयुक्तमध्वस्थपुरुषाश्रयम्
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता॥ इति।

नाट्यलक्षणलक्षितं लीलाङ्गहाराभिनयोपेतं स्वरालङ्कारादियुक्तं नाट्यं नाट्यधर्मी उच्यते। अत्र च नाट्यसङ्केता अपि गृह्यन्ते। स्वगतं, प्रकाशम्, अपवार्य आकाशभाषितमित्यादीनां नाट्यमात्रवृत्तित्वात् नाट्यधर्मित्वं भवति। गीतातोद्यप्रभृतीनां नाट्याङ्गानां समेषमपि नाट्यधर्मित्वमेव।

तदुच्यते –

आसन्नोक्तं च यद्वाक्यं न श्रृण्वन्ति परस्परम्।
अनुक्तं श्रूयते वाक्ये नाट्यधर्मी तु सा स्मृता॥ इति।

एवमेव यद्वस्तु लोके भवति तद्वस्तु नाट्ये रङ्गमच्चे तथा न प्रदर्श्यते। शैलादयः मृगादयश्च रङ्गमच्चे कृत्रिमाः प्रदर्स्यन्ते। तथाऽपि सामाजिकः तान् सहजेन गृह्णाति। कुत्राचिच्च केवलमभिनयसङ्केतेन एतेषां प्रयोगः नाट्ये दृश्यते। एताः सर्वाः नाट्यधर्म्यः कथ्यन्ते।

लोके पुनः जनानां गमनादयः स्वाभाविकाः भवन्ति। परन्तु नाट्ये एते कृत्रिमाः विवक्षितरसप्रकाशकाः भवन्ति।

तदुक्तम् –

ललितैरङ्गविक्षेपैस्तथोत् क्षिप्तपदक्रमैः।
नृत्यते गम्यते यच्च नाट्यधर्मीति सा स्मृता॥ इति

एतेषां नाट्यधर्मित्वं निर्विवादं भवति।

लोकस्य सुखदुःखक्रियात्मकः स्वभावः अङ्गाभिनययुक्तः नाट्यधर्मी भवति। तदुक्तं नाट्यशास्त्रे –

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखक्रियात्मकः।
सोऽङ्गाभिनयसंयुक्तो नाट्यधर्मी प्रकीर्तिता॥ इति।

अपि च मत्तवारणी रङ्गशीर्षम् नेपथ्यगृहम् तथा रङ्गपीठञ्च नाट्यशास्त्रसङ्केतानुसारेण भवन्तीति तेषामपि नाट्यधर्मित्वं स्पृष्टम्। तदुक्तम् –

यश्च कक्षाविभागोऽयं नानाविधिसमाश्रितः।
रङ्गपीठगतः प्रोक्तो नाट्यधर्मी तु सा भवेत्॥

नाट्यसङ्ग्रहेषु रस एव प्रधानभूतः। अन्येषां सर्वेषामपि साक्षात्परम्परया वा रसपोषकत्वमेव प्रमुखो धर्मः। 'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते' इत्यनैनैतत् स्पष्टं भवति। अभिनवगुप्तमतेन वीतविघ्नप्रतीतिग्राह्यः स्थाय्येव रसः। विघ्नाश्च सप्त निर्दिष्टाः। तेषु स्वगतपरगतत्वनियमेन देशकालविशेषावेश इति दितीयः विघ्नः। एतस्य विघ्नस्य परिहारः प्रायः नाट्यधर्मिपरिग्रहेण क्रियते। तथैव पञ्चमः विघ्नः अस्फुटत्वम् भवति। अयञ्च विघ्नः अभिनयचतुष्टयेन लोकधर्मिणा परिह्रियते। एवं धर्मिद्वयस्यापि विशिष्टं किञ्चन प्रयोजनमस्ति।

वस्तुतः धर्मिद्वये नाट्यधर्मी एव नाट्ये मुख्यभूता। यतो हि लोकव्यवहारोऽपि नाट्ये प्रयुज्यते चेदन्ततोगत्वा सा नाट्यधर्मी भवति। नाट्यमलौकिकं भवति। विभावादीनामप्यलौकिकत्वं शास्त्रसम्मतमस्ति। अत एव भरतेर्नाच्यते –

'नाट्यधर्मिप्रवृत्तं हि सदा नाट्यं प्रयोजयेत्'। इति।

लोके कारणादीनि यानि भवन्ति तानि काव्यनाट्ययोः विभावदयः भवन्ति। लोके स्वभावजं वस्तु काव्ये विभावादित्वं भजते। एकस्य लौकिकत्वं चेदपरस्य अलौकिकत्वं स्पष्टं भवति। एवमेव लोकधर्माणाम अकृत्रिमत्वम् अन्येषां कृत्रिमत्वं च वर्तते।

यदि लैकिकं वस्तु क्रिया वा नाट्ये प्रयुज्यते तर्हि तेषां कृत्रिमत्वं स्वतः आगच्छति। लोकधर्माः नाट्यान्तर्गताः सन्तः नाट्यधर्माः जायन्ते। यदा काव्ये लोकस्वभावं वस्तु प्रतिपाद्यते तदा तस्य अलङ्कारत्वं भवति। तेनैवासौ लोकधर्मितां विहाय नाट्यधर्मितां प्राप्नोति।

तदेवोक्तम् –

सर्वस्य सहजो भावः सर्वेऽप्यभिनयोत्थितः।
अङ्गालङ्कारचेष्टा तु नाट्यधर्मी प्रकीर्तिता॥ इति।

अभिनवगुप्तोऽपि अमुमेवार्थं स्पष्ट्यति – काव्ये च लोकनाट्यधर्मिस्थानीयेन स्वभावक्तिवक्रोक्तिप्रकारद्वयेन अलौकिकप्रसन्नमधुरौजस्विशब्दसामर्थ्यसमर्प्यमाण-विभावादियोगादियमेव रसवार्ता इति।

लोकवृत्तानुकरणमेव नाट्यं भवति। परं नाट्यगतस्य लोकवृत्तस्य सहृदयमनोरञ्जकत्वं वर्तत इति विशेषः। एतदेवोच्यते अभिनवगुप्तेन –

"लौकिकधर्मव्यतिरेकेण नाट्ये न कश्चिद् धर्मोऽस्ति। तथापि यत्र स लोकगतप्रक्रियाक्रमो रञ्जनाधिक्यप्राधान्यमधिरोहयितुं कविनटव्यापारे वैचित्र्यं स्वीकुर्वन् नाट्यधर्मीत्युच्यते" इति।

नाट्ये प्रयुक्ताः सर्वा अपि क्रियाः अलौकिकाः अत एव कृत्रिमाः भवन्ति। सर्वासां च तासां विवक्षितरसाभिव्यञ्जकत्वमेव घर्मः। आधुनिकनाटकप्रयोगेषु कृत्रिमाणां नाट्यसङ्केतानां प्रयोगः भूयसा दृश्यते। वस्तुतः एष प्राचीननाट्यशास्त्रसिद्धान्तानां अनुरूप एव भवति। प्राचीनकेरलप्रदेशे कूटियाट्टं नाम्ना प्रसिद्धः नाट्यप्रयोगः इदानीमपि जिवितः अस्ति। अत्र सर्वेषां नाट्याङ्गानां प्रयोगः प्रायः सुरक्षितः वर्तते। एतस्मिन् प्रयोगे नाट्यधर्मी एव सर्वत्र दृश्यते। पाठ्यांशा अपि रागलयोच्चारिताः सन्तः कृत्रिमाः भवन्ति। अङ्गचलनेषु अपि कृत्रिमत्वं वर्तते। रसाभिव्यञ्जकत्वमेव सर्वत्र मुख्यं प्रयोजनम् भवति।

सङ्क्षेपेण इदं वक्तुं शक्यते यन्नाट्यान्तर्गता लोकधर्मी अपि वस्तुतः नाट्यधर्मी भवति इति। अत एव नाट्यधर्मी एव धर्मिद्वये प्रधानभूता वक्तुं शक्यते।

****

उत्तररामचरिते नाट्यतत्त्वानि

प्रो. सुर्यमणिरथः
साहित्यविभागप्रमुखः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,(मा.वि.वि.)
श्रीसदाशिवपरिसरः, पुरी,ओडिशा॥

भवभूतिप्रणीतमुत्तररामचरितमेकं सम्पूर्णं सप्ताङ्कपरिमितं नाटकम्। रामायणस्य विषयवस्तु आधारीकृत्य नाटकमिदं रचितमस्ति। लङ्कायां रामचन्द्रः रावणं मारितवान्। ततः पुष्पकविमानेन सीतया लक्ष्मणेन च सह सः अयोध्यां प्रत्यागतः। अयोध्यां सः राजरूपेण अभिषिक्तः। ततः परं या घटना तस्य जीवने घतिता सा घटना उत्तररामचरिते नाटके भवभूतिना सफलतापूर्वकं संयोजिता। नाटकस्य तत्त्वानि अत्र नाटके पालितानि नाट्यकारेण। उत्तररामचरिते प्रयुक्तेषु नाट्यशास्त्रस्य तत्त्वेषु आहिण्ड्य मया कानिचन तत्त्वानि अस्मिन् पत्रे आलोचितानि सन्ति। नाटकस्य लक्षणं यथा -

नाटकं ख्यातवृतं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्। विलासर्द्ध्यादिगुणवद् युक्तं नानाविभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूतनानारसनिरन्तरम्। पञ्चादिका दशपरास्त्राङ्काः परिकीर्त्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। अङ्कमध्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्बहणेऽद्भुतः॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः। गोपुच्छाग्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्॥

(सा. द. ६ परिच्छेदः)

एतल्लक्षणं साक्षादेव उत्तररामचरिते घटते। तथा हि तत्र वृत्तं प्रख्यातं श्रीरामसीतासम्बधीयमस्ति। तत्रापि मुखप्रतिमुखगर्भविमर्शोपसंहृतिमानः पञ्चसन्धयः सप्त अङ्काश्च सन्ति। रामचन्द्रः धीरोदात्तः नायकः अस्ति। अङ्गिरसः करुणः अस्ति। अन्ये रसा अङ्गरूपेण सन्ति। अत एव नाटकस्य लक्षणं सम्यकतया उत्तररामचरिते योजितमस्ति नाट्यकारेण भवभूतिना। भगवान व्रह्मा चतुर्भ्यः वेदेभ्यः तत्त्वमानीय नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं चकार। एतदेव नाट्यशास्त्राद् ज्ञातुं शक्यते। नाट्यशास्त्रानुसारेण -

एवं सङ्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्। नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्ग सम्भवम्॥
जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः सम्बन्धो नाट्यवेदो महात्मना। एवं भगवता सृष्टो व्रह्मणा ललितात्मकम्॥

(ना.शा. १/१६-१८)

नातकं नाम चतुर्वेदसम्भवम्, एवम्भूतस्य नाटकस्य प्रयोगे कानिचन तत्त्वानि अवश्यं पालनीयानि। नाट्यारम्भात् प्राक् नान्दी कर्त्तव्या। नाट्यशास्त्रे एतद्विषये उक्तमस्ति यत् नाट्यारम्भात् प्राक् नान्दी कर्त्तव्या। तद्यथा -

ततः परं प्रवक्ष्यामि ह्युत्थापनविधिक्रियाम्। यस्मादुत्थापन्त्यत्र प्रयोगं नान्दीपाठकाः॥
पूर्वमेव तु रङ्गेऽस्मिन् तस्मादुत्थापनं स्मृतम्। यस्माच्च लोकपालानां परिवृत्य चतुर्दिशम्॥
वन्दनानि प्रकुर्वन्ति तस्मात्तु परिवर्तनम्। आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रवर्तते॥
देवद्विजन्नुपादिनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।(५/२३-२५)

एत्न् समर्थयन् विश्वनाथः कविराजः साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे कथयति यत् -

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते
देवद्विजनृपादीनां तस्मन्नान्दीति संज्ञिता।
मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥(६ष्ठपरिच्छेदः)

नाट्यकारः भवभूतिः नाट्यशास्त्रदिशा उत्तररामचरितस्य मूले नान्दी करोति। तद् यथा-

इदं पूर्वेभ्यः कविभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।

विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्॥(उ.रा.च. मङ्गलाचरणम्)

अत्र भवभूतिः स्वपूर्ववर्तिनः वाल्मीकि-व्यास-भास-कालिदासादीन् महाकवीन् नमस्कारपूर्वकं प्रार्थयते। तेषामाशीर्वादेन भगवतः विष्णोःअंशभूता अमृतमयी वाणी तेन लभ्या भवदीति आशयः।

नान्द्यनन्तरं नाट्यकारस्य नामानुकीर्तनं पात्रैः करणीयम्। ततः प्रस्तावना योजनीया। नाट्यशास्त्रे उक्तमस्ति यत्-

प्रसाद्य रङ्गं विधिवत् कवेर्नामानुकीर्तयेत्

प्रस्तावनां ततः कुर्यात् काव्यप्रख्यानाश्रयाम्। ना.श. ५-१६८

उत्तररामचरिते नान्द्यन्ते सूत्रधारः कथयति - अलमितिविस्तरेण। अद्य खलु कालप्रियानाथस्य भगवतः यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि, एवमत्रभवन्तो विदां कुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञः भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः। अपि च-

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येनानुवर्तते।

उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥१/२

ततः परं प्रस्तावनां योजयितुं भवभूतिः नतसूत्रधारयोः आलापं वर्णयति। आलापप्रसङ्गे ऋष्यशृङ्गस्य द्वादशवार्षिकी यज्ञकथा, यज्ञे भागं वोढुं कौशल्यादयः गुरुजनाः तत्र गताह् चेतिकथा वर्तते। ततः रामस्य राजद्वारे स्थित्वा तस्य स्तुतिपाठं विधातुं नटः सूत्रधारं प्रचोदयति। नतस्य वचनं श्रुत्वा सूत्रधारः कथयति मारिष।

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।

यथास्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥१/५

एवं कथा प्रसङ्गे नटः पृच्छति भो भोः। क्वेदानीं महाराजः? आकर्ण्य, एवं जनाः कथयन्ति।

स्नेहात् सभाजयितुमेत्यदिनान्यमूनि। नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् देव्यास्ततो विमनसः परिशान्त्वनाय धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः॥१/७

इति पठित्वा उभौ प्रस्थितौ। एतेन नाट्यकारः प्रस्तावनां योजयति। उद्घातक-कथोद्घात-प्रयोगातिशय-प्रवर्तक-अवलगिताभिधासु पञ्चसु प्रस्तावनासु अत्र प्रयोगातिशयाख्या प्रस्तावना वर्तते। अत्र नतसूत्रधारयोः मध्येसीतापवादविषयिणी चर्चा अभवत्। अस्मिन् प्रसङ्गे "धर्मासनात् विशति वासगृहं नरेन्द्रः" इति कथनम् मध्ये आगतं । ततः परं दुखितमनसः सीतायाः रामचन्द्रस्य च प्रवेशः मञ्चेजातः। अतः प्रयोगातिशयः जातः । एतल्लक्षणं दर्पणे यथा- यदि प्रयोगः एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा।

एकस्य प्रयोगस्यारम्भे यदि तं प्रयोगं विहाय प्रयोगानन्तरं योज्यते तर्हि प्रयोगातिशयभवति। तन्नाम्नालक्षितत्वात् प्रस्तावना अपि प्रयोगातिशयो भवति। प्रस्तावनाविषये विश्वनाथकविराजः साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे लिखति-

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा

सूत्रधारेण सहिताः सलापं यत्र कुर्वते

चित्रैर्वाक्यैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः

आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि। सा. द. ६ष्ठः परि.

प्रस्तावयति प्रकृतविषयमुपस्थापयतीति व्युत्पत्त्या प्रस्तावनापदं साधु। भरतोऽपि नाट्यशास्त्रे प्रयोगातिशयविषये लिखति - प्रयोगेऽत्र् प्रयोगं तु सूत्रधारः प्रयोजयेत्

ततश्च प्रविशेत् पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः। ना. शा. २२/३३

नाटकस्य सफलतानिमित्तं कथावस्तु, नायकः रसश्चैति त्र्याणां निर्बाहः कविना समीचीनतया कर्त्तव्यः। यदि प्रथमतया कथावस्तुयोजनं अत्युत्तमतया क्रियते तर्हि नायकस्य रसस्य च योजनं कथावस्तुद्वारेण स्वतः सिद्धं भवेत्। नाटके अन्येषां रसानां योजनं

प्रसङ्गानुसारेण भवति। शृगारोवीरो वा अङ्गीरसरूपेण स्थानितो भवति। धीरोदात्त-धीरोद्धत-धीरललित-धीरशान्तत्वेन वा नायकः नाटके कथानस्त्वनुसारेण कल्पयितव्यः।

कथावस्तु नाटकस्य मूलं तत्त्वमस्ति। यस्मिन् नाटके कथावस्तु यावत् समृद्धं तन्नाटकमपि तावत् समृद्धं भवति। नाटकस्योपयोगितादृष्ट्या कथावस्तु द्विविधं भवति। एकं तावत् मुख्यं कथावस्तु, द्वितीयं तस्याङ्गभूतं कथावस्तु। अङ्गभूतं यत् कथावस्तु तत् मुख्यकथावस्तुनः विकासे साहाय्यं करोति। मुख्यं कथावस्तु आधिकारिकमिति, अङ्गभूत कथावस्तु प्रासङ्गिकमिति च उच्यते। साहित्यदर्पणे विश्वनाथः कथयति यत् -

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते

आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरं।

तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते

अस्योपकारार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते।।सा. द. ६६/४२-४३

प्रासङ्गिककथावस्तु यदि मुख्यकथावस्तुनः उपकारार्थं अन्तिमं यावत् तिष्ठति तर्हि तत् पताका इति उच्यते। यदि कदाचित् कदाचित् स्थलाविशेशे प्रासङ्गिक कथावस्तु मुख्यकथावस्तुनुपकरोति तर्हि तत् प्रकरीत्युच्यते। नाट्यशास्त्रानुसारेण -

यद् वृत्तं हि परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।

प्रधानवच्च कल्प्यते सा पताकेति कीर्तिताः॥

फलं संकल्प्यते सिद्धिः परार्थं यस्य केवल।

अनुवन्धेन हीनस्य प्रकरीं तां विनिर्दिशेत्॥ ना. शा २१/२५-२६

इदं कथावस्तु कदाचित् इतिहासमूलकम्, कदाचित् कविकल्पितम्, कदाचित् उभयोः मिश्ररूपं च भवति। भरतः नाट्यशास्त्रे एकविंशाध्याये इतिवृत (कथावस्तु) विषये निगदति, इतिवृत्तं काव्यस्य शरीरम्।

इतिवृत्तं तु काव्यस्य शरीरं परिकीर्तितम्।

पञ्चभिः सन्धिभिस्तस्य विभागाः परिकीर्तिताः॥

इतिवृत्तं द्विधा चैव वुधस्तु परिवर्जयेत्।

आधिकारिकमेकं तु प्रासङ्गिकमथापराम्॥

यत्कार्यं तु फलप्राप्त्या सामर्थ्यात् परिकल्प्यते।

तदाधिकारिकं ज्ञेयमन्यत् प्रासङ्गिकं विदुः॥ ना. शा २१/१-३

अनया दृष्ट्या निचारः क्रियते चेत् उत्तररामचरितस्य कथावस्तु इतिहासान्तर्गतं प्रख्यातं रामायणमाश्रित्य वर्तते। तत्र नायकः धीरोदात्तः भगवान् श्रीरामचन्द्रः रावणजयानन्तरं रामस्य अयोध्यायामभिषेकः जातः, ततः आरभ्य सीतया सह रामस्य मिलनं यावत् वृत्तान्तः आधिकारिकः। एतस्य कथावस्तुनः परिबृंहणार्थे मध्ये मध्ये चित्रनर्णनं शम्बूकवधः गोदावरीपञ्चवतीवर्णनम् अश्ववर्णनम् युद्धवर्णं च इत्यादयः न्तान्ताः प्रासङ्गिकरूपेण तिष्ठन्ति।

श्रीरामचन्द्रः नाटकस्य धीरोदात्तो नायकः। नायकस्य लक्षणं यथा -

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौननोत्साही।

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता॥ सा.द. ६

तत्रापि धीरोदात्तस्य लक्षणं यथा -

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।

यः आत्मश्लाघाशून्यः, क्षमाशीलः, अतिगम्भीरः, महापराक्रमी, स्थिरः, प्रच्छादिताभिमानः, दृढप्रतिज्ञः, स धीरोदात्तनायकः भवति। एतत् सर्वं लक्षणं श्रीरामचन्द्रे आसीत्, अतः सः धीरोदात्तनायकः उत्तररामचरिते भवितुमर्हति।

रङ्गमञ्चोपरि प्रदर्शनयोग्यं कथावस्तु द्विविधं भवति। प्रथमं तावत् अभिनेयम् , द्वितीयं सूच्यम्। अर्थात् पात्रम् आङ्गिकाद्यभिनयमाध्यमेन यद् रङ्गमञ्चे दर्शकानां पुरस्तात् प्रदर्शयति तदभिनेयम्। यद् रङ्गमञ्चे न प्रदर्श्यते, केवलं पात्राणामालापात् सूच्यते तद् सूच्यमुच्यते। उत्तररामचरिते एवमपि वर्तते। तत्र द्वितीयऽङ्के आत्रेयी-वनदेवतयोः आलापाः प्रचलति। अनेनालापेन ज्ञायते

यद् वाल्मीकिमुनेराश्रमे कुशलवयोः विद्यार्जनं भवति। तयोः वेदाध्ययं प्रखरं अपि च तौ विद्याप्रवीणौ इति। एतादृश्शमन्यतपि
सूच्यान्तर्गतं भवति। एतेन कथावस्तु नीरसं न भवति। कथायाः प्रवाहः अपि यथारीति चलति।
नाटके अर्थोपक्षेपकस्य स्थितिर्निवार्या। अर्थोपक्षेपकः पञ्चविधः।
यथा - विष्कम्भकप्रवेशक्तौ चूलिकाङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यापि।
विषकम्भकविषये विश्वनाथः कथयति यत् -

वृत्तवृत्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थास्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धस्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥सा.द. ६

"स्कन्भ" धातोः कर्तरि वुन् प्रत्ययात्
यत्रातीतभविष्यद् वृत्तान्तानां योजनम् अङ्गस्य प्रारम्भे भवति तत्र विषकम्भकः भवति। विषकम्भकः, अच् प्रत्ययाच्च विष्कम्भक इति भवति। आदावङ्कस्य इति कथनेन प्रथमेऽङ्केऽपि विष्कम्भकस्य सम्भवः इति सूचितम्। यदि एकेन मध्यपात्रेण किम्वा द्वाभ्यां मध्यमपात्राभ्यां वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां योजनं क्रियते तर्हि सः शुद्धः विष्कम्भको भवति। यदि नीच मध्यमपात्राभ्यां योज्यते तर्हि सः संकीर्णः बवति।

उत्तररामचरिते विद्यमानेषु सप्ताङ्केषु द्वितीयाङ्के चतुर्थाङ्के षष्ठाङ्के च इति चतुर्षु स्थलेषु विष्कम्भकः भवभूतिना योजितः अस्ति। द्वितीयाङ्के प्रारम्भे दण्डकारण्यमध्ये वनदेवता वासन्ती अध्वगवेषेन आगतायाः तापस्याः मैत्रेय्याः स्वागतं करोति। अत्रागमनस्य कारणं किमिति वासन्त्या पृष्टा तापसी आत्रेयी कथयति यत् वाल्मीकिमुनेराश्रमे इदानीं द्वौ प्रखरबुद्धिशालिनौ बालकौ बाल्मीकेः प्रत्यक्षतत्त्वावधानेनविद्याभ्यासं कुरुत। अतिदिप्तप्रज्ञाभ्याम् ताभ्यां सह एकत्र स्थित्वा अस्मादृशाणाम् अध्ययनयोगः न घटते। अपि च बाल्मीकिरधुना ब्रह्मणः आदेशेन रामचरितात्मकं रामायणं रचयति। अतः ममाध्ययनप्रत्यूहः जातः, येन तत् स्थानं विहाय अहमत्रागता। ततः परं सीतानिर्वासनम् , रामस्याश्वमेधयागारम्भः, ब्राह्मणस्यपुत्रस्य मृत्यु, शम्बूकवधः च इत्यादयः वृतवर्तिष्यमाणवृत्तान्ता वासन्तीपुरस्तात् तया प्राकाशिताः। अत्र मध्यमपात्रप्रयुक्तत्वात् शुद्धः विष्कम्भकः भवति।

एवं तृतीयाङ्केऽपि विष्कम्भकः अस्ति। तत्र पञ्चवटीवनमध्ये मुरला तमसा च नदीद्वयं मिथः आलापयति भगवान् अगस्त्यः तस्य पत्नी लोपामुद्रा गोदावरी कृते एकं सन्देशं प्रेषयितुं मुरलानाम्नी नदीं प्रेषयति। सन्देशस्तु एवमासीत् यत् श्रीरामचन्द्रः पञ्चवतीमागच्छति।
तत्र पूर्ववनवासकालिकवृता स्मृत्वा यदा सः मूर्च्छितः भवेत् तदा गोदावरी स्वशीतलतरङ्गयुक्तपवनेन रामस्य व्यजनं कृत्वा तं लब्धचेतसः कुर्यादिति। ततः सा तत्र पुत्रद्वयं यद्रामेण निर्वासिता सीता प्रसववेदनया व्याकुलिता सति गङ्गायामात्मानं विससर्ज। ततः सा तत्र पुत्रद्वयं जनयामास। पृथिवी गङ्गा च सीतां सपुत्रां रसातलं प्रति नीतवत्यौ। यदा द्वौ बालकौ किञ्चिद् वृद्धिं गतौ तदा गङ्गा तौ पुत्रौ बाल्मीकिनिकते समर्पितवती। गङ्गा सीतां कथयति, अद्य तवपुत्रयोः द्वादशजन्मदिवसः। अतः त्वं पञ्चवटीतटे सद्योविकसितपुष्पैः स्ववंशाधिदेवस्य सूर्यस्य उपासनां कुरु ।सीताऽपि तद्वचसा पञ्चवटीमागता। गङ्गायाः आशिर्वादेन केवलं तमसां विहाय न कोऽपि सीतां दृष्टुं पारयिष्यति। वनदेवताऽपि सीतां सशरीरां द्रष्टुं न शक्ष्यति। सीता तु सर्वं द्रष्टुं पारयिष्यतीति। रामः पञ्चवटीमागमिष्यतीति वृतान्तः सीताकृते गुप्तः रक्षितः। अतः परं मुरला कथयति अहं गत्वा एतादृशं गङ्गाकृतं वृत्तातं लोपामुद्रायैः प्रकाशयिष्यामि, इति उक्तवा सा प्रस्थिता। तमसा सीतायाः साहाय्यार्थं तत्र तिष्ठति।अनेन प्रकारेणतृतीयाङ्के विषकम्भकः समाहितः।
एतेन सीतायाः पुत्रजन्म, गङ्गाकर्तृकं पुत्रयोः पालनं वाल्मिकिनिकटे पुत्रयोः स्थितिश्चेत्यादयः। वर्तिष्यमाणा पञ्चवटीं प्रति रामस्यागमनम्, सीतायाः अपि तत्र गमनम्, साक्षात् सीतया रामस्य दर्शनं चेत्यादयः वर्तिष्यमाणाः वृतान्ताः अत्र ज्ञायन्ते। उभाभ्यां तमसा- मुरलाभ्यां मध्यमपात्राभ्यां अस्य योजनात् अयं विषकम्भकः शुद्धः भवति|चतुर्थाङ्केऽपि विष्कम्भकः योजिता भवभूतिना। अत्र स्थानं भवति वाल्मीकेः आश्रमः। आश्रमे वाल्मीकेः द्वयोः शिष्ययोः सौधातकि-दाण्डायनयोः आलापः भवति। तदा तयोरालापात् वाल्मीकिमुनेराश्रमे समागतानामतिथिनां स्वागतसत्कारविषये ज्ञायते। पुनः तयोः आलापात् ज्ञायते यद् ऋष्यश्रृङ्गस्य द्वादशवार्षिकयज्ञसमाप्त्यनन्तरं वशिष्ठः, अरून्धति, रामस्य मातरश्च सीताविरहितां अयोध्यां न गत्वा वाल्मीकिमुनेराश्रममागता। महर्षिजनकः अपि सीतानिर्वासनेन म्रियमाणः सन् स्वपुरातनमित्रस्य वाल्मीकेः आश्रमः आगतः। उभयोः आलापात् पुनः ज्ञायते यत्

वशिष्ठः पत्नीमरुन्धतीं कथयति त्वं कौशल्यां कथय सा स्वयं गत्वा आश्रम वहिर्भागे विद्यमानं पुत्रीनिर्वासनेन खिन्नमानसं जनकं सभाजयेत्। एवमालापं कृत्वा उभौ प्रस्थितौ।

एतेन् ऋष्यशृङ्गस्य यज्ञ समाप्ति, वशिष्ठः, अरून्धती, जनकः, रामस्यमातरश्च वाल्मीक्याश्रमागताः इति वृत्तस्य वृतान्तस्य प्रकाशः अपि च जनकेन सह कौशल्यायाः भावी साक्षात्कारः सूचितः भवति।

अत्र सौधातकिः इति नीचेन पात्रेण सह दण्डायनस्य मध्यमपात्रस्य आलापात् विष्कम्भकः संकीर्णः भवति।अतः परं षष्ठाङ्के पुनः विष्कम्भकः योजितः अस्ति। तत्र वाल्मीक्याश्रमे विमानमारुह्य विद्याधर दम्पती आगच्छतः । विद्याधरदम्पती लवचन्द्रकेत्वोः आश्चर्यकरं युद्धं वर्णयतः। अस्मिन् समये शम्बूकवधानन्तरं श्रीरामचन्द्रस्याकस्मिकागमनम् तत्र भवतीति विद्याधरदम्पतिकथोपनात् ज्ञायते। रामचन्द्रस्य मधुरालापं श्रुत्वा लवचन्द्रकेतु युद्धात् विरमत्। ततः विद्याधरमिथुनमपसरति। अत्र मिश्र विष्कम्भकः भवति। विद्याधरः मध्यमपात्रः विद्यादरी नीचपात्रम्। अभ्यां प्रयुक्तः विष्कम्भकः मध्यमः।
एतेन शम्बूकवध समाप्ति, लवचन्द्रकेत्वो युद्धसमाप्तिः चेति वृतकथानां श्रीरामचन्द्रस्य लवकुशाभ्यां सह परिचयः भविष्यतीति भावीकथायाः संसूचनात् विष्कम्भकः जातः।

अनेन प्रकारेण उत्तररामचरिते नाट्यरीतिष्वन्यतमस्य विष्कम्भकस्य निर्वाहः भवभूतिना सुष्ठु कृतः। नाटके जवनिका पश्चाद्भागे यत् सूच्यते तत चूलिका भवति।उत्तररामचरिते तृतीयाङ्के सीता पञ्चवट्यां पुष्पचयनार्थं भ्रमति, तमासा तस्याः साहाय्याकारिणी कतयतिब्सीतां प्रति, श्रूयते तपस्यतः किल शूद्रकस्य दण्ड्धारणार्थं ऐक्ष्वाको राजा दण्डकारण्यमागतः इति। एतत् श्रुत्वा सीता कथयति दिष्ट्या अपरिहीनधर्मः स राजा। अस्मिन् समये नेपथ्ये (जवनिका पृष्ठभागे) श्रूयते -यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्ध्वो मे यानि प्रियसहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि गिरिकन्दरनिर्झराणि गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि॥३/८
इयं भवति रामस्तोक्तिः। पुनः तत्रैव नेपथ्ये श्रूयते - अनेन पञ्चवटीदर्शनेन
अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्॥३/९
एतादृशं वर्णनं नाट्यशास्त्रदृष्ट्या चूलिका इति कथ्यते। विश्वनाथकविराजः साहित्यदर्पणे षष्ठपरिच्छेदे प्रकाशयति यत् अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका इति।

नाटके प्रायशः सर्वाः उक्तयः प्रयुक्तयश्च श्राव्या भवन्ति। कुत्रचित् कुत्रचित् यत् किञ्चित् सामालिकानां कृते अश्राव्यं अपि च तत् स्वयं पात्रात्मना कथयति तद् भवति स्वगतम्। उत्तररामचरितेऽपि एवमपि विद्यमानेषु स्थलेषु १माङ्के दुर्मुखस्योक्तिः स्वागता भवति। तद् यथा - (प्रविश्य) दुर्मुखः - (स्वगतम्) हाः कथमिदानीं देवीमन्तरेण ईदृशमचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि। अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैषः।इति। दर्पणकारः विश्वनाथः एतल्लक्षयितुं षष्ठपरिच्चेदे लिखति -

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।
सर्वं श्राव्यं प्रकाशं स्यात् तद् भवेदपवरितम्॥

यदाङ्कस्य समाप्तिर्भवति, तदा रङ्गमञ्चे स्थितैः पात्रैः अगामिनः अङ्कस्य सूचना दीयते। एतद् भवति अङ्कास्यम् , उत्तररामचरिते एवं प्रत्यङ्कशेषे पात्रैः परवर्तिनः अङ्कस्य कृते सूचना दत्तास्ति।

नाटकस्य साफल्यार्थं नाट्यकारेण पञ्च अर्थप्रकृतयः योज्याः। बीजम्, विन्दु, पताका, प्रकरी, कार्यञ्चेति पञ्च अर्थप्रकृतयः। अर्थोनाम मुख्यप्रयोजनम्। तस्य विकासाय ये व्यापाराः अपेक्ष्यन्ते ता एव अर्थप्रकृतयः बीजबिन्द्वाद्याः भवन्ति। एवमपि नाटकस्य विषयवस्तु योजने पञ्चसन्धीनाम् उपयोगिता नाट्यशास्त्रे प्रदर्शिता। मुखम्, प्रतिमुखम्, गर्भः, विमर्शः,उपसंहृतश्चेति पञ्चसन्धयः। उत्तररामचरिते प्रथमाङ्कद्वये मुखसन्धिवर्तते। तृतीयाङ्के प्रतिमुखसन्धिः, चतुर्थाङ्के गर्भसन्धिः, पञ्चमषष्ठाङ्कयोः विमर्शसन्धिः, सप्तमाङ्के उपसंहृतिः सन्धिः अस्ति। तत्र सप्तमाङ्के अन्तिमभागे वाल्मीकि कथयति - उत्थायाबालोक्य च उत्खातलवणः मधुरेश्वरः प्राप्तः।
लक्ष्मणः - सानुसङ्गाणि कल्याणानि।
रामः - सर्वमिदमन्नुभवन्नपि न प्रत्येमि। यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्। नाटकलक्षणानुसारेण उपसंहृतिः सन्धिः अद्भुतरसान्वितो भवेत्। अत्र वाल्मीकिलक्ष्मणरामोक्तिषु अद्भुतरसोप्यस्ति। इत्थमुत्तररामचरिते पञ्चसन्धीनां योजनं भवति।

नाटकेषु कञ्चुकीनामोपादेयता वर्तते। अन्तःपुरश्चरोवृद्धः सर्वविद्याविशारदः, इति लक्षणमापन्नः कञ्चुकी उत्तररामचरितेऽपि दृश्यते। चतुर्थेऽङ्के बाल्मीकेराश्रमे सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रित्य वैखानसव्रती जनकः उपस्थितः।वशिष्टादेशेन अरुन्धती कौशल्यासमीपं गत्वा जनकस्य दर्शनाय प्रचोदयति। अनन्ततरम् अरुन्धती कौशल्या च कञ्चुक्युपदर्शितेन तथा जनकस्य समीपमागच्छति। तदा कौशल्यायाः अधैर्यावस्थायां कञ्चुकी तामश्वा सयति।

श्रव्यं वा दृश्यं वा काव्यं भवतु तत्र आतमस्थानीय रसः अस्ति। यदि नाटके रसयोजनं सम्यक्तया न क्रियते तर्हि तत्र सर्वमनोहरत्वं नापद्यते। अतः रसयोजनं प्रति कविः सावधानः भवेत्। आचार्यभरतः नाट्यशास्त्रे षष्ठाध्याये लिखति, नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते अधुनाउत्तररामचरिते एतदाश्रित्य करुणरसं स्फोटयति। करुणरसस्य स्थायिभावः शोकः भवति। वाल्मीकिरामायणे यद्यपि मुख्यतया करुणरसोऽस्ति। तथापि भवभूतेः उत्तररामचरिते योजितः करुणरसः आत्यन्तविलक्षणः। असौ रसः एतावान् शक्तिशाली भवति। येन निर्जीवाः अपि पदार्थाः द्रवीभूताः भवन्ति। यदा रामचन्द्रः तृतीयसर्गे दण्डकारण्यं शम्बूकवधार्थं गतः तदा सः पूर्ववनवासकाले सीतया पालितान् पशून् पक्षिणश्च अपश्यत्। तान् दृष्ट्वा तस्य मनः द्रवीभूतं जातम्। भवभूतिः रामस्य मनोभावं प्रदर्शयितुं लिखति। -

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान् मैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेद योग्यः॥३/२५

यद्यपि अन्ये रसाः अङ्गतया उत्तररामचरिते निर्व्यूढाः तथापि करुणस्यप्राधान्यं सर्वानतिशेते। २याङ्के क्रौञ्चपर्वतस्य वर्णने भवभूतिः भयानकरसं योजयति। यथा -

गुञ्जत्कुञ्जकुतीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचक-
स्तम्भाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन् प्रचलिकानां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै
रुद्वेलन्ति पुराणचन्दनतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः॥२/२९

अत्र पेचकघुत्कारवति क्रौञ्चपर्वते काकाः मूकायन्ते। मयूराणां कूजितैः सर्पाः उद्वेजिताः भवन्ति। बहुपुरातनचन्दनवृक्षाणां स्कन्देषु सर्पाः मयूरेभ्यः भीताः सन्तः तिष्ठन्ति। प्रकृतिदृष्ट्या स्वतः प्राणीषु भीतिः जायते। एतत् स्फोटने भवभूतिः सिद्धहस्तः।

शम्बूकवधार्थं श्रीरामः पञ्चवटीमागच्छति। तत्र तमसासहिता सीता द्वादशवर्षानन्तरं दूरेस्थितस्य रामचन्द्रस्य स्वरंशृणोति। रामचन्द्रस्य स्वरं श्रुत्वा सीतायाः मनसि अनेके भावाः समुद्भवन्ति। भावशबलतायाः प्रकृष्टस्थलमिदमस्ति। भवभूतेः भाषायांम् -

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनोत्तम्भितमिवा।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैः गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तब हृदयस्मिन् क्षण इवा॥३/१३॥

अत्र श्रीरामचन्द्रस्य कण्ठस्वरं श्रुतवत्याः सीतायाः मनसि स्तब्धता, प्रसन्नता, कारुण्यमावेश्च इति भावविशेषाः उद्भवन्ति।अङ्गरसरूपेण उत्तररामचरिते वीररसस्य स्थिति वर्तते। तत्र पञ्चमाङ्के लवचन्द्रकेत्वोः युद्धप्रसङ्गे वीररसः समीचीनतया स्थानीतः। चन्द्रकेतु लवमुदिश्यकथयति -

आः तातापवादिन् भिन्नमर्याद अति हि नाम् प्रगल्भसे।
लव-अये मय्येव भृकुटिमुखः संवृत्तः
सुमन्त्रः-स्फुरितमनयोः क्रोधेन। तथाहि-
क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजनो वेपथुः
किञ्चित्कोकनदच्छदस्य सदृश नेत्रे स्वयं रज्यतः
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रमनयोर्भङ्गेन भीमं भ्रुवो
श्चन्द्रस्योद्भटलाञ्छनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृङ्गस्य चा॥५/३६॥

अत्र क्रोधिनोः लवचन्द्रकेत्वोः रूपवर्णाद् वीररसः वर्तते। एवं यत्र कुत्रापि उत्तररामचरिते रसान्तराणां समावेशे दृष्टेऽपि अङ्गीरसरूपेण करूणः सर्वेषां सामाजिकानामन्तरावर्जयति। नाट्यशास्त्रदृष्ट्या एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारोवीर एव वा इत्यनुसारेण नाटके अङ्गीरसरूपेण शृङ्गारो वीरो वा भवेत्। अयं नियमः अपि भासकालिदासादिभिः महद्भिः नाट्यकारैः पालितः भवभूतिरपि स्वस्य मालतीमाधवे शृङ्गाररसं महावीरचरिते वीररसमङ्गीरूपेण योजयति।उत्तररामचरिते यद्यपि शेषे रामसीतयोः मिलनं भवति, अतएवात्रापि नाटके शृङ्गारः अङ्गीभवेदिति शङ्का उदेति तथापि एतन्नरुचिकरम्। नाटकस्य मुख्यं स्रोतः करुणमयमेव।

अतः निःसन्देहमिदं वक्तुं शक्यते यत् उत्तररामचरिते अङ्गीरसरूपेण करुणः राजते। ब्रह्मानन्दशुलप्रभृतयः केचन उत्तररामचरितस्य टीकाकारास्तदनुयायिनश्चात्र करुणविप्रलम्भमङ्गीरूपेण स्वीकुर्वन्ति। परन्तु तदचारु नाट्यशास्त्रस्य षष्ठाध्याये भरतः करुणरसविषये लिखति - करुणस्तु शापक्लेशविनिपातनेष्टजनविप्रयोगविभवनाशवधवन्धनसमुत्थः निरपेक्षभावः, औत्सुक्यचिन्तासमुत्थ सापेक्षभावो विप्रलम्भकृतः। एवमन्य करुणः अन्यश्चविप्रलम्भः। पुनःकरुणस्य स्थायिभावः शोकः, विप्रलम्भस्य स्थायिभावः रतिः। इति उभयोर्मध्ये भेदः। विश्वनाथकविराजः साहित्यदर्पणे लिखति –
शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः।
विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः सम्भोग हेतुकः।सा. द.३
साहित्यदर्पणे ३यपरिच्छेदे विश्वनाथः कथयति यत्
यूनोरेकतस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्ततो भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः॥
अतएव एतदानुसारं उत्तररामचरिते करुणविप्रलम्भः निरवकाश एवाअत्र अधुना अङ्गीरसरूपेण करुणं समर्थयन्तः केचन दृढाः प्रमाणाः समुपस्थाप्यन्ते।
नाटकेऽस्मिन् त्रिषु स्थलेषु रामसीतयोः सहावस्थानं वर्तते। प्रथमाङ्के अयोध्यायां राजभवने रामसीतयोः सहावस्थानमस्ति। अत्र उभयोः एकत्रावस्थानस्य मधुरं चित्रं सामाजिकानां मनोहरति। ३याङ्के पुनः पञ्चवट्यां पूर्वानुबूतप्रदेशे छायासीतायाः स्पर्शमुखं रामेणानुभूतम्। अन्तिमे ७माङ्के महर्षिवाल्मीकेः आश्रमे गङ्गायाः पवित्रे तटप्रदेशे। परन्तु नाटकस्य प्रथमाङ्के शोकस्य यद् बीजमुप्तं भवभूतिना तदेव महाद्रुमरूपेण समग्रनाटकमावृणोति। नाटकस्य प्रथमाङ्के सीतायाः निर्वासनं जातम्। ततः प्रभृति रामस्य पूर्णविश्वासः आसीद् यद् गङ्गाकुलारण्ये सीता नूनं केनचित् हिंस्रजन्तुना भक्षिता स्यात्। अतः सीतायाः विनासजनितशोकः रामस्य मनसि प्रथमाङ्के एव वद्धमूलः जातः। अतः असौ आत्मानं नृशसम् कृतघ्नम् दुरात्मानम् इत्यादिरूपेण चित्रयति। रामः कथयति यथा कश्चित् निष्ठुरः गृहपालितं शकुन्तं स्येनाय समर्पयति तथा अहमपि सीतां मृत्येव समर्पयामि। सीतानीर्वासनानन्तरं रामस्य उक्तिरियम् भवभूतेः भाषया यथा -

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे शौनिके गृहशकुन्तिकामिवा॥१/४५

ततः परं रामः सुप्तायाह् सीतायाः चरणौ शिरसि स्पृष्टौ कृत्वा सीतासमीपात् दूरीभवति। भवभूतेः भाया - सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादपङ्कजस्पर्शः।

अतः परं द्वादश वर्षानन्तरं यदा तृतीयाङ्के शम्बूकवधप्रसङ्गे रामः पञ्चवट्याम् सीतायाः स्पर्शमनुभूतवान् तदा यद्यपि सीता रामं प्रत्यक्षं पश्यति, तथापि रामः सीतां प्रत्यक्षं द्रष्टुं न पास्यति। सः सीतायाः स्पर्शं भ्रमतीति चिन्तयति। तस्य पूर्णः विश्वासः आसीत् यद् सीता कदाचिद् जीविता न स्याद्। भवभूतेः भाषया रामः - अथवा कुतः प्रियतमा? नूनं सङ्कल्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमोरामभद्रस्य। पुनः रामः कथयति व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यापि न पश्येत्। अपि खलु स्वपनः एव स्यात्। न चापि सुप्तः, कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवान् अनेकवारं परिकल्पितो विप्रलम्भःपुनः पुनः अनुवध्नाति माम्।
तृतीयाङ्के पुनः रामः कथयति-

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिब नामापि न च रामो न जीवति?३/३३

अस्य तात्पर्यमिदं यत् द्वादशवर्षाणि यातनि। सीतायाः नामपि नास्ति। तथापि रामो जीवति। अत्र रामस्य दैन्यभावः प्रकाशते। उत्तररामचरिते भवभूतिः मुक्तकण्ठेनोद्घोषयति -

एको रस करुणः एव निमित्तभेदाद्

अभिनवगुप्ताचार्यः पुनरप्युच्यते – यदा कविः यथावृत्तं वस्तुमात्रं वर्णयति, नटश्च प्रयुङ्क्ते, न तु स्वबुद्धिकृतं रचनावैचित्र्यं तत्रानुप्रवेशयन् तदा तावान् स काव्यभागः प्रयोगमागश्च लोकधर्माश्रयः । अतोऽत्र धर्मी । काव्यनाट्ययोः लोकानुसारित्वं वा वैचित्र्ययोगित्वं वा धर्मः ।

नाट्यधर्मीं एवं लक्षयति-

अतिवाक्यक्रियोपेतमतिसत्वातिभावकम् ।
लीलाङ्गहाराभिनयं नाट्यलक्षणलक्षितम् ॥१३/७३॥
स्वरालङ्कारसंयुक्तमस्वस्थपुरुषाश्रयम् ।
यदीदृशं भवेन्नाट्यं नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥ इति ।१३/७४ ।

इतिहासादिवाक्यमतिक्रम्य या उचितरञ्जकेतिवृत्तकल्पनाक्रियोपेतं, स्वभावचित्त-वृत्तिञ्चातिक्रम्य यत् कविकल्पितचित्तवृत्यन्तरयुक्तं मनोहराङ्गहाराभिनयोपेतं नाट्यताललयान्वितं नाट्यं सा नाट्यधर्मी भवति।

इतिहासादिवाक्यमतिक्रम्य उपरञ्जनार्थं काव्यसंसारे प्रजापति रूपः कविः स्वप्रतिभाप्रकर्षेण नूतनकल्पनावैभवेन नाट्यसौन्दर्यं वर्धयति । उक्तं च -

इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाननुगुणां स्थितिम् ।
उत्प्रेक्ष्योऽप्यन्तराभीष्टरसोचितकथोन्नयः ॥ इति ।

रूपकरसानुसारी इतिवृत्तघटना क्रियते नाट्यविचक्षणैः कविभिः । राजशेखरेण रामनिर्वासनार्थं दशरथवेषराक्षसविरचित तत्त्वकल्पनं कृतम् । एवं अभिज्ञानशाकुन्तले शापवृत्तान्तं चतुर्थाङ्के कालिदासकविना सन्निवेशितम् । उत्तररामचरिते प्रथमाङ्के चित्रदर्शनं, रामस्य वासन्त्या सह सम्भाषणादिकं तृतीयाङ्के स्वप्नवासवदत्ते पञ्चमाङ्के स्वप्नाङ्कादिकं च रसोत्कर्षाय निबद्धम् ।

एवं महावीरचरिते मूलकथा परिवर्तनं भवभूतिना कृतम् । दशरथस्य सत्यपरिपालनार्थं कैकेयीवचनानुसारं श्रीरामः वनं गतवान् इति कथा लोकवार्ताक्रियोपेतत्वात् स्वस्वभावोपगतत्वात् शुद्धत्वात् च लोकधर्मे । किन्तु भवभूतिनात्र अतिवाक्यक्रियोपेतत्वं कल्पितम् । रामचन्द्रस्य नाशं काङ्क्षमाणः रावणः, येन केनापि प्रकारेण तं दण्डकारण्यानयनार्थं शूर्पणखां मन्थरावेषेण अयोध्यां प्रति प्रेशितवान् इति ।

भासस्य दूतवाक्ये दुर्योधनः महाभारतदुर्योधनसदृशः एव । अस्य स्वभावस्य अविकृतत्वात् शुद्धत्वात् च लोकधर्मीत्वेनैव वर्णितम् । किन्तु ऊरुभङ्गे अस्य स्वभावपरिवर्तनं विहितम् । अतिसत्वातिभावात्मक कथपात्ररूपेण वीर्णतत्वात् नाट्यधर्मी । कविव्यापारे द्वयोः अपि स्वरूपं दृष्टुं शक्नुमः ।

एवं 'तापसवत्स्वराजे' स्वभावचपलविदूषकचित्तवृत्तिं अतिक्रम्य वत्सराजेन मन्त्रीसमुचितगाम्भीर्यावहित्थयोजनं वसन्तकस्य, तथा स्वभावभाषितमतिक्रम्य राज्यास्वभावानुरूप प्राकृतभाषाव्यवहारं अतिक्रम्य संस्कृत भाषायां व्यवहारः च वर्णितः ।

यत्र च पुरुषः न स्वरूपे तिष्ठति, अपि तु स्त्रीबलमाश्रयति, पुरुषः यत्र न स्वरूपस्थः अपि तु स्त्रिया प्रयुज्यते तन्नाट्यधर्मी। एतत् सम्भाव्यमान सद्रञ्जनोपयोगि वस्तूपयोगि च । नाट्यधर्म्यां नाट्यस्य समस्तलक्षणानि विद्यमानानि सन्ति । अतः आङ्गिकाद्यभिनये लीलायाः प्राधान्यं भवति इत्यतः मनोहराङ्गहारादिद्वारा प्रस्तूयते । नाट्यधर्म्याः शास्त्रीयविधिसहायेन अभिनयः अतिरञ्जकः, हृदयग्राही, रोचकं रमणीयं च भवति ।

न ह्यासन्नवचनस्यापि अश्रवणं अन्यैः अश्रूयमाणस्य च श्रवणं लोकेऽपि कदाचन भवति । केवलं नाट्ये तत् सौन्दर्यार्थं नाट्यरङ्गे आनीयते । अभिनगुप्ताचार्याः स्वोपाध्यायवचनं एवं उक्तम् –

तदत्रास्ति न तत्रास्य कवेर्वर्णनमर्हति ।
यन्नासम्भवि यत्र स्यात्सम्भाव्यत्र तु धर्मतः ॥ इति । अभिनवभारती – १३-१८६

यत्र नियमहेतुः सौमनस्यं तत्र नाट्यधर्मी व्यापकत्वं इति बहुतरोदाहरणनिदर्शाद्वारा दर्शयितुमाह-

लोकप्रसिद्धं द्रव्यन्तु यदा नाट्ये प्रयुज्यते ।
मूर्तिमत् साभिलाषं च नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥ १३/७५ ॥
आसन्नोक्तं तु यद्वाक्यं न शृण्वन्ति परस्परम् ।
अनुक्तं श्रूयते वाक्यं नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥१३/७६॥ इति ।

लोकेऽपि कलाशिलिपकल्पनाकलितं तदपि मूर्तिसम्पादनेन प्रयुज्यते येन नायिकानायकयोः अभिलाषाणां साकाप्रतीतिः जायते । "मायापुष्पके" ततः प्रविशति ब्रह्मशापः" इति ब्रह्मशापस्य प्रवेशः योजितः । जनान्तिकापवारितयोः आसन्नोक्तमपि वाक्यं न सर्वे शृण्वन्ति, किन्तु अल्पैरेव । अनुक्तवचनानां आकाशभाषितद्वारा केवलं अभिनेतृश्रवणमेव जायते । एतत् सर्वं नाट्यधर्मीविधिरिति भरतमुनिना उक्तम् ।

शैलयानविमानानि चर्मवर्मायुधध्वजाः ।
मूर्तिमन्तः प्रयुज्यन्ते नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥ नाट्यशास्त्रम् १३-७७ ।

प्रक्रियायां शैलादि पदार्थानां मूर्तरूपेण प्रयोगः कृतः । यथा – 'अग्रे पर्वत एष, कथमत्र गन्तव्यम्' । इत्यादि । गङ्गानद्याः देवतारूपेण, मैनाकपर्वतस्य महापुरुषत्त्वेन च वर्णनं क्रियते । चर्मखेटकादीनां अपूर्णरूपं दारुवस्त्रचित्रादिपतया प्रयुज्यते ।

एवं य एकां भूमिकां कृत्वा कुर्वीतैकान्तरोऽपराम् ।
कौशिल्यादेककत्वाद्वा नाट्यधर्मीति सा स्मृता॥
यागम्या प्रमदा भूत्वा गम्या भूमिषु युज्यते ।
गम्या भूमिष्वगम्या च नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥ नाट्यशास्त्रम् १३-७८,७९

नटः अथवा नटी स्वस्य प्रागल्भ्येन एकां भूमिकां त्यक्त्वान्यभूमिकां आश्रयति । तदपि नाट्यधर्मी एव ।

ललितैरङ्गविन्यासैस्तथोक्षिप्तपदक्रमैः ।
नृत्यते गम्यते यश्च नाट्यधर्मी तु सा स्मृता ॥ नाट्यशास्त्रम् – १३-८०

आवेष्टितादि चतुर्विधकरणोपगृहीत वर्तनाप्रवर्तितैः, तथा उत्क्षिप्तपदक्रमैः चतुष्तालादिद्वारा च क्रमशः कालिविभागः चतुष्कलत्वादयः । नृत्यते गम्यते च इत्यत्र 'च' शब्दः 'इव' शब्दार्थः । नृत्यत इव यद् गम्यते नृत्यसदृशी या विशाखा सा गतिरिव इत्यर्थः । तदपि नाट्यधर्मी एव ।

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखक्रियात्मकः ।
सोऽङ्गाभिनयसंयुक्तो नाट्यधर्मीति तु सा स्मृता ॥ तत्रैव १३-८१

आतोद्यादिभिः अभिनयैः लोकस्वभावानुभावविलासोपेतत्वं नाट्यधर्मीत्वं भवति । समस्ताभिनयप्रकारसारा नाट्यधर्मी अभिहिता इति दर्शयति

यश्चेतिहासवेदार्थौ ब्रह्मणा समुदाहृतः ।
दिव्यमानुषरत्यर्थं नाट्यधर्मी तु सा भवेत् ॥ इति । १३-८२

ब्रह्मणा देवमनुष्ययोः मनोरञ्जनार्थं वेदेतिहासपुराणार्थानां उदाहरणरूपेण प्रस्तुतम् । तदपि नाट्यधर्म एव । एवं रङ्गपीठे कक्ष्याविभागोऽपि नाट्यधर्मी एव । नाट्यधर्मीप्रवृत्तं हि सदा नाट्यप्रयोगः करणीयः । गीतातोद्यादीनिन्यभिनयानि विना सामाजिकप्रीतिः नैव सम्भवतीति नाट्यधर्मीव्यापाकत्वं सम्यगुपपादितं आचार्येण ।

त्रयोविंशत्यध्याये भरतमुनिना उक्तम् –

वर्तनाच्छादितं रूपं स्ववेषपरिवर्जितम् ।
नाट्यधर्मीप्रवृत्तेन ज्ञेयं तत् प्रकृतिस्थितम् ॥ इति । १३-८२

यथा जीवात्मा शुद्धनिर्मलचिदानन्दप्रकाशः स्वातन्त्र्यरूपं स्वमनपायिनमपि स्वभावं परित्यज्य अन्यत् दैहिकं स्वभावं भजते तद्वत् नटोऽपि आत्मावष्टम्भमत्यजन्नेव देहस्थानीयेन वर्तनादिवेषपरिवर्तनेन तदुचितस्वभावालिङ्गितमिव स्वात्मानं सामाजिकान् प्रति दर्शयति । उक्तं च –

यथा जन्तुः स्वभावं स्वं परित्यज्यान्यदेहजम् ।
परभावं प्रकुरुते भूतदेह समाश्रयम् ॥ १३/८४
वर्णकैश्चैव वेषैश्च च्छादितः पुरुषस्तथा ।
परभावं प्रकुरुते यस्य वेषं समाश्रिता ॥ इति । १३/८५

हस्ताभिनयनिरूपणावसरे नवमाध्याये नाट्यधर्मीं एवं विशदयति अभिनवगुप्ताचार्यः । अभिनयस्य द्विधा इतिकर्तव्यता लोकधर्मी नाट्यधर्मी च । आद्या द्विविधाआन्तरा बाह्या च । तत्रान्तरा चित्तवृत्त्यर्पकत्वे-नानुभावस्य, यथा गर्वोऽप्यहम् इति तज्ज्ञैः ललांटदेशोच्छ्रितः । केवलबाह्या अवयवरूपा वा । यथा - पद्मकोशस्य कथमपि निरूपणे । अभिनवभारती IX तथा कारिका २९

नाट्यधर्म्यपि द्विधाकाचित्त्वंशेन - लोकमुपजीवतियथा वर्णातुरेण , हस्तेन तत्र तत्र व्यवहितेन लोकः उपजीव्यते । लोको हि अनिर्देश्यताशेषं वस्तु निर्दिदिक्षुः ईदृशं तादृशम् इत्थम्भूतमित्यवसरे कथयति इति प्रयुक्तमेव चतुरैः । एवं जनान्तिकादौ वाच्यम् । नटसमयमात्ररूपा नाट्यधर्मी । समयस्याकिञ्चित्करस्य कल्पने प्रयोजनाभावात् । अभिनवभारती IX १,२ तथा का – २०५-११

शार्ङ्गदेवेन सङ्गीतरत्नाकरे आशयस्यास्य श्लोकरूपत्वमेवं प्रदर्शितम् ।

इतिकर्तव्यता तस्य द्विविधा परिकीर्तिता ।
लोकधर्मी नाट्यधर्मीत्येते च द्विविधे पुनः ॥
चित्तवृत्त्यर्पिका काचित् बाह्यवस्त्वनुकारिणी ।
इति भेदद्वयं प्राहुः लोकधर्म्याः पुरातनाः ।
आश्रित्य कैशिकीं वृत्तिमेका नाटयोपयोगिनीम्
तद्योग्यां लौकिकीं शोभां करोत्यावेष्टितादिभिः ॥
अंशेनैवोपजीवन्ती लोकमन्या प्रवर्तते ।
नाट्यधर्म्या अपि प्राज्ञा भवेद् द्वन्द्वमिदं जगुः ॥ इति । संगीतरत्नाकरः – VI-२४-२७

नाट्यशास्त्रस्य प्रथमसंस्कर्ता रामकृष्णकविना अभिनवभारत्यां एतव्याख्यानस्यापि संग्रहः कृत इत्यपि विदुषां मतमस्ति' ।

एवं हस्तमन्तरतः कृत्वा यद्वदेद्नाट्यकर्मणि ।
आत्मस्थं हृदयस्थं च परोक्षं चैव तन्मतम् ॥

इत्यादिना वाक्याभिनयादिषु विषयेष्वपि नाट्यधर्मीत्वं आवश्यकमिति भरतमुनिना उक्तम् । अत्र विषयभेदकृतं आत्मस्थस्यापि पारोक्ष्यं दर्शयति । स्वगतजनान्तिकापवारितकेषु वक्तुरात्मस्थं पात्रान्तराणां चाप्रत्यक्षं, इत्यतः आत्मस्थमपि तत्परोक्षं भवति, नाट्यधर्मीवशात् । वाक्याभिनयं यथा - स्वप्नवासवदत्ते प्रथमाङ्के पद्मावत्या प्रथमदर्शने वासवदत्ता स्वगतत्वेन उच्यते – 'इयं सा राजदारिका अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्' इति । लोकधर्म्यामपि आत्मस्थं परोक्षं भवति । यथा 'सुप्तो मत्तोऽहं किल विललाप' इति ।

अभिनयप्रकारनिरूपणानन्तरं भरतमुनिना एवं उक्तम् –
एवमेते मया प्रोक्ता नाट्यं चाभिनयाः क्रमात्
अन्ये तु लौकिका ये ते लोकाद् ग्राह्या सदा बुधैः ॥
लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं मतम्
वेदोध्यात्मपदार्थेषु प्रार्या नाट्यं प्रतिष्ठितम् ॥
वेदाध्यात्मोपन्नं तु शब्दच्छन्दसमन्वितम् ।
लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकात्मकं तथा ॥
यानि शास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि याः क्रियाः ।
लोकधर्मप्रवृत्तानि तन्नाट्यमिति संज्ञितम् ॥
न च शक्यं हि लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
शास्त्रेण निर्णयं कर्तुं भावचेष्टाविधिं प्रति ॥
नानाशीला प्रकृतयः शीले नाट्यं प्रतिष्ठितम् ।
तस्माल्लोकप्रमाणं हि विज्ञेयं नाट्ययोक्तृभिः ॥ इति ।

एवं विविधकथापात्राणां विभिन्नाभाषाविचिन्तनवेलायामपि योन्यन्तरीभाषायाः स्वीकरणं नाट्यधर्मीत्वेन स्वीकृतम् ।

अथ योन्यन्तरीभाषा ग्रामारण्यपशूद्भवा ।
नानाविहङ्ग जा चैव नाट्यधर्मीप्रतिष्ठिता ॥ इति ।

पशुपक्षिप्रभृतीनां यद्रुतं तद् नाट्यप्रयोगे कुत्राप्यवसरे सभाव्यमिति अभिनवगुप्ताचार्यः ।

सामान्याभिनयप्रसङ्गे भरतमुनिना उक्तम् – न कार्यं शयनं रङ्गे नाट्यधर्मं विजानता ॥ इति ।

नाट्यधर्म्याः व्यापकत्वात् लोकस्वभावाभाविन्याः लोकधर्म्याःप्रयोजनं किमिति आशङ्कायां उच्यते –

सर्वस्य हि सहजो भावः सर्वे ह्यभिनयोऽर्थतः ।
अङ्गालङ्कारचेष्टाभिर्नाट्यधर्मी प्रकीर्तिता ॥ इति । १३-८५

कविगता नाट्यगता नाट्यधर्मीरूपा वागङ्गालङ्कारचेष्टा सर्वप्राणवती भवति । अभिनयश्च सर्वाभिनेयमर्थमपेक्ष्य प्रवर्तते । तस्मात् सहजसंवादादिकर्मणां भित्तिस्थानीयत्वेन लोकधर्मीलक्षणं उक्तम्।

भित्तिचित्रयोः यथा आधाराधेयभावसम्वन्धः तथा नाट्यधर्मीलोकधर्म्योः परस्पराधाराधेयभाव- सम्बन्धः । नाट्यस्थिताभिनयतत्त्वं लोकवृत्तिविशेषेण सम्बद्धं, सौन्दर्यचमत्कारयुक्तं च भवति । लोकधर्मिणः सौन्दर्याविर्भावः नाट्यधर्म्यभावात् न सम्भवेति ।

यद्यपि धर्मीद्वयमस्ति, तथापि धर्मी इति एकवचनमेव प्रयुक्तम् । नाट्यधर्म्याः नाट्ये प्राधान्यात् लोकधर्म्याः तु तत्रैवान्तर्भावादेव, समाविष्टत्वादेव, एकवचनं प्रयुक्तमिति अभिनवगुप्तपादाचार्याः ।

कुदृनीमते दामोदरगुप्तेण नाट्यधर्मपदं एवं प्रयुक्तम् –

सावरणं व्रजतोऽन्यां कौतुकदृष्ट्या प्रसङ्गतो दयितान् ।
बुद्ध्वापि विदग्धधियो वर्तन्ते नाट्यधर्मेण ॥ इति ।

प्रादेशिकनाट्यरङ्गेषु अपि नाट्यधर्मीमाश्रित्य कथायाः विस्तरेण प्रतिपादनं कृतं वर्तते । केरलीयकूटियाट्टकलायां अस्या विस्तृतोपयोगः दृष्टुं शक्यते । परम्परारूपकलादिषु नाट्यधर्मीप्रयोगः प्राचुर्येण सम्प्रत्यपि प्रवर्तते ।

पाश्चात्याचार्यवर्यैः अस्तूगोय्थे प्रभृतिरपि नाट्यधर्मीस्वीकरणं कृतम् ।

एवं गानं वाद्यं च विविधाश्रयं नाट्यं च नाट्ययोक्तृभिः कर्तव्यम् । तथा च उक्तम् -

गीते प्रयत्नः प्रथमं तु कार्यः शय्यां हि नाटयस्य वदन्ति गीतम् ।
गीतेऽपि वाद्येऽपि च संप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ॥ ३२-४४८

इदानीं चलचित्रमाध्यमेषु तथा दूरदर्शनमाध्यमेषु च लोकधर्मीप्रचारः अधिकतया दृश्यते। दशरूपकेष्वपि मृच्छकटिकादि प्रकरणानां अधिकप्रचारः इत्यपि वक्तव्यमेव ।

वाक्याभिनये केवलवाक्योच्चारणं लोकधर्मी, रागयुक्तवाक्योच्चारणं नाट्यधर्मी । आहार्याभिनयेऽपि हारकेयूरादिभूषणं लोकधर्मी, फूत्कृतं ध्वजयानादिभूषणं नाट्यधर्मी । सात्विकाभिनयेऽपि नटेन भवयित्वा स्वरूपतो दर्शिताः स्तम्भादयो लोकधर्मी, त एव साक्षात्कृताः हस्ताभिनयेन दर्शिताः नाट्यधर्मी इति संक्षेपेण निर्धारयितुं शक्यते । एवं व्यापकार्थे समस्ताभिनयप्रकारसारा नाट्यधर्मीति सिद्धम् ।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् इति भरतमुनिना उक्तम् । त्रिलोकस्यापि भावानुकीर्तने प्रतिभासम्पन्नानां रूपककर्तृणां धर्मीद्वयस्य साहाय्यं नितरामावश्यकम् ।

****

नाट्यशास्त्रप्रोक्तस्यातोद्यविधेः समीक्षणम्

-[1]डा. नारायणन्. ई. आर्.

मङ्गलाचरणम्

अनादिरसनायकं धृतमृगाङ्गुलिं पावनं
प्रपञ्चपितरं सुरं सकलवेदसारन्धरम्।
सुभक्तवरदायिनं डमरुनादिनं खेचरं
हिमांशुधरमर्च्चये चटुलताण्डवं शङ्करम्॥

नाट्यसङ्ग्रहः

भरतमुनिविरचितस्य नाट्यशास्त्रस्य षष्ठेऽध्याये उक्तं यथा-

रसा भावा ह्यभिनयाः धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिः स्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः॥[2] इति नाट्यसङ्ग्रहः।

आतोद्यविधिः

नाट्यशास्त्रस्य षष्ठे, अष्टाविंशे, चतुस्त्रिंशे चाध्यायेष्वातोद्यविधानं विशदीकृतम्। आतोद्यं हि, आतूत्यद्यतेऽभिहन्यते इति भावार्थेन वादित्रं विवक्षितम्। तुदँ व्यथने, ऋहलोर्ण्यदिति प्रकारेण आसमन्ताद् तुद्यते ताड्यते इत्यातोद्यमिति तद्रूपं सङ्गच्छते। आतोद्यं हि ततम्, अवनद्धम्, घनम्, सुषिरं चेति चतुर्धा[3] विभक्तम्। नाट्यसङ्ग्रहे[4] आतोद्यं नाट्याङ्गेष्वन्यतमः। आतोद्यविधिस्ततावनद्धघनसुषिरप्रकारैश्चतुर्विधः।[5] सोऽपि नाट्यानुरूपो विकल्प्यते। तन्त्रीकृतस्यातोद्यस्य [6]ततमिति संज्ञा। केवलस्य पौष्करस्यैवा[7]वनद्धमिति नाट्यातोद्यविधौ स्वीकारः। कांस्यतालादीनां नाट्ये आतोद्यतया स्वीकारेण घनमित्युच्यते[8]। वंशादयस्तु तन्त्रीकृतं ततसंज्ञं नानातोद्यसमाश्रयं गान्धर्व्वमिति [9]तत् प्रसिद्धम्। सुषिरो वंशस्तत्र कीचकरन्ध्रभागेषु वायुना [10]पूरयन् स्वरतालसमाश्रयेण नाट्यानुरूपवाद्योपपत्तिः। साऽपि गीतानुरूपेण परम्परया नाट्यस्याङ्गतां प्राप्नोति। उक्तं च सङ्गीतरत्नाकरे-

गीतं च वादनं नृत्तं तद्देशीत्यभिधीयते।
नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्त्ति च॥[11] इति। अपि च तत्रैवोक्तम्-
रञ्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते।[12] इति। अपि च-
गीतवाद्यप्रमाणेन कुर्याच्चाङ्गविचेष्टितम्। इति च।[13]

आतोद्यानां प्रयोगो नाटकाश्रयः।[14] नाटकग्रहणमत्र सर्वत्र रूपकेषूपलक्षणम्। सर्वेषां रूपकाणां केवलं सन्ध्यादियोगेन प्रकारभेदात्।

तते तन्त्रीकृते आतोद्ये सपरिग्रहो गायनः कुतपविन्यासेन[15] भवति। कुतपविन्यासो यथा- तत्र रङ्गाभिमुखो मौरजिकस्तस्य पाणविकदर्दरिकौ वामतः। एष प्रथममवनद्धकेन तस्य ततः कुतपविन्यास उक्तः। तत्रोत्तराभिमुखो गायकः। गायकस्य तु वामपार्श्वे वैणिकः। वैणिकस्य दक्षिणेन वंशवादकौ। गातुरभिमुखं गायिका। इति कुतपविन्यासः[16]। कुतपविन्यासस्तु तिसृभिः प्रकृतिभिरुत्तममध्यमाधमाभिर्युतो नानादेशसमाश्रयो नाट्ये योज्यते। गीतम्, वाद्यम्, नाट्यं चालातचक्रसदृशं कर्तव्यमिति निष्कर्षः।

नानातोद्यसमाश्रयं तन्त्रीकृतं स्वरतालपदाश्रयं गान्धर्व्वमित्युच्यते। देवानामत्यर्थमिष्टं गन्धर्व्वानां च तथा प्रीतिकरमिति तद्गाधर्व्वमुक्तम्। गान्धर्व्वगात्रं वीणा च वंशश्च। स्वरगान्धर्व्वम्, तालगान्धर्व्वम्, पदगान्धर्व्वमिति च त्रिविधं गान्धर्व्वम्।

अभिनवभारत्यामुक्तम्-प्रयोगं सूत्रकल्पतया समीकुर्वन् स्वरं लयं च स्वप्रेक्षकहृदयं तत्रैवानुस्यूतं तिरोदधत्साम्यं च रागनिबन्धनं विदधद्रसं प्रति परममङ्गलम्। तत्र स्वरांशे ततसुषिस्योरुपयोगः। तौ हि स्वरस्य परमार्थं रक्तिलक्षणं वितरतः। गातॄणां हि वाक्पारुष्यादि-दोषशतोपहतानां स्वरस्तन्त्रीवेणुस्वरेण सुस्वरतां नीयते, स्वभावत एव तन्माधुर्यात्। वाङ्माधुर्यं यावद्धीनं तदाहार्यं मधुरं निरोपितं माधुर्यमभ्यासादाहरेयुः। ततानुबद्धस्वरस्य न न्यूनाधिकभावाशङ्का काचित्, तत्र मूर्च्छितायां वीणायामशिक्षितेनाप्यभिहननेन स्वरत्त्वोपलम्भः। नत्वेवं वंश इति ततातोद्यस्यैव प्राधान्यम्। अत एव वीणा शारीरिकी चैवाचार्यैर्निर्दिष्टा। दारवी गात्रवीणा (ना. शा. २८.१॥ पृ. ४२९)

अपि च नाट्यशास्त्रे वाद्ययोजना तथोक्ता यथा-

शृङ्गारहास्ययोगे वाद्यं योज्यं तथाऽड्डिते मार्गे।
वीराद्भुतरौद्राणां वितस्तमार्गेण वाद्यं तु ॥ ना.शा. ३४. ५७॥
करुणरसेऽपि हि वाद्यं योज्यं हय् आलिप्तकरणमार्गे तु।

---

1. वरीयान् सहायकाचार्यः, रा. सं. सं. क. जे. सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्, विद्याविहारः, मुम्बई-४०००७७.

2. ना. शा. ६. १०.

3. ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ॥ ना. शा.२८. २॥

4. रसा भावा ह्यभिनयाः धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिः स्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः॥ (ना. शा. ६. १०॥)

5. ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ॥ (ना. शा. २८.१॥ पृ. ४२९)

6. चतुर्विधं च विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।
ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्॥ (ना. शा. ६.२९॥ पृ. ९२)
लौकिकं नैतत् संगृहीतं बाध्यत्वादित्यर्थः। एतच्चान्ते वक्ष्यते। यदपि चतुर्विधं न सर्वमिदं लक्षणान्वितमिति। अन्यत्तु मल्लकपटफलकज्वालामुखपक्षवाद्यादि लौकिकं नैतत् संगृहीतं बाध्यत्वादित्यर्थः। एतच्चान्ते वक्ष्यते। यदपि चतुर्विधं न सर्वमिदं लक्षणान्वितमिति। अन्यत्तु मल्लकपटफलकज्वालामुखपक्षवाद्यादि बहुलचर्मकारादिवाद्यमपि च वक्ष्यमाणलक्षणान्वितम्। आतूत्यद्यतेऽभिहन्यते इत्यर्थः। पौष्करमिति। पुष्करशब्दश्रवणादागतं पुष्करावर्तकदैवताधिष्ठितं पद्मपत्राकारं चर्मपुटभाव चेति पौष्करम्। हन्यते कलासाम्यार्थमिति घनः। अत एव तालैकप्रमाणत्वात्स्वरवर्णसम्भवात्ताल इत्युक्तः कांस्यतालादिः। एवकारः काहलादिव्युदासाय॥३०॥ पुष्करो मेघविशेषः। मेघरूपो देवविशेषः। तदधिष्ठितं कमलपत्रसदृशं पौष्करं मृदङ्गतिमिलामर्दलादि चर्मपुटवाद्यम्। घनवाद्यानि कांस्यतालघण्टादीनि। करतालश्च सुषिरो वंश एवेति एवकारो निर्धारणपर इति काहलादिव्युदासाय। (ना. शा. ६. १०-अभिनवभारती पृ. २९)

7. पुष्करो मेघविशेषः। मेघरूपो देवविशेषः। तदधिष्ठितं कमलपत्रसदृशं पौष्करं मृदङ्गतिमिलामर्दलादि चर्मपुटवाद्यम्। (ना. शा. ६. १०-अभिनवभारती पृ. २९)

8. घनस्तु तालो विज्ञेयः सुषिरो वंश एव च।
प्रवेशाक्षेपनिष्क्रामप्रासादिकमथान्तरम्॥ (ना. शा. ६.३०॥ पृ. ९२)

9. भरतस्तत्र गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्॥ (रघुवंशः-१५-८८॥)

10. यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ (कुमारसम्भवम्-१.८ ॥)

11. संगीतरत्नाकरः-१. २४. पृ. १५.

12. संगीतरत्नाकरः- (कल्लीनाथकलानिधौ) पृ. १४)

13. ना. शा. ३४. १६९. (संगीतरत्नाकरः- (कल्लीनाथकलानिधौ) पृ. १५)

14. प्रयोगस्त्रिविधो ह्येषां विज्ञेयो नाटकाश्रयः।
ततं चैवावनद्धं च तथा नाट्यकृतोऽपरः ॥ (ना. शा. २८. ३॥)

15. ततः कुतपविन्यासो गायनः सपरिग्रहः।
वैपञ्चिको वैणिकश्च वंशवादस्तथैव च ॥ ना. शा.२८. ४॥
मार्दङ्गिकः पाणविकस्तथा दार्दुरिको बुधैः।
अवनद्धविधावेष कुतपः समुदाहृतः ॥ ना. शा.२८. ५ ॥
उत्तमाधममध्याभिस्तथा प्रकृतिभिर्युतः।
कुतपो नाट्ययोगे तु नानादेशसमाश्रयः ॥ ना. शा.२८. ६॥

16. ना. शा. ३४. १९७॥ पृ. ६४०

बीभत्सभयानकयोस् तथैव नित्यं हि गोमुक्ख्याम्।। ना.शा. ३४. ५८।।
रसभावसत्त्वयोगं दृष्ट्वाभिनयं गतिप्रचारं च।
वाद्यं नित्यं कार्यं तथा तथा मार्गसंयोगात्।। ना.शा. ३४. ५९।।

उक्तमभिनवभारत्यमभिनवगुप्तेन-

व्यभिचारादिविषये तु स्वयमूहः कर्तव्य इति दर्शयति। रसभावसत्वयोगमिति। रसेषु भावा व्यभिचारिणः सत्वमित्युत्तमादिः प्रकृतिः। साभिनयशब्दोऽत्र शाखाव्यापारः। तत्र गतो वाद्ययोगः। गतिप्रचारस्तु प्रवृत्ते नाट्ये परभावादित्यनाट्य एव। तदाह। यथायथमिति। वृत्तशब्देनात्र नाट्यमिति। (अ. भा. ३४. ५७-५९)

गानवाद्यनाट्ययोजना

एवं गानं च वाद्यं च नाट्यं च विविधाश्रयम्।
अलातचक्रप्रतिमं कर्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः ॥ ना. शा.२८. ७॥
यत्तु तन्त्रीकृतं प्रोक्तं नानातोद्यसमाश्रयम्।
गान्धर्वमिति तज्ज्ञेयं स्वरतालपदात्मकम् ॥ ना. शा.२८. ८॥
अत्यर्थमिष्टं देवानां तथा प्रीतिकरं पुनः।
गन्धर्वाणां च यस्माद्धि तस्माद्गन्धर्वमुच्यते ॥ ना. शा.२८. ९॥
अस्य योनिर्भवेद्गानं वीणा वंशस्तथैव च।
एतेषां चैव वक्ष्यामि विधिं स्वरसमुत्थितम् ॥ ना. शा.२८. १०॥
गान्धर्वं त्रिविधं विद्यात्स्वरतालपदात्मकम्।
त्रिविधस्यापि वक्ष्यामि लक्षणं कर्म चैव हि ॥ ना. शा.२८. ११॥
द्व्यधिष्ठानाः स्वरा वैणाः शारीराश्च प्रकीर्तिताः।
एतेषां सम्प्रवक्ष्यामि विधानं लक्षणान्वितम् ॥ ना. शा.२८. १२॥
स्वरा ग्रामौ मूर्च्छनाश्च तानाः स्थानानि वृत्तयः।
शुष्कं साधारणे वर्णा ह्यलङ्काराश्च धातवः ॥ ना. शा.२८. १३॥
श्रुतयो यतयश्चैव नित्यं स्वरगतात्मकाः।
दारव्यां समवायस्तु वीणायां समुदाहृतः ॥ ना. शा.२८. १४॥
स्वरा ग्रामावलङ्कारा वर्णाः स्थानानि जातयः।
साधारणे च शरीर्यां वीणायामेष सङ्ग्रहः ॥ ना. शा.२८. १५॥
व्यञ्जनानि स्वरा वर्णाः सन्धयोऽथ विभक्तयः।
नामाख्यातोपसर्गाश्च निपातास्तद्धिताः कृतः ॥ ना. शा.२८. १६॥
छन्दोविधिरलङ्कारा ज्ञेयः पदगतो विधिः।
निबद्धं चानिबद्धं च द्विविधं तत्पदं स्मृतम् ॥ ना. शा.२८. १७॥
ध्रुवस्त्वावापनिष्कामौ विक्षेपोऽथ प्रवेशनम्।
शम्या तालः सन्निपातः परिवर्तः सवस्तुकः ॥ ना. शा.२८. १८॥
मात्रा प्रकरणाङ्गानि विवारी यतयो लयाः।
गीतयोऽवयवा मार्गाः पादमार्गाः सपाणयः ॥ ना. शा.२८. १९॥
इत्येकविंशतिविधं ज्ञेयं तालगतं बुधैः।
गान्धर्वसङ्ग्रहो ह्येष विस्तरं तु निबोधत ॥ ना. शा.२८. २०॥

अथ प्रहतविधानम्

एवं प्रहतविधानं कार्यं मार्गाश्रितं बुधैः सम्यक्।
वक्ष्याम्यतश्च भूयो दर्दरपणवाश्रितं वाद्यम्।।ना.शा.३४. ६०।।

अतिवादितमनुवाद्यं समवादितमुच्यते पणववाद्यम्।
तत्रातिवादितं स्यान् मुरजानामग्रतो यत्तु।। ना.शा.३४. ६१ ॥
यत्त्वनुगतं मृदङ्गैरनुवादितमुच्यते तु तद्वाद्यम्।
समवादितं मृदङ्गैर्ज्ञेयं साम्येन यद्वाद्यम्।। ना.शा.३४. ६२।।

दशरूपविधौ पणवचतुष्टयविधिः।

चत्वारः पणवाः कार्याः दशरूपविधौ पुनः।।ना.शा.३४. २४८।।
आतोद्यान्यपि तान्येव नानावस्थासु वादयेत्।
नाटके सप्रकरणे भाणे प्रहसने तथा।।ना.शा.३४. २४९।।
मृदङ्गं पणवं चैव दर्दरं चैव वादयेत्।
एवमेतद् बुधैर्ज्ञेयं मृदङ्गानां तु लक्षणम् ॥ ना.शा.३४. २५०।।

उपसंहारः (फलिततत्त्वार्थकथनम्)

न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। ना.शा. ६. ३१.

मार्गसंयोगेन (अड्डितगोमुखवितस्तालिप्तादिना), अङ्गप्रत्यङ्गयोजनेन (तते-दारवीषु विपञ्ची, चित्रा चेत्यङ्गे भवतः, कच्छपी, घोषं च प्रत्यङ्गे भवतः। पणवेषु- अवनद्धमङ्गम्-मृदङ्गः, दर्दरश्च अङ्गे भवतः, झल्लरी, पटहश्च प्रत्यङ्गे भवतः। सुषिरेषु-वंशोऽङ्गम्। शङ्खो डक्किनी च प्रत्यङ्गे इति क्रमः।) वाद्यप्रभेदा डमरुमड्डुडिण्डिमझर्झराः। मर्दलः पणवोऽन्ये च नर्तकीलासिके समे॥ इत्यमरः।

दशरूपके अनायोज्यं किंचिन्नास्तीत्यपवादविधिः। पौष्करस्य कांस्यतालस्य च नाट्यातोद्यविधौ स्वीकारस्तूत्सर्गतया निर्दिष्टः।

एवं न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते इति न्यायेन रसभावाभिनयधर्मिवृत्तिप्रवृत्तिसिद्धि-स्वरातोद्यगानरङ्गानां परमार्थरूपरसाद्यनुणतया सङ्ग्रहान्यतमस्यातोद्यस्य रसाद्यनुगुणा परमार्थप्रदेत्यनुभवसाक्षिकत्वम्। यद्यपि सामान्यतया नाट्यसङ्ग्रहविषयानुगुणत्वे तर्ह्यपि स्वरानुगुणं गीतानुगुणं च प्रत्येकमातोद्यविधानस्य विशेषतया मार्गसंयोगेन, अङ्गप्रत्यङ्ग-योजनेन चातोद्यविधानं नाट्यस्य परमाङ्गत्वेन तद्विदां प्रतिभात्येवेति शम्।।

ग्रन्थसूची

1. Critical Study of Saṅgītamakaranda of Nārada By M. Vijay Lakshmi; foreword by G.H. Tarlekar ISBN 81-212-0526-3.
2. Chākyār, Māni Mādhava. Nātyakalpadrumam, Sangeet Natak Academi, New Delhi, 1975.
3. The 'Saṅgītasara' by Śrī Mādhava Vidyāraṇya (1336 to 1386 A.D.)
4. An Analytical Study of Saṅgītasamayasāra of Śrī Pārśvadeva, Pārśvadeva, Active in the 13th century.
5. Śrī Govinda Dikṣita's Saṅgītasudhā, Abhinavabharatasārasaṅgraha by Mummaḍi Cikka Bhupāla (early 17th century AD) and Saṅgītanārāyaṇa by Puruṣottamamiśra (first half of 17th century AD) have been mentioned as possible sources for the Saṅgītasāra.
6. The Saṅgītaratnākara of Śārṅgadeva (1210–1247): Chapter 6: Vạdya-adhyaya: In the sixth chapter come the four classes of musical instruments..
7. नाट्यशास्त्रम्–आचार्यभरतमुनिविरचितम्, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रितं संस्करणम् – 2002.
8. नाट्यशास्त्रम्–आचार्यभरतमुनिविरचितम्, परिमलपब्लिकेशनस्, दिल्ली, प्रथमसंस्करणम् – 1998.
9. नाट्यशास्त्रम्–आचार्यभरतमुनिविरचितम्, अभिनवभारतीसहितम्, गङ्गानाथझाग्रन्थमाला-14, सम्पूर्णानन्दविश्वविद्यालयः, वाराणसी, ISBN : 81-7270-040-7 (Set). प्रथमो भागः-1992, द्वितीयो भागः 1996, तृतीयो भागः 2002, ISBN : 81-7270-039-3, चतुर्थो भागः 2004. ISBN : 81-7270-142-X.

****

त्रिभाषासूत्रस्वरूपम्

गुलाम दस्तगीर विराजदार

या देवी सर्वभूतेषु भाषारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

अत्रैतस्मिन् विद्यापीठे दिनद्वयव्यापिनी "साहित्यराष्ट्रियसङ्गोष्ठी" सम्पन्ना जाता। अद्य तस्याः गोष्ठ्याः समापनं संगोष्ठीरूपेणैव भवति। एतदर्थं मुख्यातिथिरूपेणान्नायं गुलामः निमन्त्रितो जातः। तथाहं समुपस्थितोऽस्मि। निमन्त्रणेन उपकृतोऽनुगृहीतश्च जातोऽस्मि। एतदर्थं निमन्त्रकेभ्यः अर्थात् प्राचार्य चन्द्रशेखरमहोदयेभ्योऽक्षशो धन्यवादान् ददामि।

साहित्यमिति शब्दाः। साहित्यशब्द विषये वा शि आपटे इत्यस्य संस्कृत-हिन्दीशब्दकोशे साहचर्यम्, सहयोगिता इत्यादयः अर्थाः प्रतिपादिताः।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः इत्यपि भर्तृहरेर्वचनं सुल्लिखितं वर्तते। तथा च कस्यापि वस्तुनः उत्पादनार्थम् अथवा सम्पन्नतार्थं सामग्रीसंग्रहः इति संदिग्धार्थोऽपि दत्तोऽस्ति। वामन शिवराम आपटे- 'संस्कृत-हिन्दी शब्दकोशः' (छात्र संस्करण), नाग प्रकाशन, पूना- १५/२/१८९०, पृष्ठ- ११०४।

'हरिप्रभा' इति मासिकी संस्कृतपत्रिका वर्तते। एषा पत्रिका हरियाणा राज्य शासनस्य संस्कृत मुख पत्रिकैव विद्यते। एतस्यां पत्रिकायां क जे सोमैया संस्कृतविद्यापीठस्य शिक्षाविभागस्य सहायकाचार्यः डा देवदत्त सरोंदे महोदयानां पाणिनीयव्याकरणशास्त्रविषये लेखानां प्रकाशनाम्भो जातो विद्यते। अत्र समीचीनं परिशीलनं चवतीति दृश्यते। एतस्मिन् मासिके अगस्त-सितम्बर (२०१५) मासयोः अंके "साहित्यविद्याया वेदमूलकत्वं साहित्यशास्त्रस्य वेदोपजीवकत्वञ्च" इति प्रथमो लेखः प्रारम्भेन प्रकाशितो जातो विद्यते। अयमपि शोधलेख एवास्ति। तथा च पुराण-मनुस्मृति-रामायण-भास-कालिदासादीनां शोधलेखा हरिप्रभायां विलसन्ति। सर्वलेखेषु तेषां तेषां साहित्यस्य स्तुतिगानमेव गीतं वर्तते। एतत्सर्वं यथायोग्यमेवास्ति। महाराष्ट्रराज्ये बहवः संस्कृतसाहित्यकारा विद्यन्ते। स्व गो के भट महोदयेन साहित्यशास्त्रानुसारं कविकुलकालिदासस्यापि साहित्यकृतिषु दोषा निर्दिष्टास्सन्ति। भासविषये 'भासो हासः' इत्युक्तिः प्रचलति। परन्तु 'भासो अहासः' इत्यपि कथनं चलति इत्यपि श्रुतिपथमायाति।

वेद-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-वेदान्तमिति वैदिकसंस्कृतसाहित्यं कथयितुं शक्यते। एतत्साहित्यं प्रचीनानि प्राचीनं वर्तते। एतत् सर्वप्रथमं साहित्यमित्यपि कथनं चलति। ततश्च पुराणोपपुराणं, रामायणम्, महाभारतम् समाश्रित्यैव प्रायः काव्यशास्त्रकारैर्महाकाव्यस्य व्याख्या कृताऽस्तीति प्रतिपादनं प्रचलति। ऋषिमुनिभिर्विरचितं आर्षमहाकाव्यम्, अन्यर्विरचितं विदग्धमहाकाव्यं चेति के ना वाटवे महोदयैः संस्कृतकाव्यस्य (चे) पञ्च प्राणा इति मराठीभाषिकपुस्तके चतुर्थपृष्ठेलिखित वर्तते। अनेन प्रकरेण कालोदासितःपण्डितजगन्नाथपर्यन्तं विदग्ध महाकाव्यमिति कथयितुं शक्यते। अनेनाधारेणैव पण्डितजगन्नाथान्तं संस्कृतमित्युक्तिरपि प्रचलिता जाता स्यादिति कथयितुं शक्यते। तथाप्यर्वाचीनमाधुनिकमत्याधुनिकं चेति संस्कृतसाहित्यमिति ततश्चाद्यतनीयं संस्कृतसाहित्यमित्यखण्डतया प्रचलितं प्रचालितं च जातमस्तीति केनापि संस्कृतसाहित्यक्षेत्रीयेण कथयितुं शक्यते।

संस्कृतभाषा देववाणी, गीर्वाणवाणी इत्यपि कथ्यते। देवा मृता न भवन्तीति सर्वश्रुतिः सुप्रसिद्धा अस्ति। तदा तेषां भाषा मृता कथम्? अत एवैषा अमृता भाषा अस्ति।

नवीनशैक्षणिकाधारेण संस्कृतभाषेति अमृतभाषायाः स्थानम्। पण्डितजगन्नाथान्तं संस्कृतमिति उक्तिः प्रचलिता भूत्वाऽपि एतस्याः संस्कृत भाषाया अन्तो नैव जातोऽस्तीति। केनापि कथयितुं शक्यते। तथापि भारतराष्ट्रस्यस्थ नवीनशैक्षणिकधोरणे संस्कृतभाषायाः कृते स्थानलाभार्थं महदान्दोलनं प्रचालनीयमभवत् इति महद्दुःखदायकमेव।

सप्तचतुर्नवैकमितेः ख्रिस्ताब्दे अगस्तमासस्य पञ्चदशदिनांके भारतदेशः स्वतन्त्रो अभवत्। ततश्चशून्यपञ्चनवैकमिते ख्रिस्ताब्दे जनवरीमासस्य षड्विंशतितम दिनांके प्रजासत्तात्मको भारतदेशोऽभवत्। अष्टषट्नवैकमिते ख्रिस्ताब्दे राष्ट्रीयं शैक्षणिकाधारणं प्रचालितमभवत्। एतस्मिन् शैक्षणिकधोरणे भाषा इति एकोविषयः। भाषाविषयेणात्र सर्वप्रथमस्थानमधिगतम्। भाषां विना कोऽपि विषयो नैव चलति। भाषां विना कोऽपि व्यवहारः साध्यो न भवति। महत्त्वपूर्णो गणितविषयोऽपि अधिगन्तुं न शक्नोति कोऽपि भाषाविज्ञः। सएवेऽपि विषया भाषाधीना भूत्वा जीवन्ति चलन्त्यपि च। अतो भाषाविषयस्य प्राथम्येन प्रमुखस्थानं यथायोग्यमेवास्ति।

त्रिभाषासूत्रम्

कामपि एकां भाषां समाश्रित्य शिक्षणदानं शिक्षणा दानं च प्रचलतीति जगतो रीतिः। त्रिभाषासूत्रं समाश्रित्याऽपि कस्याऽपि एकस्या भाषामाध्यमेन अद्यापि शिक्षणदानादि प्रचलति। तथापि त्रिभाषासूत्रं कथं किमर्थं चेति प्रश्नः।

अस्माकं भारतराष्ट्रं बहुविधभाषिकमस्ति। भाषिकाणां बाहुल्यं समाश्रित्य भाषानुसारं प्रदेशरचना जाता। तमिलभाषिकानां बाहुल्यं समाश्रित्य तमिलनाडु, कन्नडभाषिकाणां बाहुल्यं समाश्रित्य कर्णाटकराज्यं, एवमेव च महाराष्ट्र-गुजरात-केरल-ओडिसादीनि राज्यानि रचितानि जातानि। प्रत्येक भाशिकेण स्व-स्वभाषाविषयेऽभिमानो धारणीय एव, स्व-स्वभाषाविषये गौरवपूर्णतया गर्वेण कथनीयमपि चेति गौरवास्पदमेव न चात्र किमपि शंका-कुशंकास्पदम्। परन्तु अस्माकमेव भाषा भवतु चालनीया चापि भवतु तत्रापि ममैव भाषा प्रचालिता भवतु, अन्यभाशीकः कोऽपि अस्माकं राज्ये नागच्छतु नैव चात्र तिष्ठतु इति कथनं तथा समाचरणं च एकसन्धराष्ट्रस्य कृते घातकं महद्घातकं चापि।

तमिलभाषिकक्षेत्रे तामिलनाडुप्रदेश स्वतन्त्रदेशः इति महदान्दोलनं समारब्धं, ततश्चैतद् तीव्रतमप्यभवत्। परन्तु तत्काले डा सर्वपल्लीराधाकृष्णन्, मा गोपालाचारी, मा कामरजादयः तमिलभाषिकविद्वद्द्वराः सुप्रतिष्ठिताः, जन-गणमान्यवरा नेतारः आसन्। एते अग्रे जाताः। तमिलनाडु-द्रविडः इति स्वतन्त्रराष्ट्रार्थं निर्मितान्दोलनं एतैः निष्क्रियं कृतम्। ततश्चैतदेवान्दोलनं लंकाराज्ये प्रविष्टम्। अत्र सूत्रं कारणं भाषैव।

त्रिभाषासूत्रस्य स्वरूपम्

- प्रत्येकभाषिकराज्यं मन्दं मन्दं बहुभाषिकमर्थात् बहुविधभाषिकं करणीयमिति मुख्यं धोरणम्। एरद् धोरणं विद्यालयतः एव प्रारम्भणीयं भवतु इत्यपि कार्यनिर्वहणस्य रीतिः स्वीकृता जाता। विद्यालयस्य प्रत्येकवर्गः बहुविधभाषिकः कर्तव्य इत्यपि कार्यनिर्वहणपद्धतिरपि। त्रिभाषासूत्रे समाविष्टाः भाषाः- (१)- मातृभाषा/प्रदेशभाषा/माध्यमभाषा चैतासु काऽप्येका भाषा।
(२) हिन्दीभाषा/अल्पाधिकप्रमाणेन सम्पूर्णे भारतदेशे राज्ये राज्ये हिन्दीभाषा प्रचलति। (३)आंग्लभाषा, विदेशेषु विदेशैः सह व्यवहार-व्यापार संसाधनार्थमत्यावश्यकी। हिन्दीभाषिकक्षेत्रीयैः काऽप्यन्या भारतीयभाषा स्वीकरणीयैव। विद्यालये तिस्रो भाषाः अनिवार्या एव। मूल्याङ्कनदृष्ट्या त्रिभाषासूत्रस्थ-प्रत्येकभाषाविषये शतमितगुणाङ्काः।
- संस्कृतभाषायाः स्थानप्राप्तिविषये सफलः प्रयत्नः।

बहुभिः सार्वजनिकपञ्जीकृतसंस्थाभिः सम्बन्धित-अधिकारिजनान् प्रति संस्कृतमावश्यकमनिवार्यं च शिक्षणस्य प्रमुखप्रवाहे भवतु इत्याशयेन प्रार्थना पत्राणि प्रेषितानि। जना जागरिताः सन्तीति प्रदर्शनभावेन संस्कृतशिक्षणपरिषदः आकारिता जाताः एवमेव च संस्कृतसभा-सम्मेलनादीति सर्वत्र सम्पन्नतानि अंभवन्। संस्कृतपक्षे तत्र-तत्र प्रस्तावादीनां पारणमपि जातम्। कैश्चिदुपोषणमार्गोऽप्यवलम्बितः। अनेन प्रथमं सफलता प्राप्ता हिन्दीभाषाक्षेत्रे। हिन्दीभाषिकैः द्वितीयाभाषा स्थाने अर्थात् त्रिभाषासूत्रस्य द्वितीयाभाषास्थाने संस्कृतभाषा स्वीकृता। परन्तु हिन्दीभाषिकेतरक्षेत्रे हिन्दी+संस्कृतभाषा अथवा सम्पूर्णं संस्कृतं अथवा सम्पूर्णा हिन्दी इति · पर्यायिव्यवस्थामनुसृत्य संस्कृतभाषायाः समावेशः त्रिभाषासूत्रे अभवत्। परन्तु अनेन हिन्दीभाषायाः सार्वभिकीकरणं खण्डितमभवत्।

अधुनाऽत्यावश्यकं चतुर्भाषासूत्रम्

भारतराष्ट्रं बहुविधभाषिकं भवतु इति राष्ट्रियभाषा प्रभूणां मूलोद्देशः। अत एव प्रारम्भत्रिभाषासूत्रेण जातोऽस्ति। अनेन अल्पाधिकप्रमाणेन काश्चित् सफलता अपि प्राप्ता। काप्यैका भाषा सम्पर्कभाषा भवतु इत्यपि ध्येयं भारतीयभाषाप्रभूणाम्। तदर्थं प्रदेशे प्रदेशे भाषा भाषिकाणां गणना जाता वर्तते। हिन्दीभाषिकक्षेत्रे हिन्दीभाषिकाणां बाहुल्यं सर्वसिद्धं जातमस्ति। हिन्दीभाषेतर क्षेत्रेऽपि अल्प-अधिकप्रमाणेन हिन्दीभाषिकाः सन्ति। केवलं तमिलनाडु, केरलप्रदेशयोर्हिन्दीभाषिका अत्यल्पाः सन्तीतिय सिद्धं जातमस्ति। प्रायः अंगुविमेया एव सन्ति। अनेन प्रकरेण हिन्दीभाषिक अल्पाधिकप्रमाणेन सर्वत्र सन्ति। तथा हिन्दीभाषिकेतर भाषिकाणां स्थितिर्मतिश्च नास्ति। अत एव हिन्दीभाषैव भारतस्य सम्पर्कभाषा भवितुमर्हति। एतदर्थमेव त्रिभाषासूत्रे द्वितीयं स्थानं प्राप्तवती वर्तते।

परन्तु महाराष्ट्र-गुजरातादिराज्यानां दक्षिणभारतीयैः संस्कृतभाषापक्षे तीव्रमान्दोलनं प्रचालितं कृतम्। सर्वोच्चन्यायालयपर्यन्तं न्यायालयीन मार्गोऽप्यवलम्बितस्तैः अन्ते तैर्हिन्दीभाषा पर्यायिस्थाने समानीता। तत्पर्यायिस्थानं समाश्रित्य तत्स्थाने संस्कृतभाषा समानीता। अनेन हिन्दीभाषां भारतस्य सम्पर्कभाषास्थाने समानेतुमिच्छन्तः सर्वे सुज्ञजनाः चिन्ताग्रस्ता भूत्वा चिन्तनमग्ना जाताः सन्ति, अधुना क उपायः? इति।

एतदर्थमत्रास्ति 'चतुर्भाषासूत्र'मित्यनन्यतम उपायः। तद्यथा- चतुर्भाषासूत्रे- (१)मातृभाषा/प्रदेशभाषा/माध्यमभाषा/एतासु तिसृषु भाषासु काऽप्येकाभाषा। (२)हिन्दीभाषा (३)आङ्ग्लभाषा, (४)अभिजात भाषासु काऽप्येका भाषा। अभिजातभाषायाः शब्दस्थाने संस्कृतभाषाशब्दः यथायोग्योऽपि तथा सा भवतु। संस्कृतशब्द प्रयोगेण सपद्येव वोद्वेषिजनानां दृष्टेर्पथमायान्ति ब्राह्मणाः। अभिजातभाषाशब्दप्रयोगेण पालि-अर्धमागधी-अरबी-फारसी-तामिल-कन्नडादि अभिजातभाषायां भवन्ति। शिक्षणक्रमे चतुर्भाषासूत्रं प्रचालितं भवतु, इति राष्ट्रपति-आदेशः प्रसारणीया शीघ्रातिशीघ्रतया। ततश्च कालान्तरेण संसदि पारितो भवतु॥

****

संस्कृतरूपकेषु आस्वादोपयोगितया वाचिकाभिनयस्य निर्वाहः

डा. राघवेन्द्रभट्टः
सहायकाचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
राजीवगान्धीपरिसरः
शृङ्गेरी

काव्येषु नाटकं रम्यमिति काव्यतत्त्ववेत्तृभिराघुष्यते। तस्य नाटकस्य रम्यता कविनिर्माणसापेक्षा सामाजिकस्य आस्वाद्यत्वे निदानं भवति। तत्र दृश्यत्वं प्रधानं तत्त्वं भवति। श्रव्यकाव्यस्य श्रव्यत्वमपि सचेतसामन्तरङ्गे दृश्यत्वेन पर्यवस्यतीति सदभिप्रायो वर्तते। तद् दृश्यत्वं काव्यस्य वैशिष्ट्यापादकं भवति। दृश्यत्वं दृश्यधर्मः । दृश्यम् अभिनेयम् । अभिनेतुं योग्यमित्यर्थः । 'दृश्यं तत्राभिनेयम्' इति तल्लक्षणात् । अभिनेतव्ये अपेक्ष्यते अर्थविशेषः । स च रामसीतादुष्यन्तादिः यश्च अनुकार्य इत्युच्यते । तर्हि रामः अभिनेयः इत्यर्थ आयाति । रामस्याभिनेयत्वं तदवस्थायाः अभिनेयत्वार्थकम् । एवञ्च रामस्य अवस्थाया अभिनयः इति सिध्यति । सावस्था केनाभिनेया? नटेन अतः स अभिनेता इत्युच्यते । अभिनेत्रा रामावस्था वास्तविकतया रामगता अभिनीयते । अभिनीयमाना सा न वास्तविकी । अतः अवस्थानुकारः अभिनयः इत्युक्तम् । प्रापणार्थकणीञ् धातुना निष्पन्नस्य अभिनयस्य विशिष्टोऽर्थः वर्तते। रामस्य अवस्थायाः सर्वात्मना अनुकरणद्वारा सामाजिकपर्यन्तप्रापणम् अभिनयो भवति । एवञ्च रामावस्था<>अभिनयः<>सामाजिकः त्रिकोणात्मिकायामस्यां प्रक्रियायाम् अभिनयः रामावस्थासामाजिकस्वादयोः सेतुर्भवति । सामाजिकस्य आस्वादोपयोगित्वे एव अभिनयः अभिनयो भवति । अभि इत्युपसर्गस्य अवस्थायाः सर्वात्मना प्रकटनमभिप्रेतम् । तस्मात् आङ्गिकवाचिकाहार्यसात्त्विकाभिधानेन चतुर्धा भिन्नः सः चातुर्विध्येन तेन पूर्णो भवति ।

तत्र वाचिकाभिनयः

वाचिकाभिनयः अभिनयस्य प्रथमो विधिः यस्य निर्वाहेण विना इतरः अभिनयः रामाद्यवस्थायाः सामाजिकपर्यन्तनयने विकलो भवति । ततः आङ्गिकः । तद्द्वारीकृत्य वाचिकस्य दृश्यत्वं सम्पाद्यते अभिनेत्रा । तृतीय आहार्याभिनयः प्रदर्शननियतापादकः बाह्य इत्युच्यते । गुणापादकः सूक्ष्मो मुख्यः सात्त्विकाभिनयश्चतुर्थः । अस्य बीजं वाचिकम् । एवं चतुर्विधस्य अभिनयस्य अर्थपरिशीलनेन वाचिकस्य वैशिष्ट्यमवगम्यते ।

नाट्याचार्यः ब्रवीति –

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता ।
अङ्गनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि ॥इति। (ना. शा. १४.२)

नाट्यस्य शरीरं भवति वाक् । अतः वाचि यत्नः कर्तव्यः । अत्र वाक् एव अभिनयः वाचिकाभिनयः इति कर्मधारयाश्रयेण अर्थगाम्भीर्यं स्फुटतयावगम्यते । अभिनयरूपा वाग् इति तदर्थः सिध्यति । वाचः अभिनयः इति तत्पुरुषाश्रयेण तु न तथा। अभिनवभारत्यत्यामाचार्यः अभिनवगुप्त आह – वागेवाभिनयः वाचिकाभिनयः इति । तस्मिन् वागभिनये प्रयत्नो विधेयः । केन? इति चेत् रूपककर्त्रा कविना तद्रचनावसरे, अभिनेत्रा अभिनयावसरे च । 'वाचि यत्नस्तु कर्तव्य इति कविना निर्माणकाले नटेन प्रयोगकाले' इति स आह । इयं वाग् नाट्यस्य सकलप्रयोगभित्तिभूतत्वेन आतोद्यगीताभिनयानुग्राहकत्वात् स्वयमभिनीयरूपत्वाच्च इति वदता तेन अभिनवगुप्तपादेन अभिनयस्यास्य वैशिष्ट्यं निरूपितम् ।

सर्वोऽपि लोकव्यवहारः वाङ्मूलकतयैव प्रवर्तते । यथा

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते ।
इदमन्धतमःकृत्स्नं जायते भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं दीप्यते ॥

इति आचार्यस्य दण्डिनो वचनं लोकव्यवहारस्य प्रवृत्त्युपस्कारकतया वाचां महत्त्वं ख्यापयति। शब्दाभावे भुवनं कृत्स्नमन्धतमसाविष्टं स्यादिति । वाग् ज्योतीरूपा अर्थं दर्शयति। तस्मादभिनयप्रपञ्चेऽपि रामाद्यवस्थां प्रकटयन्तीयं सामाजिकेषु रसं दर्शयति ।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥
सा सर्वविद्या शिल्पानां कलानां चोपबन्धिनी।
तद्वशादभिनिष्पन्नं सर्वं वस्तु विभज्यते ॥

इति भगवान् भर्तृहरिराह। लोकसीमातिक्रान्तदर्शिनः कवयो वीरचरितानि काव्यानि शब्दैरेव निबबन्धुः। रामाद्यवस्थायाः सहृदयान्तःप्रापणे शाब्दं साधनं स्वीचक्रुः। मुनिभिः शब्दद्वारैव प्रपञ्चितः शास्त्रप्रपञ्चः। स शब्दः स्खलद्गतिश्चेत् वक्त्रभिप्रेतार्थो नैव प्रकाशते श्रोता च शब्दस्यार्थमगृहीत्वा अनर्थं वा गृहीत्वा प्रवर्तते चेन्महाननर्थ एव स्यात्।

नाट्याचार्यः मुनिः –

वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च ।
तस्माद्वाचः परं नास्ति वाग् हि सर्वस्य कारणम् ॥ (ना शा. १४.३)

इत्याह ।तत्र अभिनवभारतीकारः 'वागेवावभासिका' इत्यभिप्रैति। इत्थं सर्वविधो लोकः वाङ्मुखतया प्रवर्तते। एवं लोकवृत्तानुकीर्तने नाट्ये वाचोऽस्ति अभिनयकलासौन्दर्यवर्धनपरता। संस्कृतरूपकाणां सामाजिकेषु रसाभिव्यञ्जनस्य तात्पर्यात् विभावादीनां सुष्ठु अभिनयः कर्तव्यः । विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः खलु ।

वाचिकाभिनये अवधेया विषयाः

वाचिकाभिनयस्य ६३ लक्षणानि मुनिना भरतेन उक्तानि । तत्र

आगमनामाख्यातनिपातोपसर्गसमासतद्धितैर्युक्तः ।
सन्धिवचनविभक्त्युपग्रहनियुक्तो वाचिकाभिनयः ॥ (ना. शा. १४.४)

अत्र मुनिना सूत्ररूपेण कृतं चिन्तनम् आचार्येणाभिनवगुप्तपादेन सुव्यक्तं कृतम्। तत्र नाम यथा 'मदनरिपुः' इति। इदं भगवतः पर्यायत्वेन तदीयशृङ्गारवर्णनप्रसङ्गे न प्रयोज्यम्। एवमाख्यातादिनिरूपणं वाचिकस्य दार्ढ्यसम्पादनाय प्रामुख्यमावहति। एनमंशमादाय 'सुप्तिङ्विभक्तिसम्बन्धैस्तथा कारकशक्तिभिः। कृत्तद्धितसमासैश्च द्योत्योऽलक्ष्यक्रमः क्वचित्'॥(ध्वन्या३.१६) इत्यानन्दवर्धनो ध्वन्यालोके व्यञ्जकमुखेन ध्वनिभेदनिरूपणावसरे ब्रवीति। अभिप्रेतस्य भावस्य सुप्रकाशने अस्त्येतेषां सुचिन्तनप्रयोगस्यावश्यकता। वर्णाः, स्थानप्रयत्नविचारा नाट्यशास्त्रे वाचिकाभिनयप्रस्तावे उक्ताः। यद्यपि काव्यकर्तुरेतेषां विषयाणां ज्ञानमपेक्ष्यते अथापि प्रयोगतत्पराणां कुशीलवानामपि तद्भवति चेन्नाट्यप्रस्तुतौ उच्चारणे स्फुटतासम्पादनाय सारल्यं भवति। गानानुकूलतया स्वराघातानुकूलतया च च्छन्दसां ज्ञानं प्राप्नुयादभिनेता। तदत्र प्रसङ्गे मुनिवचनं यथा

व्यञ्जनानि स्वराश्चैव सन्धयोऽथ विभक्तयः ।
नामाख्यातोपसर्गाश्च निपातास्तद्धितास्तथा ॥
एतैरङ्गैः समासैश्च नाना धातुसमाश्रयम् ।
विज्ञेयं संस्कृतं पाठ्यं प्रयोगञ्च निबोधत ॥ (ना. शा. १४.६-७)
छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम्।
तस्मात्तूभयसंयोगो नाट्यस्योद्योतकः स्मृतः॥ (ना.शा.१४.४७)

प्रयोगदृष्ट्या रसाभिव्यञ्जने नामाख्यातादीनां पृथक् व्यञ्जकत्वमस्ति । अतः तेषां परिज्ञानमुक्तम् । छन्दसां प्रयोगः, अलङ्कारयोजना, काकुस्वरविधिश्च वाचिकाभिनयस्य सौष्ठवसम्पादनाय अभिनेत्रा ज्ञातव्यः । किञ्च भारतीवृत्तिवाचिकाभिनययोः सम्बन्धः वर्तते । भारती, कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी चेति चतस्रो नाट्यवृत्तयः । रसविशेषस्याभिव्यञ्जने एताः निर्देष्टव्याः । तत्र 'वृत्तिः सर्वत्र भारती' इति भारतीवृत्तिः सर्वरसाभिव्यञ्जने उपादीयते । भारतीवृत्तिर्हि 'भारतीसंस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः' इति लक्षिता । नाट्ये अभिनेतृभिः परस्परं क्रियमाणः संस्कृतवाग्व्यवहारः सा। अतः वाचिकाभिनयः संस्कृतरूपकेषु रसाभिव्यञ्जनविषये भारतीवृत्त्या सम्बध्नाति ।

स्वराघातपुरःसरं वाचः आरोहावरोहक्रमः वाचिके नैपुणीमाददाति । तेन नेपथ्यवचनम् आङ्गिकाद्यभिनयं विना श्रूयमाणं सहृदये भावमभिव्यञ्जयितुं क्षमं भवति । पात्रस्य (भूमिकायाः) मुखमुद्रा, भावः, आकाङ्क्षा च श्रूयमाणेनैव वाचिकेन ज्ञायते । यथा लङ्कामागते शत्रुसैन्ये रावणः नेपथ्ये –

धिग् धिङ्मानुषमार्गमार्गणगणान् धिग्वानरान् तान् गणान्
सेनां कः कुरुतेऽद्य विशिथिलां लङ्केश्वरे जीवति।
रे रे तापस तिष्ठ बाणधनुषी मास्म ग्रहीर्मे पुरः
विंशत्या बलिभिर्भुजैस्तृणसमानुत्पाटयिष्यामहम् ॥

अत्र रावणस्य भूमिकामभिनेतुः वचनमात्रं शृण्वन्तः सामाजिका आत्मनि सुव्यक्तोत्साहाः रसं स्वदन्ते।

प्रयोगविषये अन्यथाज्ञानम्

संस्कृतरूपकाणां प्रयोगविषये साम्प्रतं काश्चन विप्रतिपत्तयः सन्ति। ताः इमाः। संस्कृतरूपकाणि प्रयोज्यमानान्यपि तद्दर्शनोन्मुखा जना न सन्ति। संस्कृतभाषया तानि प्रस्तूयमानानि तद्भाषानभिज्ञैर्नावगम्यन्ते। नाटकानि केवलं रसाभिव्यञ्जकतया मनोरञ्जकानि भवन्ति चेत् समाजे तेन प्रयोजनं न सिध्यति। प्रायेण संस्कृतरूपकाणां लघुभागः कुत्रचिदेव शालासु पाठ्यक्रमे पठनार्थं वर्तते न तु प्रयोगार्थम्। कुत्रचित् प्रवर्तमानाः प्रयोगा अपि नाट्यशास्त्रीयनियमानुरोधेन न प्रवर्तन्ते इत्याद्याः।

एतासां विप्रतिपत्तीनां विषये समाधानमुच्यते।साम्प्रतं भारतस्य केरलकर्णाटकतमिलुनाडु-महाराष्ट्रमध्यप्रदेशोत्तरप्रदेशपश्चिमबङ्गालादिशु राज्येषु संस्कृतरूपकाणां प्रयोगपराणि नाट्यदलानि वर्तन्ते। तानि काले काले विशिष्टान् प्रयोगान् कुर्वन्ति। नानाराज्येषु संस्कृतरूपकाणां प्रयोगप्रतियोगिताः भवन्ति। विद्यालयेषु महाविद्यालयेषु विश्वविद्यालयेषु च वार्षिकोत्सवादौ एतेषां प्रयोगाः भवन्ति। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानद्वारा प्रतिवर्षं कौमुदीमहोत्सवः आयोज्यते यत्र विशिष्टाः प्रस्तुतयः मञ्चे प्रदर्श्यन्ते। सहृदयाः सभ्याः अमितसङ्ख्याकाः कुत्रचित् अल्पसङ्ख्याका अपि दृश्यन्ते। तत्र संस्कृतज्ञा इव संस्कृतानभिज्ञा अपि बहवः रूपकाणि पश्यन्ति। 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' इति कालिदासोक्तिरत्र स्मर्तव्या। संस्कृतरूपकाणि रसप्रधानतया

रचितानि। लोकवृत्तानुकीर्तनानि तानि समाजमपि चित्रयन्ति। पुनः विद्यालयादिषु अध्ययनार्थं वर्तन्ते इति विचारः अस्ति। सत्यम्। किन्तु यत्र प्रयोगस्य अवसरो न्यूनः तत्र तेषां रूपकाणामध्ययनं वा भवति। आदौ पठित्वा ततः प्रयोगेऽपि कुशीलवाः प्रवर्तेरन्। साम्प्रतं नाट्यशास्त्रीयनियमानुरोधेन प्रयोगा न भवन्ति इत्यत्र नाट्यविद्भिः संस्कृतजीविभिश्चिन्तनीयम्। संस्कृतरूपकाणां प्रयोगपरम्परा ह्रासतां गता वर्तते। अतः नाट्यनियमानुशीलनपूर्वकं प्रयोगः पौनःपुन्येन भवेत्। क्रमशः एतत्परम्परावृद्धिः कर्तव्या स्यात्। एतावता पूर्वमुक्तानां विप्रतिपत्तीनां समाधानम् उक्तम् ।

प्रयोगानुकूलो मार्गः

- अभिनेता रूपकाणि दशकृत्वः पठेत्। स भूमिकायाः भावमवगच्छेत्। स्फुटभावाभिव्यक्त्यनुकूलम् आरोहावरोहक्रमपूर्वकं वाचिकस्याभिये यत्नवांश्च भवेत्।
- वाचिकाभिनये अभिनेतुः भाषा स्फुटा स्यात्। भाषासौष्ठवप्राप्तये अभिनेता उच्चारणनियमान् जानीयात्। मुखमुद्घाट्य मन्द्रमध्यमतारकस्तरे क्रमेण वाचिकाभ्यासं कुर्यात्। यथा श्रोता अभिनेतुर्वाचिकम् शृण्वन् रसास्वादं कर्तुं शक्नुयात्। यथा रेडियो नाटकानि वाचिकमात्राभिनेयानि भावाभिव्यञ्जनसमर्थकानि भवन्ति ।
- प्रादेशिकभाषाणां मातृभाषाणामभिनेयकलाः सूक्ष्मेक्षिकया अवलोकनीयाः । संस्कृतरूपकाणां प्रयोगार्थमपेक्षितवाचिकादिनैपुणी सम्पादनीया चेत् अन्यभाषासु प्रवर्त्यमानाः प्रयोगा देशीयकलाः (कूडियाट्टम्,यक्षगानम्, ओडिस्सी, कथक्, रामलीला,नौटङ्की,भाँड, स्वांग इत्याद्याः) समवलोकनीयाः।
- संस्कृतरूपकाणां संवीक्षणम् – भारते संस्कृतनाटकानि विरलतया अभिनीयन्ते । अथापि नाट्यदलानि वृत्तिपराणि दशाधिकानि सन्ति । तानि संस्कृतरूपकाणां मूलभाषायामेव साधुप्रयोगान् कुर्वन्ति । राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानद्वारा प्रतिवर्षं प्रचाल्यमाने नाट्योत्सवे छात्रकुशीलवैः प्रवृत्तितया दशाधिकप्रस्तुतयो विधीयन्ते । एतेषां साक्षात् सान्द्रमुद्रिकाद्वारा वा वीक्षणं विधेयम् ।
- आतोद्यादीनामुपकरणानां वाचिकस्यानुकूलतया योजनम् । वाद्यस्य गीतस्य वा ध्वनिः वाचिकाभिनयस्य अवरोधं न कुर्यात्।
- रसानुकूलतया वाक् । मन्द्रमध्यमतारकादिस्वरनिर्वाहः अभिव्यञ्जनीयं रसं भावं वा मनसि निधाय अभिनेत्रा कर्तव्यः।
- मातृभाषायां प्रकृतपाठ्यांशस्यानुसन्धानम् ।
- विद्यालयेषु संस्कृतरूपकाणां पाठनावसरे अध्यापकः वाचिकाभिनयं कुर्यात् येन च्छात्रः रूपकेषु रुचिमान् भवेत्।

एवञ्च संस्कृतरूपकाणां प्रयोगपरता मुख्या भवति। रसदृष्टिश्च प्रधाना भवति। कवेराशयः तदाश्रितभाषाद्वारा प्रकाशनीयः। अतः नाट्यप्रयोगे यत्नशीलैर्जनैः पूर्वोक्ता विचारा आकलनीयाः भवन्ति।

सहायकग्रन्थाः

१. रङ्गमञ्च का सौन्दर्यशास्त्र – देवेन्द्रराज अङ्कुर्
२. दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज - देवेन्द्रराज अङ्कुर्
३. काव्यप्रकाश आफ् मम्मटाचार्य ज्योतिष्मती टीका – रामस्वामी
४. रङ्गप्रक्रिया के विविध आयाम – प्रेमसिंह / सुषमा आर्या
५. भारतीय एवं काव्यशास्त्र की रूपरेखा – रामचन्द्रतिवारी
६. नाट्यशास्त्रम्-भरतमुनिः
७. अभिनवदर्पणः – नन्दिकेश्वरः
८. भावप्रकाशः – शारदातनयः
९. ध्वन्यालोकः- आनन्दवर्धनः

****

नाट्यशास्त्रे प्रवृत्तिविवेचनम्

-डा. रत्नमोहनझाः

स्वकीयवैविध्यकारणात् नाट्यशास्त्रं ललितकलानां विश्वकोशः वर्तते। अनेन भारतस्योदात्तकलाचेतना अनुप्रणीता। तस्मादेव शास्त्रज्ञैः नाट्यशास्त्रं नाट्यवेदत्वेन प्रतिष्ठापितम्। भारतीयपरम्परायाम् आप्राचीनकालादेव नाट्यशास्त्रस्य महत्महत्त्वं विद्यते। कलायाः उत्कृष्टं रूपं काव्यं तथा च उत्कृष्टतमं रूपं नाटकं वर्तते। नाटकं सर्वशास्त्राणां प्रयोगशालाभवति। नाटकस्य प्रतिपादकः सर्वप्राचीनभारतीयग्रन्थः नाट्यशास्त्रमेव वर्तते। अस्मिन् वैचारिकव्यापकता वैषयिकसमग्रता च सर्वतोभावेन सम्पूरिता वर्तते। अस्मिन् ग्रन्थे आनुषङ्गिकविषयः काव्यसङ्गीतनृत्यशिल्पादयोऽपि समाहितास्सन्ति। अनेन ग्रन्थेन रङ्गमञ्चीयाः कलाः परुपोषिताः वर्तन्ते। बाबुलालशुक्लमहोदयस्य मतानुसारेण केवलम् एकस्मिन् गन्थे नात्यविषयकं विवरणं यथा समग्रभावेन प्रस्तुतं तथा न केवलम् अन्यस्मिन् भारतीयग्रन्थे अपितु विश्वऽस्मिन् विश्वेऽपि कश्मिञ्चित् ग्रन्थे नैव प्राप्यते। तस्मादेव प्राचीनभारते व्यवहृतनाट्यकलानां प्रकृति स्वरूपतत्त्वानामवगमनाय एकमात्रम् आलम्बनं नाट्यशास्त्रमेवास्त।

नाट्यं नट् धातुना निष्पन्नं रूपं वर्तते। पदमेतत् नृत्यगीतवाद्यानां समवेतरूपार्थं द्योतयति। कोशकाराणां मतानुसारं नृत्यगीतवाद्यानां सहप्रस्तुतिः नाट्यं वर्तते। अस्य 'तौर्यत्रिक' संज्ञा वर्तते।

तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्।[i]
तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यं च तत्त्रयम्।[ii]
नाट्यं नृत्यगीतवाद्यं तौर्यत्रिकम्।[iii]
नाट्यं तौर्यत्रिकम् लास्ये।[iv]

नाट्यशास्त्रस्य टीकाकारः हर्षः तौर्यत्रिकं रङ्गस्य पर्यायं मनुते।[v] आचार्यभरतस्यानुसारेण नाट्यं सार्ववर्णिकः वेदःवर्तते।

नात्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।[vi]

परिसरेणानेन दिवसद्वयव्यापिन्याः राष्ट्रियसाहित्यशोधसङ्गोष्ठ्याः आत्मतत्त्वं वर्तते। भरतप्रणीतनाट्यशास्त्रस्य षष्ठाध्यायस्य दशमं सूत्रंम्-

रसो भावा ह्यभिनया धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिः स्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च संङ्ग्रहः॥[vii]

एतदनुसारेण नात्यशास्त्रे भरतोक्तप्रवृत्तयः समुपस्थाप्यते। शब्दस्यास्य ऐतिह्य विचारयामश्चेत् नाट्यशास्त्रकोशकाराचार्यराधावल्लभत्रिपाठीवर्योऽपि इदं समर्थयति। प्रवृत्तिशब्दस्य महत्त्वपूर्णप्रयोगद्वयं पतञ्जलेः महाभाष्ये प्राप्यते। तत्र प्रथमः प्रयोगः शब्दस्यार्थव्यापारार्थे वर्तते- चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः।[viii] अपरस्मिन् उद्धरणे प्रवृत्तेः अर्थः यज्ञादिसन्दर्भे स्वीकृतः - सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः।[ix]

कालिदासेनापि स्थानद्वये प्रवृत्तिशब्दस्य प्रयोगः कृतः। मेघदूते कौशल्यार्थे - जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्[x] तथा च कुमारसम्भवे व्यवहारार्थे अकालिकीं वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्[xi] इति दृश्यते।

भरतमुनिना कक्ष्यापरिधिलोकधर्मीनिरूपणाध्यायनामके चतुर्दशेऽध्याये मञ्चस्य कक्ष्याविभागनिरूपणं कृतम्। तदनन्तरं साक्षात् प्रवृत्तयः समुपस्थापिताः। वस्तुतः कक्ष्याविभागनिरूपणानन्तरं धर्मीवर्णनस्य क्रमः आसीत्। परन्तु आचार्यः स्वयं कथयति - ''पुनश्चैव प्रवक्ष्यामि प्रवृत्तीनान्तु लक्षणम् [xii]। यतोहि कक्ष्याविबागस्य नियमानुसारेण विविधप्रदेशीयपात्राणां मञ्चप्रवेशे किञ्चिद् वैशिष्ट्यं भवति। केषाञ्चन उत्तरद्वारात् प्रवेशः केषाञ्चन च दक्षिणद्वारात् प्रवेशोभवति। एतादृशं ज्ञानं प्रवृत्तिज्ञानेन विना नैव सम्भवति अनेनैव प्रयोजनेन आचार्येण कक्ष्याविभागसमन्तरमेव प्रवृत्तयः निरूपिताः।

चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्ता नाट्योक्तृभिः।
आवन्ती दाक्षिणात्या च पाञ्चली चैवेढ्रमागधी॥[xiii]

अत्र प्रश्नान् उपस्थापयति स्वयमाचार्यः प्रवृत्तिरिति कस्मात्[xiv] स्वयञ्चोत्तरति- पृथिव्यां नानादेशवेशभाषाचारा वार्ताः रव्यापतीति प्रवृत्तिः। वृत्तिश्च निवेदने। अत्राह- यथा पृथिव्यां नानादेशाः सन्ति।

कथमासां चतुर्विधत्वमुपन्नं समानलक्षणश्चासां प्रयोगः? उच्यते - तत्तु सत्यम्, आसां समानलक्षणप्रयोगः किन्तु नानादेशवेषभाषांचारी लोकेति कृत्वा लोकानुमतेन वृत्तिसंश्रितस्य नाट्यस्य मया चतुर्विधत्वमभिहितम्- भारती, आरभटी, सात्वती, कैशिकी चेति।

वत्तिसंश्रितैश्च प्रयोगैरभिहिता देशाः यतः प्रवृत्तिचतुष्टयमभिनिर्वृत्तं प्रयोगश्चोत्पादितः।[xv]

अत्र इदमेवधेयं यत् नाट्यशास्त्रस्य संस्करणत्रयं प्रामुख्यं भजते। अत्र प्रस्तुता नानादेशभाषाचारवार्ताः ख्यापयतीति प्रवृत्तिः, वृत्तिश्च निवेदने पंक्तिरियं काशीसंस्करणस्य वर्तते।[xvi] बडौदासंस्करणस्य दिल्लीसंस्करणस्य च आधारेण नानादेशभाषाचारवार्ताः प्रख्यापयतीति वृत्तिः, प्रवृत्तिश्च निवेदने इति वर्तते। उभयं पश्यामश्चेत् प्रवृतेश्च स्थितौ विपर्ययो भवति। काशीसंस्करणाधारेण विबिन्नदेशेषु प्रचलिताचारादिसूचकाः व्यवहाराः प्रवृत्तिपदेनस्वीकृतः। तेषां नाट्येनिवेदनं रूपान्तरणञ्च वृत्तिः भवति। अर्थोऽयं औचित्यमपि आवहति। परन्तु अभिनवगुप्तपादानां मतानुसारेण वृत्तिः आभ्यन्तरतत्त्वत्वेन प्रवृत्तिश्च बाह्यत्वेन् भवति- प्रवृत्तिः देशविशेषगता वेषभाषासमाचारवैचित्र्यप्रसिद्धिरुच्यते।

तत्रैव योजना - देशे येष्वेव वेषादयो नेपथ्यं, भाषा वा आचारो लोकशास्त्रव्यवहार वार्ता कृषिपाशुपाल्यादिर्जीविका इति तान् प्रख्यापयति पृथिव्यादिसर्वलोकविद्याप्रसिद्धिं करोति। प्रवृत्तिर्बाह्यार्थे यस्मान्निवेदने निःशेषेण वेदने ज्ञाने प्रवृत्तिशब्दः।[xvii] अस्त्येषा भुवने प्रवृत्तिरभवद् - रामेण रामस्यवत् इत्यादौ।

भोजराजोऽपि देशोचितानां भाषाक्रियावेषाणां प्रामुख्यमङ्गीकरोति - तत् तद् देशोचिता भाषाक्रियावेषाः प्रवृत्तयः।[xviii]

प्रवृत्तिः नाट्यस्य योगक्षेमाय भवति। अनुपलब्धतत्वानां लाभ, उपलब्धतत्त्वानां रक्षा, रक्षितस्याभिवृद्धिः, वर्धितस्योपयोगः, उपयोगितः पर्याप्तोरित्येव प्रवृत्तेः प्रयोजनम्। तदुक्तं भोजराजेन - अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षार्था रक्षिताभिवृद्ध्यर्था वर्धितोपयोगार्था उपयोगपर्याप्तार्था चेति प्रवृत्तयः।[xix]

भोजराजेन उक्तं यत् नायकेन वाण्या बुद्धया शरीरेण च ये केचन व्यापाराः क्रियन्ते ते सर्वेऽपि प्रवृत्तौ समाविष्टाः भवन्ति। अर्थात् अभिनयार्थं रङ्गमञ्चे अभिनेत्रा क्रियमाणाः सर्वेऽप्युपक्रमाः प्रवृत्तयः कथ्यन्ते। तेषु आलापप्रलापादयः द्वादशप्रवृत्तयः वागारम्भात् भवन्ति। हावभावादयः द्वादश प्रवृत्तयः बुद्धयासम्भवन्ति। लीलाविलासादयश्च द्वादशप्रवृत्तयः शरीरात् समुद्भवन्ति।[xx]

दशरूपकाधारेण धनञ्जयेनापि प्रवृत्तेः आधारत्वेनदेशभाषादयः एव स्वीक्रियन्ते -

देशभाषाक्रियावेशलक्षणाः स्युः प्रवृत्तयः।
लोकदेवावगम्यैता यथौचित्यं प्रयोजयेत्॥[xxi]

अत्र भाषा इति कथनेन मागध्यादिसप्तकं विभाषासप्तकं चावगन्तव्यम् -

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्युड्रमागधी।
बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषा प्रकीर्तिताः॥
शकाराभीरचण्डालशबरद्रमिडान्ध्रजाः।
हीना वनेचराणाञ्च विभाषाः सप्त कीर्तिताः॥[xxii]

आचार्य भरतः नाट्यशास्त्रे चतसृणां प्रवृत्तिनां परिगणनं विधाय एकैकस्याः प्रवृत्तेः देशनिरूपणं करोति। अत्र दर्शनेन ज्ञायते यत् पाञ्चालमध्यमा पाञ्चाली च पर्यायत्वेन वर्तते। तथा च अन्तिमा च प्रवृत्तिः ऊढ्रमागधी औढ्रमागधी नाम्ना अपि ज्ञायते। एतासां चतसृणां प्रवृत्तिनां आवन्ती-दाक्षिणात्या-ऊढ्रमागधी-पाञ्चालमध्यामानां अवस्थितिः अचार्येण भरतेन चक्रवर्तीक्षेत्रानुसारेण हिमालयात् सागर पर्यन्तभूभागं मनसिनिधाय स्वीकृता वर्तते।

दाक्षिणात्या प्रवृत्तिः - सर्वादौ दाक्षिणात्या प्रवृत्तेः देशकालं तत्तत्यानां रुचिं च निर्धार्य नाट्यशास्त्रे उच्यते "तत्र दाक्षिणात्यास्तावद्बहुनृत्तगीतवाद्याः कैशिकीप्रायाः चतुरमधुरललिताङ्गाभिनयाश्च।[xxiii] महेन्द्रः मलयः सहयः मेकलः पालमञ्जरश्च -

महेन्द्रो मलयः सहयो मेकलः पालमञ्जरः।
एतेषु संश्रिता देशास्ते ज्ञेया दाक्षिणात्या॥[xxiv]

एभिस्सह कोशलः, तोशलः, कलिङ्गः, यवनः, खसः, द्रविडः, आन्ध्रः, महाराष्ट्रः, वैष्णः, वानवासजः, दक्षिणसमुद्रः, विन्ध्यो मध्यस्थः भूभगश्च दक्षिणापथे एव वर्तन्ते -

कोशलस्तोशलाश्चैव कलिङ्गा यवनाः खसा।
द्रविडान्ध्रमहाराष्ट्रा वेण्या वै वानवासजः॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य तथा विन्ध्यस्य चान्तरे।
ये देशास्तेषु युञ्जीत दाक्षिणात्या तु नित्यशः॥[xxv]

एतेषां प्रदेशानां जनेषु नृत्यगीतवाद्याभिरुचिः आधिक्येन दृश्यते। ऐषां वृत्तिः कैशिकी भवति। एतेषु चतुरमधुरललिताभिनयाः भवन्ति। इयं प्रवृत्तिः शृङ्गाररसप्रधानाबवति। दाक्षिणात्यानां विषये कथ्यते -

आमूलतो वलितकुन्तलचारुचूडः
चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः।
कक्षानिवेशनिबिडीकृतनीविरेष
वेषश्चिरं जयतु केरलकामिनीनाम्॥[xxvi]

आवन्तिका प्रवृत्तिः - भरतानुसारेण आवन्तिकाप्रदेशे परिगणितास्सन्ति - अवन्ती, विदिशा, सौराष्ट्रम्, मालवा, सिन्धुः, सुवीरः, आनर्तः, दशार्णः, त्रिपुरः, विवर्तादयश्च। एतेषां प्रदेशानां जनेषु वेशभूषा, भाषा आचारः व्यवहारश्च साम्यं भजते।

एतेषु प्रायशः कैशिकी सात्त्वती च वृत्ती प्राप्येते। नाट्यप्रयोगे तत्तद् देशजवेशः आवश्यकः भवति -

आवन्तिका वैदेशिकाः सौराष्ट्रा मालवास्तथा।
सैन्धवास्त्वथ सौवीरा आनर्ताः सार्वुदेयकाः॥
दाशार्णास्त्रैपुराश्चैव तथा वै मार्तिकावताः।
कुर्वन्त्यावन्तिकीमेतेब् प्रवृत्तिं नित्यमेव तु॥
सात्त्वतीं कैशिकीञ्चैव वृत्तिमेषा समाश्रिताः।
भवेत् प्रयोगो नान्यत्र स तु कार्यः प्रयोक्तृभिः॥[xxvii]

अस्मिन् सन्दर्भे उच्यते -

सितांशुका मङ्गलमात्रभूषणा
पवित्रदूर्वाङ्कुरलाञ्छितालका।
धृतोपवासोज्झितगर्ववृत्तिका
मयि प्रसन्ना वपुषैव लक्ष्यते॥[xxviii]

औढ्रमागधीप्रवृत्तिः - औढ्रमागधीप्रवृत्तिबहुलाः प्रदेशाः पूर्वस्यां दिशि प्रायशः वर्तन्ते। एतेषु अङ्ग-बङ्ग-कलिङ्ग-वत्स-औढ्र-मागध-पौण्ड्र-नेपाल-विदेह-प्राग्जोतिषबह्मोत्तर-पुलिन्द-ताम्रलिप्तादयः देशाः वर्तन्ते। भूभागेऽस्मिन् जनैः नात्ये औढ्रमागधीप्रवृत्तेः प्रयोगः क्रियते। अस्यां भारती आरभती च वृत्ति भवतः। तद्यथा -

अङ्गा बङ्गा कलिङ्गाश्च वत्साश्चैवोढ्रमागधीः।
पौण्ड्रनेपालकाश्चैव अन्तार्गारिबहिर्गिराः॥
तथा प्लवङ्गमा ज्ञेया मलदा मल्लवर्तकाः।
व्रह्मोत्तरप्रभृतयो भार्गवा मार्गवास्तथा॥
प्राग्ज्योतिषाः पुलिन्दाश्च वैदेहास्तथाप्रलिप्तकाः।
प्राच्यप्रभृतयश्चैव युञ्जन्तीहौढ्रमागधीम्॥
अन्येऽपिदेशाः प्राच्या ये पुराणे सम्प्रकीर्तिताः।
तेषुप्रयुज्यते ह्येषा प्रवृत्तिश्चोढ्रमागधी॥[xxix]

एतेषां वेषसन्दर्भे उच्यते राजशेखरेण

आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः

सीमन्तचुम्बिसिचयस्फुटबाहुमूलः।
दूर्वाप्रकाण्डरूचिरास्वगुरुपभोगात्-
गौराङ्गनासु चिरमेष चकास्तु वेषः॥[xxx]

पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्तिः - पाञ्चालमध्यमाप्रवृतौ प्रायशः गङ्गानद्याः उत्तरस्यां हिमालयस्य च दक्षिणस्यां दिशि अवस्थिताः प्रदेशाः भवन्ति। अस्मिन् पाञ्चाल-शौरसेन-कश्मीर-हस्तिनापुर-वाल्हिक-शाकल-मद्र-उशीनरादयः वर्तन्ते। एते सर्वेऽपि पाञ्चालमध्यमाप्रवृत्तिं गृह्णन्ति। अस्यां व्यवहारे गानस्य न्युनता असामान्यागतिः पादसञ्चालनस्य च अधिक्यः भवति।

पाञ्चालाः शौरसेनाश्च काश्मीरा हस्तिनापुराः।
वाह्लीकाः शाकलाश्चैव मद्रकौसीनरास्तथा॥
हिमवत्संश्रिता ये तु गङ्गायाश्चोत्तरां दिशम्।
ये श्रिता वै जनपदास्तेषु पाञ्चालमध्यमा॥
पाञ्चालमध्यमायान्तु सात्वत्याऽरभती स्मृता।
प्रयोगस्वल्पगीतार्त आविद्धगतिविक्रमः॥[xxxi]

पाञ्चालानां वेषवर्णन सन्दर्भे उच्यते-

ताडङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेख-
मानाभिलम्बिदरदोलिततारहारम्।
आश्रोणिगुल्फपरिमण्डलितान्तरीयं
वेषं नमस्यत् महोदयसुन्दरीणाम्॥३०

नाट्यशास्त्रे प्रवृत्त्यगुणमेव रङ्गमञ्चे पात्राणां प्रवेष्टुमनुमतिः वर्तते। तदनुसारेण आवन्ती दाक्षिणात्या प्रवृत्तिपरकैः पात्रैः दक्षिणपार्श्वात् तथा च पाञ्चाली-औढ्रमागधीप्रवृत्ति-परकैः वामपार्श्वात् प्रवेशः क्रियते। दिद्वारं भवति तर्हि आवन्तीदाक्षिणात्यप्रवृत्तिःपरकाः नाट्यगृहे उत्तरद्वारात् पाञ्चाली औढ्रमागधीप्रवृत्तिपरकाश्च दक्षिणद्वारात् प्रविशन्ति। स्वकीयप्रवृत्त्यगुणमेव सर्वप्रदेशीयैः अभिनेतव्यम्।

प्रवृत्तीनां प्रयोज्यता - एतावता इदं निश्चयप्रचं यत् प्रयोगैस्सह प्रवृतीनां सम्बन्धो वर्तते। सन्दर्भेऽस्मिन् भरतमुनिना निदृष्टं यत् यस्मिन् देशे या प्रवृत्तीः कथिता तस्मिन् देशे तस्याः प्रवृत्तेः प्रयोगः एव तज्ज्ञैः करणीयः -

येषु देशेषु या कार्या प्रवृत्तीः परिकीर्तिताः।
तद्वृत्तिकानि रूपाणि तेषु तज्ज्ञः प्रयोजयेत्॥[xxxii]

उपर्युक्त दृष्ट्या प्रवृत्तेः निहितार्थ द्वयं पृथकतया पुरतः समायति। प्रथमस्तावत् विभिन्नेषु देशेषु आचारदृष्ट्या परम्परादिदृष्ट्या च नाटकस्य पात्राणां चित्रणं भवति। तेषां च विशिष्टप्रवृतीः मनसि अवधार्य चरसृणां वृतीनां प्रयोग पुरस्सरं अभिन्मेताराः तत्प्रस्तुवन्ति। द्वितीयस्तावत् विभिन्नदेशेषु प्रयोक्तृणाम् अभृनेतृणामेवप्रवृत्तयः पृथक्-पृथक् वर्तन्ते। यस्मिन् देशे नाट्यप्रयोगः क्रियते तस्य देशस्य प्रवृत्यनुगुणमेव प्रयोगः विधेयः।

नाट्यसंग्रहस्य इतरतत्त्वैः सह प्रवृत्तीनां सम्बन्धः

नाट्यसंग्रहे तु प्रवृत्तेः प्राक् रसस्य भावस्य अभिनयस्य धर्मिणः वृत्तेश्च स्थानं दृश्यते। प्रवृत्तेः सम्बन्धः इतरतत्त्वैः सह वर्तते एव। तत्र वृत्त्या सह साक्षात् सम्बन्धः तथा च धर्मि-अभिनय-भाव-रसैः सह परम्परया सम्बन्धः वर्तते।

नाट्यशास्त्रकारदृष्ट्या वृत्ति-प्रवृत्त्योः परस्परं सम्बन्धः इत्थं प्रदर्शयितुं शक्यते -

वृत्तिः	प्रवृत्तिः
भारती	ऊढ्रमागधी
सात्त्वती आरभटी च	पाञ्चालमध्यमा
सात्त्वती कैशिकी च	आवन्ती दाक्षिणात्या चेति।

प्रवृत्तयः काव्यशास्त्रीय रीतयश्च

नाट्यशास्त्रकारेण प्रायशः रीतयः स्फुटतया नैव व्याख्यायिताः। संस्कृतकाव्यशास्त्रे भामहदण्डीप्रभृतिभिः आचार्यैः वैदर्भी गौडीचेति रीतिद्वयं कल्पितम्। अनन्तरं पाञ्चालीनाम्ना तृतीया रीतिरपि संयुक्ता। पश्चाच्च लाटीनाम्नी चतुर्थीं वृत्तीं संयोज्य भोजः रीतेः सम्बन्धं वृत्तिप्रवृत्तिभ्याम् अकल्पयत्। भोजराजशेखरयोः दृष्ट्या रस-नायक-नायिका-रीति-वित्ति-प्रवृत्तिनां पारस्परिकसम्बन्धः इत्थं भवितुमर्हति।

रस	नायकः	नायिका	रीतिः	वृत्तिः	प्रवृत्तिः
धर्मशृङ्गारः	धीरोदात्तः	स्वीया	पाञ्चाली	भारती	प्राच्या
अर्थशृङ्गारः	धीरोद्धतः	सामान्या	गौडी	आरभटी	मागधी
कामशृङ्गारः	धीरललितः	सामान्या	वैदर्भी	कैशिकी	दाक्षिणात्या
मोक्षशृङ्गारः	धीरशान्तः	स्वीया	लातीया	सात्त्वती	आवन्ती

संस्कृतकाव्यशास्त्रे प्रवृत्तीविवेचनम्

काव्यशास्त्रक्षेत्रे प्रवृत्तिविवेचनं सर्वप्रथमं राजशेखरेण कृतम्। तेन काव्यपुरुषोत्पत्तिप्रसङ्गे प्रवृत्तिवर्णनं कृतम्। सन्दर्भेऽस्मिन् पूर्वदेशस्य अङ्ग-बङ्ग-सुह्य-ब्रह्मपुण्ड्रादिजनपदेभ्यः ओढ्रमागधीप्रवृत्तेः सम्बन्धः कल्पितः।

पाञ्चाला-शूरसेन-हस्तिनापुर-कश्मीर-बाह्लीक-वाह्लवेयादिजनपदानां सम्बन्धः पाञ्चालमध्यमाप्रवृत्तेः कल्पितः।एषां जनपदानां वृत्तिः सात्त्वती रीतिश्च पाञ्चाली वर्तते। अवन्ती-वैदिश-सुराष्ट्र-मालव-अबुर्द-भृगुकच्छादि जनपदानां सम्बन्धः आवन्ती प्रवृत्तेः कल्पितः। एषां वृत्तिः राजशेखरेण सात्त्वती कएशिकी च अङ्गीकृता। मलय-मेकल-कुन्तल-केरल-पालमञ्जर-महाराष्ट्र-गंग-कलिङ्गादिजनपदानां सम्बन्धः दाक्षिणात्याप्रवृत्तेः कल्पितः। एतेषां वृत्तिः कैशिकी रीतिश्च वैदर्भी वर्तते।

एवंप्रकारेण राजशेखरस्यदृष्ट्यारीति-वृत्ति-प्रवृत्तयः परस्परं सम्बन्धिताः वर्तन्ते।तुलनात्मकदृष्ट्या एतेषां विवेचनं तेनैत्थं कृतम् -

"तत्र वेशविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः, विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः,वचनविन्यासक्रमो रीतिश्चभवन्ति।[xxxiii]

राजशेखरेण अयमपि प्रश्नः उपस्थापितः यत् देशस्य आनन्त्यं वर्तते। तर्हि पुनह् किमर्थं वृत्तिप्रवृत्तिनां सङ्त्या सतस्रः एव? समाधानमपि एवमेवकृतं यत् देशानाम् आनन्त्यं वर्तते चेदपि तेषां चातुर्विध्यं सङ्कल्यवृत्तिप्रव्रुत्तिनां संख्या चतस्रः एव क्रमशः कल्पितम्।चातुर्विध्यमिदं चक्रवर्तीक्षेत्रानुसारेण वर्तते। अत्र इदं अवधेयम् यत् दक्षिणसमुद्रात् हिमालय यावत् सहस्रयोजनानां चक्रवर्ति क्षेत्रं वर्तते।[xxxiv]

भोजः पाञ्चालीप्रवृत्तेः पाञ्चालमध्यमाश्च स्थाने प्राच्या शब्दप्रयुक्तवान्। स च रसनायकयोः विभाजनदृष्टिं मनसि निधाय रीति-वृत्ति-प्रवृत्तिनाम् सम्बन्धम् अकल्पयत्।[xxxv]

इत्थं उपर्युक्ततथ्याधारेण रीति-वृत्ति-प्रवृत्तिनां परस्परं अन्तः सम्बन्धो वर्तते। अतः त्रयाणामपि समवेताध्ययनेन नाट्यशास्त्रनिरुपित विविधप्रादेशिकसंस्कृतेः ज्ञानपुरस्सरं नाट्यतत्त्वानां परिपोषणं भवति।

[1] अमरकोशः १/७/३०
[1] शब्दरत्नाकरः १८९०
[1] हलायुधः ३८६
[1] मोदिनीइकोशः २६/३४
[1] अभिनवभारती, प्रथमोभागाः पृ. २०९
[1] नाट्यशास्त्रम् १/१५
[1] नाट्यशास्त्रम् ६/१०
[1] महाभाष्यम्
[1] तत्रैव.
[1] मेघदूतम् ४

[1] कुमारसम्भवम् ३/३४
[1] नाट्यशास्त्रम् १४
[1] तत्रैव १४/१६
[1] तत्रैव
[1] तत्रैव गद्यभागः
[1] तत्रैव का. सं. पृ.१६५
[1] नाट्यशास्त्रस्येतिहासः ३४० पृष्ठे
[1] नाट्यशास्त्रवि. को. १०५८ पृष्ठे
[1] तत्रैव
[1] भोजकृतः शृङारप्रकाशः पृ. २०५
[1] दशरूपकं ६३
[1] दशरूपकम् सं. अमरनाथपाण्डेय पृ.६६
[1] नाट्यशास्त्रं सं. बाबूलालशुक्ल, पृ. १८८
[1] तत्रैव.
[1] तत्रैव. ३८
[1] दशरूपकं, सं. अमरनाथपाण्डेयः, पृ. ७८
[1] नाट्यशास्त्रम् १४/४१
[1] दशरूपकम्, सं. अमरनाथपाण्डेयः, पृ. ७८
[1] नाट्यशास्त्रम् १६/४३-४६
[1] काव्यमीमांसा. तृतीयेऽध्याये
[1] ना. शा. १४/४६-४९
[1] दशरूपकं, सं. अमरनाथपाण्डेयः पृ. ७८
[1] नाट्यशास्त्रम् १४/५४
[1] काव्यमीमांसा, पटनासंस्करणम् पृ. २१
[1] तत्रैव पृ. २२
[1] नाट्यशास्त्रविश्वकोशः १०६१ तमे पृष्ठे

****

भरतमुनिप्रोक्तं वृत्तिस्वरूपम्

डॉ. सनन्दनकुमारत्रिपाठी
वरिष्ठसहायकाचार्यः साहित्यविभागाध्यक्षश्च
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,भोपालपरिसरः
पिन- 462043, मो.-9691942394

वृत्तिशब्दार्थः- **'वृतु वर्त्तने'** इत्यस्माद्धातोः संज्ञायां क्तिनि वृत्तिशब्दो निष्पद्यते। अतो वर्तनम्, जीविका, विवरणं व्याख्या वा, व्यवहारो वा वृत्ति-शब्दार्थः। तेन वृत्तिशब्दात् कायिकवाचिकमानसादिसर्वविधचेष्टाः गृह्यन्ते। वृत्तिशब्देनाऽभिधादयो वृत्तयोऽपि गृह्यन्ते। ध्वनिकारेण वर्णसंघटनाः रीतयश्चाऽपि वैदर्भीप्रभृतयो वृत्तिशब्देनोपात्ताः। तथाहि-

'वर्णसंघटनाधर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते तदनतिरिक्तवृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः, ता अपि गताः श्रवणगोचरम् रीतयश्च वैदर्भीप्रभृतयः'।[17]

किन्तु प्रकृते वृत्तिशब्दो नाट्यशास्त्रीयसात्त्वतीप्रभृतिवृत्त्यर्थः। काव्ये नाट्ये वा प्रयुक्तः पात्राणां व्यवहार एव वृत्तिनाम्ना व्यपदिश्यते। काव्यशास्त्रे काव्यवृत्तिः नाट्यवृत्तिश्च पृथक् प्रयुज्येते। उपनागरिका, परुषा, कोमला चेति तिस्रः काव्यवृत्तयो निगद्यन्ते। अत्र वृत्त्यर्थः- **नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापारः।**[18] नाट्यशास्त्रे वृत्तयश्चतुर्धा- भारती, सात्त्वती, कैशिकी, आरभटी चेति। वृत्तीनां प्रधानमुदेश्यं सहृदयहृदये रूपकैः रसोद्भावनमेव। एतद्धि रसोद्भावनं काव्यवृत्तयो रूपकेषु काव्याक्षरैः शब्दार्थवेशभूषापात्रव्यवहारादिभिः साधनानैर्विदधति। वृत्तिचतुष्टये भारती शब्दवृत्तिः समेषु रसेषु विहितस्थितिः। शेषास्तिस्रोऽर्थवृत्तयः परिमितेषु रसेषु प्रयुज्यन्ते। भारती वाचिकाभिनयसम्बद्धा, वृत्त्यन्तरेषु नृत्यगीतवाद्यानि रसानुकूला भावाश्च प्रयुज्यन्ते।

वृत्त्युद्भवः - 'वर्त्तते रसोऽनयेति वृत्ति'रिति व्युत्पत्त्या रससत्ता यस्याः सत्त्वाद् भवति सा वृत्तिरिति तदर्थः। अभिनवगुप्तमते तु रस एव नाट्यम्। नाट्यसत्त्वञ्च चेष्टाभिः प्रतीयते। कस्यचिन्मनसि विद्यमाना भावना नास्वाद्या सहृदयैः। भावना यदाऽधिरूपकं नायकनायिकाचेष्टाभिरभिनयेन वा प्रबुद्ध्यते तदैवास्वाद्यतां भजते। भावनाप्रबोधनपटीयस्य इमाश्चेष्टा एव नाट्यशास्त्रे वृत्तिसंज्ञयाऽभिहिताः। आस्वादोद्भवहेतुतया एव मुनिर्भरतः वृत्तीः **'काव्यमातरः'** इति सम्बोधयति-

'एवमेता बुधैर्ज्ञेया वृत्तयो नाट्यमातरः।[19]
रसप्रयोगमासाज्च कीर्त्यमानं निबोधत।।

नाट्यशास्त्रे वृत्तयो नाट्यप्रयोगदृशा विवेचिता विलसन्ति। अतो नाट्यमातृत्वप्रतिपादनेन वृत्तीनां महत्ता प्रकटीकृताचार्येण भरतेन। नाट्यमातृभूततया वृत्तयोऽसाधारणाधिकारसंवलिताः। मातुस्तत्संततीनाञ्च यादृशः सम्बन्धस्तादृश एव कश्चन सम्बन्धो वृत्तीनां नाट्येन साकं वर्तत इति नाट्यमातृत्वतात्पर्यम्। वृत्तिसम्बन्धो नाट्ये नाट्यकथावस्तुना साकं भवति। अतो नटक्रिया तद्व्यापारो वा वृत्तिरित्यभिधीयते, यत्प्रयोगो रूपके विधीयते। वृत्तयो न केवलमाङ्गिकाभिनयसाधनानि प्रत्युत मनोवागिन्द्रियव्यापारा अपि। रूपकाणां भेदाः पारस्परिकमन्तरं वा वृत्तिभिरेव ज्ञातुं शक्यन्ते। वृत्तिभेद एव रूपकाणां पारस्परिकं भेदं निरूपयति।[20]

आचार्यभरतेन नाट्यशास्त्रे वृत्तीनामुत्पत्तिसन्दर्भेऽत्यन्तं रुचिरः पौराणिकप्रसङ्गः प्रस्तुतः। मधुकैटभदैत्यवधप्रसङ्गे भगवता विष्णुना याश्चेष्टाः प्रदर्शितास्ताभिरेव नाट्यवृत्तीनामुद्भवः। युद्धे प्रवृत्ते भगवता विष्णुना यथैव स्वपादौ पृथिव्यां स्थापितौ तथैव विष्णुपादभरेण धरा एकस्मिन् पार्श्वे उर्द्ध्वमधिष्ठिता, तेन च भारतीवृत्तिरूदपद्यत। भगवतो विष्णोर्वीररसोचितचेष्टाभिः सात्त्वतीवृत्तिरुदगमत्। अथ च तदीयविचित्रललित-लीलामयेनांशिकाभिनयेन शिखाबन्धनेन कैशिकी वृत्तिर्विरचिता। भगवतो विष्णोर्युद्धक्रमे ससंरम्भावेगं विहितनानाविधचारीभ्य आरभटी वृत्तिराविर्भूता। एवं ब्रह्मण आदेशेन भगवतो विष्णोस्ताश्चेष्टाः नाट्ये प्रयुक्ता वृत्तिपदं भजमानाः प्रकामं कामनीयकं सृजन्ति। अत एव वृत्तिसम्बन्ध आङ्गिकवाचिकसात्त्विकाहार्याभिनयैः सह सुतरां सिद्ध्यति तदुक्तम् -

[17] ध्वन्यालोकः-1/1
[18] काव्यप्रकाशः 9/79 वृत्तिः
[19] नाट्यशास्त्रम्- 20/61
[20] भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास-पृ.29

एकार्णवं जगत् कृत्वा भगवानच्युतो यदा।[21]
शेते स्म नागपर्यङ्के लोकान् संक्षिप्य मायया।।
....
यां यां देवः समाचष्टे क्रियां वृत्तिसमुत्थिताम्।
तां तदर्थानुगैर्वाक्यैर्द्रुहिणः प्रत्यपूजयत्।।

वृत्तिमहत्त्वम्- नाट्यप्रयोगदृष्ट्या वृत्तीनां नितान्तं महत्त्वं वर्तते। वृत्तयो रूपकमुपकुर्वन्ति। अत एवोपकारिण्यो निगद्यन्ते। आचार्यभरतप्रतिपादिता वृत्तयः परवर्तिनाम् आचार्याणां काव्यवृत्तिभ्यः सर्वथा स्वतन्त्रा व्यतिरिक्ताश्च विलसन्ति। एता वृत्तीर्व्यापारशब्देन सम्बोध्यैताभिः रसास्वादनं स्वीक्रियते। अनया दृष्ट्या रूपकेषु वृत्तीनां महत्त्वं सर्वथा निर्विवादम्। यतो वृत्तयो रसानुग्राहिकाः। मुनिर्भरतः रूपकाणि वृत्तिप्रभवाणि उक्त्वा वृत्तीः नाट्यप्रयोगमातॄः कथयति। किञ्च वृत्तिप्रयोगसामर्थ्यं रूपकाणि वृत्तिप्रभवाणि प्रमापयति। आचार्यभरतमते सर्वासु नाट्यरचनासु वृत्तयो मूलतत्त्वरूपेण मान्याः। यथा स्वराणां जातिभिः श्रुतिभिश्च ग्राम उत्पद्यते तथैव वृत्तिभेदोपि रूपकभेदान् सृजति। एवं नाटकप्रकरणादिषु सर्वासां वृत्तीनां समावेशः। वृत्तयो विभिन्नेभ्यो भावेभ्यो रसेभ्यश्च स्थैर्यं प्रददति। अतो वृत्तिसंज्ञया विभूषिताः। मधुकैटभवधप्रसंगे भगवतो विष्णोर्वाचिकादिकार्यकलापैरर्थानुसारेण ऋषय इमा वृत्तीः सृष्टवन्तः। अथचात्राङ्गिकवाचिकाद्यभिनयानां विविधचारीणाञ्च समावेशः समजायत।

आचार्यभरतो वृत्तिविवेचनक्रमे पौराणिकपरम्परया सह वैदिकमाधारमप्याश्रयते। तन्मतानुसारेण वृत्तयश्चतुर्भ्यो वेदेभ्यो विनिर्गताः। तदनुसारेण भारती वृत्तिः शब्दप्रधाना, तस्या उद्भवः ऋग्वेदात् संजातः। सात्त्वतीवृत्तिः शौर्यदयाद्यभिनयसम्बद्धा, तस्या उद्भवो यजुर्वेदात् सञ्जातः। नृत्यगीतप्रधानायाः कोमलवृत्तेः कैशिक्याः समुद्भवः सामवेदादारभट्याश्च वधयुद्धेन्द्रजालादिप्रधानाया अथर्ववेदात् समभवत्। तदुक्तम्-

ततो देवेषु निक्षिप्ता द्रुहिणेन महात्मना।[22]
पुनर्नाट्यप्रयोगे च नानाभावरसान्विता।।
वृत्तिसंज्ञाकृता ह्येषा नानाभावरसाश्रया।
चरितैस्तस्य देवस्य द्रव्यं यद् यादृशं कृतम्।।
ऋषिभिस्तादृशी वृत्तिः कृता वाक्याङ्गसम्भवा।
नाट्यवेदसमुत्पन्ना वागङ्गाभिनयात्मिका।।
पुनरिष्टसुजातेन नानाचारीसमाकुले।
मया काव्यक्रियाहेतोः प्रक्षिप्ता द्रुहिणाज्ञया।।
ऋग्वेदाद् भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्त्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणात्तथा।।

वृत्तिभेदाः- आचार्यभरतप्रतिपादिता वृत्तयश्चतस्रः - भारती, सात्त्वती, कैशिकी, आरभटी चेति। अथैतासां क्रमशो निरूपणं क्रियते-

भारतीवृत्तिः – दशरूपके विनिगदितम्-
भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।[23]

इयं भारती वृत्तिर्नटप्रयुक्तः संस्कृतमयो वाचिकव्यापारः। साहित्यदर्पणेऽपि प्रत्यपादि-
भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः।[24]

दशरूपके 'नटाश्रयः', साहित्यदर्पणे 'नराश्रयः', नाट्यशास्त्रे च 'पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता' इति प्रतिपादनेन स्त्रियो नैवेमां वृत्तिं प्रयुञ्जत इति स्पष्टम्। भारती वृत्तिः परिभाषिता नाट्यशास्त्रे-

[21] नाट्यशास्त्रम्-20.2-15
[22] नाट्यशास्त्रम्- 20.20-24
[23] दशरूपकम्- 3. 5
[24] साहित्यदर्पणः, 6. 29

या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता संस्कृतपाठ्ययुक्ता।[25]
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयोज्या सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः।।

एवं नाट्यशास्त्रानुसारेण विलापादौ शब्दप्रयोगतया वाक्प्रधाने करुणे विस्मयप्रतिक्रियाप्रतिपादकतया अद्भुते रसे च सविशेषं भारतीवृत्तिप्रयोगः। वस्तुतस्त्वियं सर्वरसमयी वृत्तिः। वृत्तिरियं पुरुषपात्रसाध्या। स्त्रीपात्राणीह वर्जितानि। अस्यां संस्कृतभाषाया बाहुल्यात् संस्कृतसंवादप्राधान्यम्। अस्या नामकरणं भरतैः स्वनामानुरूपं भारतीति विहितम्।

भारतीवृत्तेरस्याश्चत्वारः प्रकाराः- प्ररोचना, आमुखम्, वीथी, प्रहसनञ्चेति। तदुक्तम्-

भेदास्तस्यास्तु विज्ञेयाश्चत्वारोऽङ्गत्वमागताः।[26]
प्ररोचनामुखञ्चैव वीथी प्रहसनं तथा।।

विषयप्रशंसया दर्शकानामौत्सुक्यवर्धनं प्ररोचना। वार्तालापेन मुख्यनाट्यवस्तुनः प्रस्तुतेरुपक्रम आमुखम्। एतदेव प्रस्तावनेत्युच्यते। वीथी प्रहसनञ्चेति रूपकभेदौ।[27] आचार्यैर्भारतीवृत्तिसम्बन्ध एताभ्यां नैव स्पष्टीकृतः। अनुमीयते यत् प्राचीनकाले वीथी प्रहसनञ्च प्रस्तावनाया अङ्गे समभूताम्। हास्यरसप्रसंगेन शृंगारप्रधानेन संवादेन च नटा दर्शकमनोरञ्जनं समपादयन्। तेन च नाट्यं प्रति दर्शकानामुन्मुखीकरणमक्रियत। पश्चाद् वीथी प्रहसनञ्च स्वतन्त्ररूपकत्वेन आविरभूताम्।[28] यद्वा भवतु भारतीवृत्तिसम्बन्धो नाट्यव्यापारेण सह नास्ति, प्रत्युत वाचिकाभिनयेन सह वर्तते। प्रस्तावनायामेव वचोविन्यासस्याधिक्यं नाट्यव्यापारश्च शून्य इव परिलक्ष्यते।[29]

सात्त्वतीवृत्तिः - नायकस्य शोकशून्यो व्यापारः 'सात्त्वती' वृत्तिः, यस्यां सत्त्वोत्साहशौर्यत्यागदयाहर्षार्जवादिभावानां समुदयः स्यात्।

दशरूपककारेण धनञ्जयेनोक्तम्-

विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।[30]

कविराजेन विश्वनाथेन सात्त्वती वृत्तिरेवं पर्यभाषि-

सात्त्वतीबहुला सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।[31]
सहर्षा क्षुद्रशृङ्गारा विशोका साद्भुता तथा।।

सत्त्वशालिभिः पुरुषैरस्याः प्रयोगादियं सात्त्वती वृत्तिरित्युच्यते। अत्र सत्त्वगुणस्य प्राधान्यम्, न्यायवृत्तनिबन्धनं हर्षसन्निवेशश्च बोभूयते। अस्यां शोकस्य सर्वथा अभावः। इयं वीराद्भुतरौद्ररसेषु प्राचुर्येण प्रयुज्यते। करुणशृंगारयोरपीयं वृत्तिः स्वल्पतया प्रयुज्यते। अस्यां बलशालिनां वीरपुरुषाणां वीरभावात्मकचेष्टा व्यज्यन्ते। तदुक्तम्-

या सात्त्वतेनेह गुणेन युक्ता न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।[32]
हर्षोत्कटा संहृतशोकभावा सा सात्त्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः।।
वागङ्गाभिनयवती सत्त्वोत्थानवचनप्रकरणेषु।
सत्त्वाधिकारयुक्ता विज्ञेया सात्त्वती वृत्तिः।।
वीराद्भुतरौद्ररसा विज्ञेया ह्यल्पकरुणशृङ्गारा।
उद्धतपुरुषप्राया परस्पराधर्षणकृता च।।

अस्या अपि सात्त्वतीवृत्तेश्चत्वार्यङ्गानि- उत्थापकः, परिवर्तकः, संलापकः, संघातकश्चेति। तदुक्तम्-

---

[25] नाट्यशास्त्रम्- 20. 25
[26] नाट्यशास्त्रम्- 20. 26
[27] नाट्यशास्त्रम्- 20. 27-35
[28] भारतीय नाट्यसिद्धान्त उद्भव और विकास- पृ.-128,
[29] संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.449
[30] दशरूपकम्- 2/53
[31] साहित्यदर्पणः- 6/128
[32] नाट्यशास्त्रम्- 20.37-39

उत्थापकश्च परिवर्तकश्च संलापकः ससंघातः।[33]
चत्वारोऽस्या भेदा विज्ञेया नाट्यतत्त्वज्ञैः।।

युद्धादिकर्मण आह्वानमुत्थापकः। प्रारब्धकार्यं विहायान्यकार्यसम्पादनं परिवर्तकः। अनेकभावरसपूर्णं गभीरवचनं संलापकः। शत्रुसंघस्य बुद्धिबलेन भेदनं संघातकः।[34] डॉ.उमाशङ्करशर्मर्षिवर्यैः प्रत्यपादि यत्- शत्रुभेदनस्य साधनत्रयम्- मन्त्रशक्तिः- यथा मुद्राराक्षसे चाणक्येन राक्षससहयकानां भेदनम्। अर्थशक्तिः- मुद्राराक्षस एव पर्वतकस्याभूषणानि राक्षसपार्श्वे प्रापय्य तस्य मलयकेतुना भेदनम्। अपि च दैवशक्तिः- यथा रामायणे रावणात् विभीषणस्य भेदनम्। एतेषामङ्गानामुदाहरणानि धनिकेन महावीरचरितात् मुद्राराक्षसाच्च प्रस्तुतानि।[35]

कैशिकीवृत्तिः- कैशिकीवृत्तेः केशैः सह सम्बन्धः। आचार्यभरतमते वृत्तिरियं सुष्ठुनेपथ्यविधानविचित्रा सुवेशभूषाविभूषितस्त्रीसंवलिता नृत्यगानबहुला कामोपभोगोपचार-परिपूर्णा च भवति। कैशिक्या अङ्गेषु हास्यप्रयोगो वैकल्पिकः। इयं वृत्तिः शृङ्गारे हास्ये च प्रयुज्यते। तदुक्तम्-

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता।[36]
कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कैशिकीं वृत्तिमुदाहरन्ति।।

गीतनृत्यविलासादिशृङ्गारमयचेष्टाभिः कोमलभावोत्पादको नाट्यव्यापारः कैशिकीवृत्तिः। कामरूपस्य पुरुषार्थस्योद्भावनमेतदुद्देश्यम्। शृङ्गाररसपरिवेशोऽस्मिन् समुजृम्भते। वृत्तावस्यां स्त्रीपुंसोरुभयोर्व्यापारः प्रकटीभवति। साहित्यदर्पणकारेण विश्वनाथेन भरतमुनेर्नाट्यशास्त्रमेवानुकुरुता तल्लक्षणमेवेषत्परिवर्तनेन प्रस्तुतम्। यथा-

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंकुला पुष्कलनृत्तगीता।[37]
कामोपभोगप्रभवोपचारा सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता।।

अस्याश्चत्वारः प्रकाराः – नर्म, नर्मस्फुर्जः, नर्मस्फोटः, नर्मगर्भश्चेति।

नर्म च नर्मस्फुर्जो नर्मस्फोटोऽथ नर्मगर्भश्च।[38]
कैशिक्याश्चत्वारो भेदा ह्येते समाख्याताः।।

प्रियजनचित्तप्रसादनः सविलासो व्यापारः नर्म। नर्मापि त्रिधा- हास्ययुक्तम्, शृङ्गारयुक्तम्, भययुक्तञ्च। अन्त्ययोर्द्वयोः क्रमशस्त्रयो द्वौ च भेदाः। एवं षड्विधानि नर्माणि। एतेषामपि षण्णाम् पुनस्त्रयस्त्रयो भेदाः- वाणीप्रकाश्यम्, वेशप्रकाश्यम्, चेष्टाप्रकाश्यञ्चेति। नायकनायिकयोः प्रथमसमागमे आनन्दानन्तरं भयोत्पत्तिः नर्मस्फुर्जो नर्मस्फुञ्जो वा। स्वल्पप्रकाशितभावेभ्यः शृङ्गाररससूचनं नर्मस्फोटः। स्वप्रयोजनेन नायकस्य प्रच्छन्नो व्यापारो नर्मगर्भः।[39]

आरभटीवृत्तिः- आरभट-शब्देनोद्भूततयेयमारभटीत्युच्यते। आरभटशब्दस्यार्थः साहसी, उद्धतपुरुषो वेति। मायामयेन्द्रजालवर्णनपतनकूर्दन-लङ्घनादियोजनाभिः सह वृत्तेरस्याः सम्बन्धो दृश्यते। अस्यां वृत्तावुद्धतपुरुषाणां सम्भाषणम्, दम्भः, कपटप्रपञ्चनमसत्यव्यवहाराश्च प्रतिपाद्यन्ते। अस्याः प्रयोगो बीभत्सभयानकरौद्ररसेषु क्रियते। वृत्तिरियं रौद्रबीभत्सयोः रसयोरनुकूला। तथोक्तम्-

आरभटप्रायगुणा तथैव बहुकपटवञ्चनोपेता।[40]

दम्भानृतवचनवती त्वारभटी नाम विज्ञेया।।

---

[33] नाट्यशास्त्रम्- 20. 40
[34] नाट्यशास्त्रम्- 20.41-44
[35] संस्कृतसाहित्य का इतिहास-पृ. 450
[36] नाट्यशास्त्रम्- 20.46
[37] साहित्यदर्पणः 6.124
[38] नाट्यशास्त्रम्- 20.47
[39] नाट्यशास्त्रम्- 20.48-53
[40] नाट्यशास्त्रम्- 20.55-56

प्रस्तावपातप्लुतलङ्घितानि चान्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्।
चित्राणि युक्तानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति।।

धनञ्जयेनापि भरतमुनिरेवानुकृतः-

..आरभटी पुनः।[41]
मायेन्द्रजालसङ्ग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।।

अवास्तवपदार्थस्य मन्त्रबलेन प्रकाशनं मायेत्युच्यते। इन्द्रजाल एतत्कार्यं तन्त्रबलेन विधीयते।[42]

अस्यां वृत्तौ मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्ताश्चेष्टा वधबन्धनादय उद्धतव्यापाराः सन्निविष्टाः। प्रायश एतादृशैरेव शब्दैर्विश्वनाथेनापि वृत्तिरियं लक्षिता-

मायेन्द्रजालसङ्ग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।[43]
संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता।।

अस्या अपि चत्वारो भेदाः – संक्षिप्तकः, अवपातः, वस्तूत्थापनम्, सम्फेटश्चेति।

संक्षिप्तकावपातौ वस्तूत्थापनमथापि संफेटः।[44]
एते ह्यस्या भेदा लक्षणमेषां प्रवक्ष्यामि।।

शिल्पेन सूक्ष्मवस्तुसंरचना नायकस्य परिवर्तनं वा संक्षिप्तकः। कस्यचिद् भयङ्करवस्तुनः प्रवेशादिना पात्राणां भयात् पलायनम् अवपातः। मन्त्रबलेन कस्यचिद् वस्तुनः प्रकटनम् वस्तूत्थापनम्। कुपितपात्राणां कलहः सम्फेटः।[45] यथा- लक्ष्मणमेघनादयोः माघवाघोरघंटयोः कलहः।

रसवृत्तिसम्बन्धः - दशरूपककारेण रसेषु वृत्तिव्यवस्था निरूपिता। तदनुसारेण शृङ्गारे तदाश्रिते हास्ये च कैशिकी, वीरे तदाश्रितेऽद्भुते च सात्त्वती, रौद्रे तदाश्रिते करुणे, किञ्च बीभत्से तदाश्रिते भयानके चारभटी वृत्तयः प्रयुज्यन्ते। शब्दवृत्तितया भारती वृत्तिः सर्वेषु रसेषु प्रयुज्यते। तदुक्तं दशरूपके-

शृङ्गारे कैशिकी वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।[46]
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती।।

अत्र कारिकायां दशरूपककारेण चत्वार एव प्रमुखा रसा उल्लिखिताः, किन्तु शृङ्गाराद् हास्यः, वीरादद्भुतः, रौद्रात् करुणः, बीभत्साद् भयानक इति रसास्तत्तत्प्रकरणे प्रादुरभवन्निति तत्तद्रसानां मिथो घनिष्ठः सम्बन्धः।

वृत्तीनां रसविनियोजनाप्रसङ्गे नाट्यशास्त्रकारस्य भरतमुनेर्मतं किञ्चिद् भिद्यते। तदनुसारेण शृंगारे हास्ये च कैशिकी वृत्तिः, वीरे रौद्रे अद्भुते च सात्त्वती, भयानके बीभत्से रौद्रे चारभटी, करुणाद्भुतयोर्भारती वृत्तिश्च प्रयुज्यन्ते। तथोक्तम्-

शृंङ्गारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्यात् कैशिकीति सा।[47]
सात्त्वती नाम सा ज्ञेया वीररौद्राद्भुताश्रया।।
भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्।

[41] दशरूपकम्-2/56
[42] दशरूपावलोकः- 2/56
[43] साहित्यदर्पणः-6/132
[44] नाट्यशास्त्रम्- 20.57
[45] नाट्यशास्त्रम्- 20.57-60
[46] दशरूपकम्-2/62
[47] नाट्यशास्त्रम्- 20.62-63

भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुतसंश्रया।।

वस्तुतः शृङ्गाररस एव कैशिकीवृत्तिप्रयोगः सर्वोत्तमः। सात्त्वती वृत्तिश्च वीराद्भुतरौद्रेषु सुष्ठु प्रयुज्यतेंऽशतश्च करुणशृङ्गारयोः। आरभटी वृत्ती रौद्रभयानकयोः सर्वाधिकमुपयुज्यते। भारती वृत्तिः सर्वेषु रसेषु प्रयुज्यते। अथवा मुनिमतेन वीराद्भुतरौद्ररसेष्वेव भारतीवृत्तिप्रयोगः सर्वाङ्गसुन्दरः।

उपसंहारः- एवं नाट्यशास्त्रे वृत्तयो वागङ्गसत्त्वप्रभवाः वाग्वपुर्विविधाङ्ग-सत्त्वनिर्भराभिनयसम्बद्धा वा। वृत्तिविस्तरोऽनन्तः, वृत्तीनां नाट्येऽभिनयसम्बन्धात् शारीरमानसव्यापारसम्बन्धाच्च।

'वृतु वर्त्तने' इत्यस्माद्धातोः संज्ञायां क्तिनि वृत्तिशब्दो निष्पद्यते। अतो वर्तनं जीविका व्याख्या व्यवहारो वा वृत्ति-शब्दार्थः। तेन वृत्तिशब्दात् कायिकवाचिकमानसादिसर्वविधचेष्टितानि अभिधादयो वृत्तयो नाट्यशास्त्रीयभारतीप्रभृतयश्चतस्रो वृत्तयश्च गृह्यन्ते। ध्वनिकारेण वर्णसंघटना रीतयश्चाऽपि वैदर्भीप्रभृतयो वृत्तिशब्देनोपात्ताः।

किन्तु प्रकृते वृत्तिशब्दो नाट्यशास्त्रीयसात्त्वतीप्रभृतिवृत्त्यर्थः। वृत्तयश्चतुर्धा- भारती, सात्त्वती, कैशिकी, आरभटी चेति।

'वर्त्तते रसोऽनयेति वृत्ति' रिति व्युत्पत्त्या रससत्ता यस्याः सत्त्वाद् भवति सा वृत्तिरिति तदर्थः। रूपकेषु नायकनायिकाचेष्टा रसोद्भवहेतुतया वृत्तिसंज्ञयाऽभिधीयन्ते। आस्वादोद्भवकारणतया वृत्तयो नाट्यमातरो निगदिताः। वृत्तयो न केवलमाङ्गिकाभिनयसाधनानि प्रत्युत मनोवागिन्द्रियव्यापारा अपि। मधुकैटभवधप्रसंगे भगवता विष्णुना याश्चेष्टाः प्रदर्शितास्ताभ्य एव नाट्यवृत्त्युद्भवः।

रूपकेषु वृत्तयो विविधान् भावान् रसांश्च जनयन्ति। आचार्येण भरतेण वेदेभ्योऽपि वृत्तिसमुद्भवः कल्पितः। भारती वृत्तिः शब्दप्रधाना, तस्या उद्भव ऋग्वेदात् स्वीकृतः। सात्त्वती वृत्तिः शौर्यदयाद्यभिनयसम्बद्धा, तस्या उत्पत्तिर्यजुर्वेदादुक्ता। कैशिकी नृत्यगीतप्रधाना कोमलवृत्तिः। तस्याः प्रभवः सामवेदात् समजायत। आरभटी वधयुद्धेन्द्रजालादिप्रधाना। तस्या अथर्ववेदादाविर्भावः प्रत्यपादि।

रसेषु वृत्तिविनियोगमुपदिशता मुनिना निर्दिष्टं यत् शृङ्गारे हास्ये च कैशिकी, वीररौद्राद्भुतेषु सात्त्वती, भयानकबीभत्सरौद्रेषु चारभटी, करुणाद्भुतयोर्भारती च वृत्तयो विनियोक्तव्याः। दशरूपकसाहित्यदर्पणादिग्रन्थेषु वृत्तिविवेचनं नाट्यशास्त्रमेवानुसरतीति विस्तरभयादत्रैव संक्षेपेण विरम्यत इति शम्।

सन्दर्भग्रन्थाः –

1. नाट्यशास्त्रम् ,राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नईदिल्ली, 2000ई.
2. दशरूपकम्,चौ.सं.सी.आ.,वाराणसी, 1968
3. साहित्यदर्पणः, डॉ.सत्यव्रतसिह,चौ.वि.भ., वाराणसी,1979
4. ध्वन्यालोकः, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी, 2006ई.
5. काव्यप्रकाशः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी,1981 ई.
6. भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ.राजवंश सहाय हीरा, चौ.वि.भ., वाराणसी, 2000ई.
7. भारतीय नाट्यसिद्धान्त उद्भव और विकास, डॉ. रामजी पाण्डेय विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना - 4, 1982 ई.
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ.उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2012 ई.
9. [1] अमरकोशः १/७/३०
10. [1] शब्दरत्नाकरः १८९०
11. [1] हलायुधः ३८६
12. [1] मोदिनीइकोशः २६/३४
13. [1] अभिनवभारती, प्रथमोभागाः पृ. २०९
14. [1] नाट्यशास्त्रम् १/१५
15. [1] नाट्यशास्त्रम् ६/१०
16. [1] महाभाष्यम्
17. [1] तत्रैव.
18. [1] मेघदूतम् ४
19. [1] कुमारसम्भवम् ३/३४
20. [1] नाट्यशास्त्रम् १४

21. [1] तत्रैव १४/१६
22. [1]तत्रैव
23. [1] तत्रैव गद्यभागः
24. [1] तत्रैव का. सं. पृ.१६५
25. [1] नाट्यशास्त्रस्येतिहासः ३४० पृष्ठे
26. [1] नाट्यशास्त्रवि. को. १०५८ पृष्ठे
27. [1] तत्रैव
28. [1] भोजकृतः शृङ्गारप्रकाशः पृ. २०५
29. [1] दशरूपकं ६३
30. [1] दशरूपकम् सं. अमरनाथपाण्डेय पृ.६६
31. [1] नाट्यशास्त्रं सं. बाबूलालशुक्ल, पृ. १८८
32. [1] तत्रैव.
33. [1] तत्रैव. ३८
34. [1] दशरूपकं, सं. अमरनाथपाण्डेयः, पृ. ७८
35. [1] नाट्यशास्त्रम् १४/४१
36. [1] दशरूपकम्, सं. अमरनाथपाण्डेयः, पृ. ७८
37. [1] नाट्यशास्त्रम् १६/४३-४६
38. [1] काव्यमीमांसा. तृतीयेऽध्याये
39. [1] ना. शा. १४/४६-४९
40. [1] दशरूपकं, सं. अमरनाथपाण्डेयः पृ. ७८
41. [1] नाट्यशास्त्रम् १४/५४
42. [1] काव्यमीमांसा, पटनासंस्करणम् पृ. २१
43. [1] तत्रैव पृ. २२
44. १.नाट्यशास्त्रम्.२३.२१९
45. २. तत्रैव २३.२२३
46. ३. तत्रैव ८.६
47. ४. तत्रैव २१.३
48. ५. तत्रैव /अ.भा.२३.२
49. ६.चतुर्विधं तु नेपथ्यं पुस्तोऽलङ्कार एव च।
50. तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सञ्जीव एव च॥ / तत्रैव २३.४
51. ७.शैलयानविमानानि चर्मवर्मध्वजा नगाः।
52. यानि क्रियन्ते नाट्ये हि स पुस्त इति सञ्ज्ञितः ॥/ तत्रैव २३.८
53. ८.अलङ्कारस्तु विज्ञेयो माल्याभरणवाससाम्।
54. नानाविधसमायोगोऽङ्गोपाङ्गविनिर्मितः ॥/ तत्रैव २३.९
55. ९.सितो नीलश्च पीतश्च चतुर्थो रक्त एव च।
56. एते स्वभावजा वर्णा यैः कार्यं त्वङ्गवर्तनम्॥ / तत्रैव २३.७३
57. १०. तत्रैव २३.७४-८०
58. ११. तत्रैव २३.१३५
59. १२.शुद्धो विचित्रो मलिनस्त्रिविधो वेष उच्यते।/ तत्रैव २३.११७
60. १३. तत्रैव २३.११८

******

साम्प्रतिकाभिनेयकाव्ये निषिद्धदृश्यं तत्प्रभावश्च

डा. स्वर्गकुमारमिश्रः,
सं.अध्यापकः, साहित्यविभागः
रा.सं.सं.,मुम्बई

अभिनेतुं योग्यमभिनेयं नाम दृश्यकाव्यम्। तदेतत्काव्यं प्रियदर्शनयोग्यत्वात् मधुरश्रवणीयत्वात् निर्भररसदानयोग्यत्वाच्च रमणीयतरं 'काव्येषु नाटकं रम्य'मितिसहृदयाः वदन्ति। आङ्गिकवाचिकसात्त्विकाहार्यसम्वलिताभिनयविनोदेन मनोज्ञवातावरणनिर्माणद्वारा सामाजिकेषु लोकोत्तरचमत्कारानुभवनयोग्यतानुसन्धानं श्रुतिस्मृतिसदाचारसहितं रामादिवद्वर्त्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशप्रदानं च अभिनेयस्य काव्यस्य प्रयोजनमिति स्वयं भरतेन सुप्रतिपादितम्।

उक्तञ्च-

"श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम्।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति॥" (१)

किञ्च –

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति॥" (२)

अत्र नटानामभिनयः, प्रयुक्ताः शिल्पविधयः, सङ्गीतस्य माधुर्यञ्चैतत्सर्वं काव्यस्य कमनीयतां कामं वर्धयति, सामाजिकान् अनायासेन स्वाभिमुखान् विदधाति, अबोधपूर्वमपि भावं लीलया चावबोधयति। किं बहुना, **"अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि"** (३) इति आबालवृद्धवनिताः अभिनये काव्ये भावुकत्वं व्रजन्तीति कृत्वा **"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधन"**मिति कालिदासोक्तिः परां प्रसिद्धिमधिगच्छति। अतः अभिनेयकाव्यानां सार्वजनीनत्वं सुव्यक्तमेव।

भारतीयसंस्कृताभिनेयकाव्यपरम्परा यथा प्राचीना तथा सुदूरव्याप्ता। भासस्य भावाभिव्यञ्जकता अभिज्ञानशाकुन्तलस्य रसपेशलता शूद्रकस्य रचनात्मकता च विश्वसाहित्ये विद्वद्भिरभिनन्दिता राजते। संस्कृताभिनेये काव्ये कलापक्षः शब्दार्थगौरवप्रबुद्धः पद्यबहुलः नृत्यसंगीतप्रवणः विविधशिल्पकलायुक्तः अतिललितः तथा च भावपक्षः समुचितरसैः अभिषिक्तः दृश्यते। अखिलानि शास्त्राणि अत्र विलसितानि भवन्ति। समस्तलोकव्यवहारविषयोऽत्र प्रदर्श्यते। सर्वाः कलाः सर्वाश्च रीतयोऽत्र प्रवर्त्तन्ते। एतन्नाट्यस्वरूपं -

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥" (४) इत्यादिना शिल्पविज्ञानमयत्वं भरतमुनिना शास्त्रे सूत्रितम्। अतः अभिनेयकाव्यं स्वभावभङ्ग्या आस्वाद्यमयं जनरञ्जकञ्च भवति। सहृदयाः स्वभावनावशात् सुखेन रसमास्वादयन्तीति कृत्वा सङ्गीतदामोदरे उक्तम्-

"यो यस्य दयितो भावः स तं नाट्ये निरीक्ष्यते।
अतः सर्वमनोहारि नाट्यं कस्य न रञ्जकम्।" इति

यद्यपि संस्कृतसाहित्ये तथा गौरवमयी अभिनेयकाव्यपरम्पराद्यापि सुरक्षिता तथापि विज्ञानसमृद्धे अत्याधुनिके संगणके युगे प्रदर्शनप्रकारोऽत्र भिन्नः। नाट्यमञ्चनव्यवस्था भारतवर्षे सम्प्रति हीयमाना दृश्यते। यत्र कुत्रापि कदाचित् नाटकानां मञ्चनं भवति तदद्य बहुभिरुपेक्षितं तिष्ठति। चलच्चित्राणां बाहुल्यमत्र मुख्यकारणम्। अतः अभिनेयं काव्यमिदानीं चलच्चित्रमाध्यमेन प्रयोज्यते। नटानामभिनयसंलापादिकं वैज्ञानिकपद्धत्या यन्त्रेण संगृह्य पटे समारोप्य प्रेक्षागृहेषु दूरदर्शनद्वारा वा गृहे गृहे प्रदर्श्यते। चलच्चित्राभिनेयमस्मिन् जगति जनान् कामं रञ्जयतीति दृश्यते। परिवेषणकौशलवैशिष्ट्यात् एतदेव चलच्चित्राभिनेयं लोके उत्तमोत्तमकाव्यरूपेण स्वीकृतं अनुदिनं स्वप्रभावं विस्तारयत् भारतीयनाट्यपरम्परां पूर्णरूपेण कवलीकृत्य विभ्राजते।

प्राचीनकाले अभिनेयकाव्यानां मञ्चनं सांसारिककर्मक्लान्तलोकविनोदाय भवति स्म। नाट्यशास्त्रे-

"दुःखार्त्तानां श्रमार्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति ॥" [५] इत्यादिना एतदेव स्वीकृतं मुनिना।

सांसारिककर्मताडनाजर्जरितमानवः स्वात्मविनोदाय चलच्चित्ररूपं दृश्यश्रव्यमयमिदमभिनेयमद्याप्याश्रयते । सुखेन स्वमन्दिरगतः कोऽपि अद्यत्वे दूरदर्शनयन्त्रे चलच्चित्राभिनयं स्वीकृत्य कृत्यकृत्यो भवति । शिल्पकलासमृद्धत्वात् जीवन्तरूपेण सकलभावानां द्योतकत्वाच्च मानवजातिः तदेव चलच्चित्राभिनेयं काव्योत्तममिति विज्ञाय तदनुसारं स्वात्मानं प्रभावयति । तत्प्रतिपादितप्रवृत्तिनिवृत्त्यादिकं स्वजीवने प्रतिफलितं करोतीति सार्वजनीनव्यवहारादनुमीयते । अतः चलच्चित्राभिनेयमेव नाट्यस्यात्याधुनिकस्वरूपमिति वक्तुं शक्यते।

भारतवर्षे संस्कृतभाषया चलच्चित्रनिर्माणं कृच्छ्रेण भवति । पाश्चात्यदेशे अष्टादशशतकस्यान्तिमे भागे चलच्चित्रविज्ञानं विकसितमभवत् । लुमिरिभ्रातृभिः उनविंशशतकस्यान्तिमे चरणे एतद्विज्ञानं भारतवर्षमानीतम् । तदारभ्य भारते चलच्चित्राणां निर्माणपरम्परायां प्रचलितायामपि आदिशङ्कराचार्यादीनि द्वित्राणि संस्कृतभाषानिबद्धानि शास्त्रीयचलच्चित्राणि विनिर्मितानि दृश्यन्ते। १९८३तमे ईस्वीयवर्षे **आदिशङ्कराचार्यः**, १९९३तमे वर्षे **भगवद्गीता**, २०१५ वर्षे **प्रियमानसम्** चैतानि एव चलच्चित्राणि प्रायोजितानि सन्ति । एतेषां लोकप्रभावः न कुत्रापि दृश्यते । का कथा लोकस्य शास्त्रीयसाहित्यतत्त्ववेत्तारोऽपि एतेषां संस्कृतचलच्चित्राणां विषये पूर्णतया न जानन्ति । किन्तु प्रायतः आञ्चलिकभाषासु विशिष्य हिन्दीभाषायां बहुलभावेन निर्मितानि चलच्चित्राणि भारतीयं जनमानसमुद्वेलयन्तीति परिलक्ष्यते । अतः भारतीयाभिनेयकाव्यपरम्परायाः साम्प्रतिकः कालः हिन्दीचलचित्राभिनेयं काव्यमिति व्यवहारतः सिद्ध्यति। किन्तु अस्त्यत्र महान् विशेषः।

लोकनाट्यधर्मत्वेन अभिनेयं सदुपदेशविनोदेन चतुर्वर्गदमिति प्राचीनैर्बहुशो निगद्यते ।

"नाट्यं चतुर्वर्गदम्" । चलच्चित्राभिनेयं काव्यं कियता अंशेन तत्प्रमाणयतीति सहृदयैस्तद् गवेषणीयं वर्त्तते । विशेषतः मर्यादासम्पन्ने भारतीयसमाजे तथैव परिव्याप्तानामभिनेयकाव्यानां स्वरूपस्वभावादिकं पुनः प्रेक्षणीयं वर्त्तते। लोकधर्म-नाट्यधर्मातिरिक्तं साम्प्रतिके भारतवर्षे चलच्चित्राभिनयं तु युवधर्म-आतङ्कधर्म-व्यवसायधर्मापेक्षित्वं परिदृश्यते । अतः अभिनेयकाव्यानां कदाचित् शास्त्रीयत्वमप्युपेक्षितं जायते संस्कृतिश्च भूलुण्ठिता भवति।

संस्करणं संस्कृतिः। संस्करणं नाम परिष्करणम्। समाजे यत्किमपि परिष्कृतमाचारव्यवहारादिकं तत् संस्कृतिशब्देनोच्यते। संस्कृतिः सभ्यतायाः प्राणभूता काचिज्जीवनीशक्तिर्यद्विना सा जीवितापि मृता प्रतीयते। भारतीया संस्कृतिरियं वेदमूला। अस्याः भाषा संस्कृता, भूषणं मार्जितम् , भोजनं सात्त्विकम्, वर्त्तनं रामादिवच्चास्ति । तपोदानपुण्यार्जनञ्चास्याः स्वरूपं प्रकाशयन्ति। पूजापाठादिकमत्र नित्यकर्मसंज्ञां लभते। पर्वाणि तदाधारेण कर्त्तव्यरूपेण एव पाल्यन्ते। अत्र समाजे माता मान्या भवति, पिता स्वर्ग इव महान् भवति। ज्येष्ठाः सम्माननीयाः कनिष्ठाश्च स्नेहपालनीयाः भवन्ति। नारी अत्र देवीरूपेण पूज्यते। उक्तञ्च मनुना-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" [६] इति

भारतीयाभिनयपरम्परा अस्याः मर्यादासम्पन्नायाः भारतीयसभ्यतायाः पावनसंस्कृतेः परिचायिका अस्ति । रसपरिपाकव्यवस्थात्र शृङ्खलिता वर्त्तते। अत्र शृङ्गारादौ समुज्ज्वलमधुरत्वादिकं प्रदर्श्यते। पात्रविशेषप्रतिपादने औचित्यं सुचिन्त्यते। दृश्यविशेषाणां साधुत्वं असाधुत्वान्निषिद्धत्वमपि चोद्घोष्यते । किन्तु एषा परम्परा नास्ति साम्प्रतिकचलच्चित्राभिनेयानाम्। अतः भरतवंशोद्भवानामस्मन्नागरिकाणां सामाजिकानां गतिः कीदृशी इति साम्प्रतिके काले चिन्ताविषयो जातोऽस्ति।

भारतीयाभिनेयसाहित्ये "रामादिवद्वर्त्तितव्यं न रावणादिवदिति" प्रवृत्तिनिवृत्तिद्योतकं समुचितप्रदर्शनमपेक्षते । किन्तु प्रचलितचलच्चित्राभिनेये काव्ये निषिद्धमपि दृश्यं महता संरम्भेण प्रदर्शितं भवति। शास्त्रे उक्तमस्ति-

"दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यू रतं तथा ॥
दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद्व्रीडाकरं च यत्।
शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनं ॥
स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः ॥" [७] इति

एवमेव च दशरूपके-

"दूराह्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् ॥
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥" [८] इति

साम्प्रतिकचलच्चित्राभिनेयकाव्येषु निषिद्धानामेतेषां दृश्याणां प्रायः प्रदर्शनं लक्ष्यते । अत्र वधबन्धादिकं अविकलरूपेण प्राकाश्यं नीयते। खड्गादिना शिरःकर्त्तनम्, छुरिकाद्वारा गलकर्त्तनम्, दण्डैः प्रहृत्य व्यापादनम्, रज्वा हस्तेन वा गलबन्धनेन मारणम्, भुशुण्डीचालनेन ,विद्युताघातदानेन, विषदानेन , हिंस्रमुखे पातनेन , दुरारोग्यव्याधिसंक्रामितत्वेन वा इत्यादिना बहुविधेन उपायेन वधः सुदृश्यपटोपरि निश्शङ्कं प्रदर्श्यते । तेन आबालवृद्धवनिताः साम्प्रतिके काले सुप्रभाविताः भवन्ति । एतैश्च दृश्यैः वशीभूताः शिशुभावापन्नाः पशुत्वमापन्नाश्च जनाः तथा एव मारणे प्रवृत्ताः दृश्यन्ते। अद्यत्वे भारतवर्षे हत्या सार्वजनीनरूपेण क्रियते। हत्याकारीणां वयोऽपि पञ्चदशतः विंशतिर्मध्ये विचारयन्ति विधिज्ञाः। प्रायः चलच्चित्रकौशलमवलम्ब्य लुण्ठनहत्यादिकं विधीयते। नातिचिरेण पाकिस्थानादागतेन आतङ्कवादिना कसवाभिधेनाधमेन अस्मद्देशे तथा च ISIS इत्याख्यस्य कुख्यातस्य आतङ्कवादिसंगठनस्य पञ्चदशवर्षीयेण किशोरकेण प्यारिस् इति देशे आतङ्कः प्रपञ्चितः। एवञ्चास्मद्देशीयाः केचन अप्राप्तवयाः किशोरकाः अपि हिंस्राः प्रमाणिताः कारावासे दिनानि क्षपयन्ति। तत्र चलच्चित्राणामेतेषां प्रभावः अवश्यमेव चिन्त्यः।

किञ्च व्रीडाकराणां स्नानशौचादीनां दृश्यमपि प्रदर्शनस्य विषयरूपेण स्वीकृतं वर्त्तते। नारीनिभृताङ्गानां सहजप्रदर्शनमत्र क्रियते। नारीशरीरे गोपनीयाङ्गानां स्पष्टतया यथा प्रदर्शनं स्यात् येन च किशोरप्राणेषु कामोद्वेलनं भवेत्तथैव वस्त्रनिरूपणमत्र भवति। भावभङ्गीमा तथा एव क्रियते । ग्राम्यविधिना स्ववासनाप्रकाशः , निर्वस्त्रशरीरे दन्तनखक्षताधरपानसहितः निभृतसुरतसम्भोगः,अपहरणधर्षणादिकं सर्वमेतदिदानीं पटे प्रदर्शानार्हत्वं स्वीकृत्य जनान् संस्कृतिहीनान् करोतीति निर्विवादं वक्तुं शक्यते । अस्य कुप्रभावः सम्प्रति ग्रामे नगरे गृहे वा अनुभूयते। युवबन्धवः काममोहिताः किमपि कुकार्यं कर्त्तुं प्रवर्त्तन्ते। आधुनिके काले अप्राप्तवयोभिः किशोरकैरप्यपहरणधर्षणरूपं कुकर्म क्रियते। देहल्यां निर्भयाबलात्कारघटना को न जानाति।

किञ्च निषिद्धदृश्याणामवारितप्रदर्शनेन चलच्चित्राभिनेयकाव्यानि पर्याप्तं सभ्यतां विडम्बयन्ति दृश्यन्ते। अत्र कन्या पितुः पुरस्तात् "Father , I am in love" इति सगर्वं वक्तुं शक्यते। नायकः सर्वसम्मक्षं "क्या में आपको चुमा दे सकता हुं" इति नायिकां प्रष्टुमर्हति। नायिकां प्रति प्रतिनायकस्य निषिद्धाश्लीलभाषायाः प्रयोगे न कापि त्रुटिः परिलक्ष्यते। प्रायः एवं वाचिकप्रयोगे औचित्यं नावलोक्यते। तदनौचित्यमस्माकं जीवने अद्य प्रतिफलति। प्रेमप्रसङ्गे रहस्यं तत्र च मधुरता जनैः नानुभूयते।

आङ्गिकप्रदर्शने इदानीं कार्यक्षेत्रेषु विद्यालयमहाविद्यालयविश्वविद्यालयेषु स्त्रीभिस्सह करमर्दनम्, धन्यवादसूचकमालिङ्गनदानम्, कदाचिच्चुम्बनदानम्, हस्तस्कन्धचिवुकादिषु अभि-नन्दनवार्त्तालेखनम्, अर्धालिङ्गनमुद्रया गमनरचनम् सर्वमेतद् परस्परशरीरस्य अबाध्यस्पर्शानुकूलव्यापारप्रदर्शनं साधुप्रयोगरूपेण स्वीकृतम् अस्माकं शनैः शनैः सभ्यतास्वरूपं गृह्णाति, यत्र भारते गुरुपत्न्याः चरणस्पर्शमपि प्रतिबन्धितं मनुना। यदुक्तं तेन-

"गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः।" इति

किं बहुना-

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥" [९] इति

तथा च केनचित्कविना पद्यं लिखितम्-

"स्विद्यति रोमाञ्चति वेपते रथ्यातुलाग्रप्रतिलग्नः।
स पार्श्वोऽद्यापि सुभग तस्या येनास्यतिगः ॥"

ध्वन्यालोके चतुर्थोद्यते पद्यमिदमुदाहरणरूपेण समुपन्यस्तं वर्त्तते। अयमर्थाः - हे सुभग, तस्याः मत्सख्याः, येन पार्श्वेन, रथ्यायां मार्गे, तुलाग्रेण काकतालीयेन अकस्मात्, प्रतिलग्नः त्वं संस्पृष्टः, अतिगः अतिक्रमः कृतः , सख्याः सः पार्श्वः अद्यापि स्विद्यति स्वेदभरितो भवति, रोमाञ्चति पुलकायते वेपते कम्पते च। एवंभूतस्पर्शसुखमद्यापि बहुस्पर्शकारणान्नानुभूयत एव। अतः श्रेष्ठैः

"अनिर्वणनीयं परकलत्र" [१०] मिति अस्यामेव भूमौ प्रतिपादितम्।

वारम्वारं निषिद्धदृश्यदर्शनेन तदेव संस्कारभावमापन्नत्वाच्चित्ते वृत्तिरूपं गृह्णाति। काले गते सा प्रवृत्तिरूपेण परिदृष्टा भवति। अतस्तेषां प्रदर्शनमिदानीं रोद्धव्यमस्ति।

एवं प्रकारकं निषिद्धं दृश्यमात्रं प्रेक्षितुं वशंवदाः उद्भ्रान्ताश्च जनाः चलच्चित्राभिनेये काव्ये प्रवणतां प्रदर्शयन्तीति कृत्वा अभिनेयकाव्यव्यापारिणां महते लाभाय कल्पते । अतः साम्प्रतिके काले एवं प्रदर्शनकुशलानां नटनटीनां संग्रहः तैश्च चलच्चित्राणां निर्माणं व्यवसायकृतवतां प्रयोजकानां सङ्कल्पो वर्त्तते । एतावद्वैदेशिकाधमसंस्कृतेः प्रचारप्रसारसुलभस्य चलच्चित्राभिनेयकाव्यस्य बहुलप्रचलनाय कटीबद्धाश्च केचन दासीपुत्राः वैदेशिकधनलोभेन मीलिताः सन्तः आभारते एवंविधानि निषिद्धकाव्यानि सभ्यसमाजे परिचालयन्तःसमाजममुं च विडम्बयन्तः बहुमानं लभन्ते । भारतीयाः समाजसंस्कारकाः नीरवद्रष्टारूपेण तत्काव्यं दर्शं दर्शं स्वात्मानं धन्यधन्यं कुर्वन्ति । तेषु तेषु चलच्चित्रेषु नायकत्वे मानो न गच्छति । बहुमानं तु नटाय दीयते । नटाः भगवतः अवताररूपाः अस्मज्जनानामादर्शभूताः भवन्ति । तेषां नटनटीनां वेषभाषाभूषादिकं सर्वैः अनुक्रियते, सर्वे मोहमुग्धाः भ्रान्ताश्चैते भारतीयाः भरतपुत्राः नट इवाचरन्तः रा-वन्- वद्वोभूयन्ते । किं बहुना, अप्राप्तवयाः अपि कामोद्दीपके चलच्चित्राभिनेये काव्ये सामाजिकत्वं भजन्ते । अत्र कीदृशं सहृदयत्वम् । किमत्र आनन्दवर्धनदिशा (११) रसज्ञत्वं सहृदयत्वम्, आहोस्वित् कामनाजर्जरितत्वं सहृदयत्वम् । अथवा सहृदयत्वमत्र कोऽपि भ्रम इति विचारयन्तु सहृदयाः ।

इदानीं चलच्चित्रेषु वाचिकप्रयोगे अपि साधुता नापेक्षते । ग्राम्याश्लीलवचसां अवारितप्रयोगेण चलच्चित्राणि अस्मद्देशस्य वाग्व्यवहारं पर्याप्तं कलुषयन्ति । कौतुहलीनः बालाः तांस्तान् कुशब्दान् रटन्तः व्यवहारविकलाः संस्कारहीनाश्च दृश्यन्ते । नाट्यशास्त्रे प्रतिपदं मुनिना संस्कारपूतं प्रयोगविज्ञानं प्रादर्शि । किन्तु तदद्य एभिरभिनेयकाव्यव्यापारिभिरुपेक्षितं जातम् ।

तथाविधानां चलच्चित्राभिनेयानां प्रभावेण भारतवर्षं तदम्लानसंस्कृतिं च विनष्टं विषायितं च कर्तुं केषाञ्चिद्वैदेशिकानामयं संरम्भः । दूरदर्शनयन्त्रे विज्ञापनं यथा श्रीहीनं वाश्लीलं स्यात् यद्वा पारिवारिकधर्मविघटनं भवेत् तदर्थमपि कुचेष्टा इदानीं प्रसार्यते । भारतीयनटैः अश्लीलताप्रसारणं यथा स्यात्तदर्थं प्रचुरं धनमपि दीयते । भारतवर्षे अनुदिनं संस्कृतेः अवक्षयः , व्यवहारे अपवित्रता, वेशविन्यासे असंयमः, भाषाप्रयोगे दारिद्र्य, असहनशीलता , हत्या- बलात्कारसदृशानामपराधानामाकस्मिकरूपेण वृद्धिश्च सर्वमेतत् किमेतानि व्यावसायिकचलच्चित्राभिनेयानि संस्कृतेः अवक्षयस्य कारणानि न भवन्तीति तथाविनिर्मितानां चलच्चित्राणां दानम् । इदानीं विचार्यमेव ।

चलच्चित्राणि न केवलं जनेभ्यः कुशिक्षां प्रददति । तेषु कानिचिच्चलच्चित्राणि दूरदर्शनयन्त्रे धारावाहिकरूपेणप्रदर्शितानि वा चलच्चित्राभिनेयकाव्यानि भारतीयसंस्कृतेः परम्परायाश्च विकासमभिलक्ष्य विनिर्मितानि देशस्य गौरवं समेधन्ते । तेषामेव उत्तरोत्तरविकासः अस्माभिः करणीयो वर्त्तते । तेन नाट्यस्य नाट्यशास्त्रस्य च विकासः नूनं भविष्यति ।

अस्यामेव भूमौ ज्ञानस्य विकासो जातः । संस्कारव्यवस्था अस्यैव देशस्य मूलप्रक्रिया ।

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥" (१२) इति

अतः साहित्यिकैः संस्कृतसेविभिः शास्त्रीयमर्यादासंरक्षकैः भरतवंशजैः अस्माभिः एतदेव सावहितैर्भाव्यम् । सांस्कृतिकाभिनेयकाव्यपरम्परायाः पुनरुद्धारेण भरतवंशस्य गौरवं यथा भवेत् , यथा वा इमे भारतवास्तव्याः अभिनेयकाव्यात् सूपदेशं लप्स्यन्ते तथा शास्त्रीयचलच्चित्राणां निर्माणमत्यावश्यकम् । चलच्चित्रपरियोजनायां स्वस्थाननिरूपणमपि अस्माकं ध्येयं स्यात् । एवञ्च वैदेशिकाधमधर्मसंस्कृतिप्रभावितानां चलच्चित्राणां प्रदर्शनं येन प्रतिबन्धितं स्यात् तदर्थमपि उपायः चिन्तोऽस्ति । अन्यथा मुनेः प्रयासः भविष्यत्काले अर्थहीनः भवेदिति शङ्का नैव त्यज्या इति कृत्वा आभारते संस्कृतज्ञाः भरतशास्त्रमर्मज्ञाः शोधकार्याणि सद्यः कुर्वन्त्विति आशास्य विरमामि विस्तरात् ।

पादटिप्पणी-
(१) नाट्यशास्त्रम्.१२३/१
(२) नाट्यशास्त्रम्.११५/१
(३) नाट्यशास्त्रम्.११०/१
(४) नाट्यशास्त्रम्.१२३/१
(५) नाट्यशास्त्रम्.११६/१
(६) मनुस्मृतिः५६/३
(७) साहित्यदर्पणः१६,१७,१८/६

(८) दशरूपकम्.३४,३५/३
(९) मनुस्मृतिः २१२,२१५/२
(१०) अभिज्ञानशाकुन्तलम्/
(११) रसज्ञतैव सहृदयत्वमिति । ध्वन्यालोकः.तृतीयोद्योतः/पृ२३३
(१२) मनुस्मृतिः.२०/२

****

नाट्यशास्त्रानुसारं सप्रभेदमाहार्याभिनयस्यानुशीलनम्

डा. राकेशकुमारजैनः
सहायकाचार्यः(अनुबन्धितः)
साहित्यविभागः , रा.सं.संस्थानम्, मुम्बईपरिसरः।

आचार्यभरतमुनिना संस्कृतसाहित्ये सर्वोत्तमं नाट्यशास्त्रं प्रणीतम् । स न केवलं शास्त्रस्य प्रणेता अपितु नाट्यप्रयोक्ता अपि आसीत्। नाट्यशास्त्रे नाट्यप्रयोगसम्बन्धिसिद्धान्तानामुल्लेखः तेषाञ्च विवरणं यथा विस्तृतमस्ति तथा सूक्ष्ममपि विद्यते। नाट्यप्रयोगोऽयम् अभिनयेन सम्पद्यते । अत एव भरतमुनिना प्रयोगसम्बन्धिताः ये केऽपि शास्त्रीयसिद्धान्ताः परम्परागतमान्यताश्च आसन् , तेषां सूक्ष्मदृष्ट्या विवेचनम् अभिनये एव विहितम्।नाट्यस्य प्राणतत्त्वरसस्य उन्मेषः अभिनये एव भवतिानाट्यशास्त्रे अष्टमाध्यायादारभ्य षड्विंशाध्यायं यावत् अतीवविस्तृतरूपेण अभिनयस्य निरूपणं कृतं मुनिना।

☐ **अभिनयस्य लक्षणम्** - अद्यत्वे यथा अभिनयस्यार्थः प्रतिपाद्यते तथा नासीत् नाट्यशास्त्रे , तत्राभिनयस्य विस्तृतार्थो निरूपितः, नाट्यस्य सर्वाभिव्यक्तिः अभिनयकौशलाश्रिता एव तस्मादेवोक्तं नाट्यशास्त्रे भरतमुनिना -

अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराभि मुख्यार्थनिर्णये ।
यस्मात् प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः॥
विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः ।
शाखाङ्गीपाङ्गसंयुक्तस्तस्मादभिनयःस्मृतः ॥[1]

आचार्यधनञ्जयेन दशरूपके नाट्यस्य(अभिनयस्य) लक्षणं कुर्वता प्रोक्तम् - **अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्**[2] अर्थात् सर्वावस्थायाः अनुकरणमेव नाट्यमित्युच्यते ।अयमेव भावः प्रकटयता आचार्यविश्वनाथेन साहित्यदर्पणे अभिनयस्य स्वरूपं षष्ठपरिच्छेदस्य द्वितीये श्लोके प्रोक्तम् - **भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः**[3]

☐ **अभिनयस्य भेदाः** - नाट्यशास्त्रे अभिनयस्य चत्वारो भेदाः निरूपिताः सन्ति –

आङ्गिकः वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा ।
ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राः चतुर्धा परिकल्पिताः ॥[4]

1. आङ्गिकाभिनयः – शरीरस्य विविधाङ्गैः उपाङ्गैः प्रत्यङ्गैः क्रियमाणः अभिनयः ।
2. वाचिकाभिनयः – संवादेन वाचा वा यदभिनयः क्रियते सः वाचिकाभिनयः ।
3. आहार्याभिनयः – पात्राणामवस्थानुरूपं वेषविन्यास-अलङ्कार-परिधान-अङ्गरचना-निर्जीवसजीवप्राणीनां प्रयोगः आहार्याभिनयः ।
4. सात्विकाभिनयः – अन्तरात्मना क्रियमाणः अभिनयः सात्विकाभिनय उच्यते।

☐ **आहार्याभिनयस्य स्वरूपम्** – विषयानुसारमत्र आहार्याभिनयस्य स्वरूपमिह समासेन प्रस्तूयते – तत्रादौ व्युत्पत्तिमनुसरामः - आहर्तुं योग्यः इति आहार्यः । आहार्येण आहार्यैर्वा कृतः अभिनयः आहार्याभिनयः । नाट्यशास्त्रे मुनिभिरस्मिन् विषये लिखितमस्ति - **आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः ।**[5] अर्थात् नेपथ्ये जायते इति नेपथ्यजः। यस्य विधिः अर्थात् योजना कुशीलवैः अन्याभिनयेभ्यः पूर्वं नेपथ्ये एव विधीयते असौ आहार्याभिनयो भवति। आहार्याभिनयस्य यात्रा नेपथ्यात् प्रारभ्य नाट्यप्रस्तुतिकरणं यावत् भवति ।

- **नाट्ये आहार्याभिनयस्य महत्त्वम् -** चतुर्षु अभिनयेषु आहार्यस्याभिनयस्य महत्त्वमत्यधिकं वर्तते तत एव सर्वाभिनयस्य उपजीव्यत्वेनास्य महत्त्वमङ्गीकृतम्। यथा चित्रस्य आधारः भित्तिः तद्वद् अभिनयस्याधारः आहार्याभिनयः , अत एव नाट्यशास्त्रे चतुर्षु अभिनयेषु अन्ते अस्य वर्णनं मुनिना विहितम् । नाट्यप्रयोगे सर्वप्रथमः प्रभावः आहार्याभिनयस्यैव भवति । नाट्यशास्त्रे भरतमुनिना अस्य महत्त्वं प्रतिपादयता प्रोक्तम् - **यस्मात् प्रयोगः सर्वोऽयमाहार्याभिनये स्थितः ।** [6] अभिनयोऽयं सारूप्यसृजनस्यैको महत्त्वपूर्णः प्रयोगो वर्तते । अस्याभिनयस्य सिद्धतायै प्रयत्नः प्रकृतिप्रदत्तसौन्दर्यस्य श्रीवृद्धिरनेनैव भवति । पूर्वकालादेव प्रारब्धव्यः । तस्मादेवोक्तं मुनिनादौ - **तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता ।** [7] अदृष्टपदार्थं कल्पनया प्रत्यक्षीकरोति असौ अभिनयः । डा.कीथमहाभागानुसारं नटस्य कृते अनुकार्यस्यानुभूतौ आहार्यस्य प्राधान्यं भवति । आङ्गिक-वाचिक-सात्विकाभिनयाः नटाश्रिताः भवन्ति किन्तु नटः आहार्याश्रितो भवति , अतः सर्वाश्रयः आहार्यः ।
- **आहार्याभिनयस्य भेदप्रभेदाः** – आहार्याभिनयस्य मुलतश्चत्वारो भेदाः सन्ति –

चतुर्विधन्तु नेपथ्यं पुस्तोऽलङ्कार एव च ।
तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सज्जीव एव च ।। [8]

1. पुस्तरचना – कथानुगुणं सादृश्यवस्तूनां निर्माणं पुस्त इत्युच्यते।
2. अलङ्करणम् - अभिनेतृणां शरीरस्य प्रसाधनम् अलङ्करणमित्युच्यते ।
3. अङ्गरचना - नायकनायकादीनां पात्रानुगुणं शरीरे वर्णलेपनमङ्गरचना भवति ।
4. सज्जीवः - जीवितप्राणिसमूहस्य आभासिकप्राणिसमूहस्य वा नाट्ये प्रयोगः सज्जीवो भवति ।

1. **पुस्तरचना –** आहार्याभिनयविधौ पुस्तआहार्यः सर्वप्रथमः महत्त्वपूर्णश्च वर्तते । पुस्त इति पदस्यार्थोऽस्ति संयोजनम् (Model) (प्रादर्शः) , अर्थात् यत्र संयोजनस्य सांकेतिकपदार्थस्य च रचना भवति तत्पुस्तरचना । अमरकोषे पुस्तशब्दस्यार्थोऽस्ति – **पुस्तं लेप्यादिकर्माणि ।** [9] नाट्यशास्त्रे पुस्त-आहार्यविषये लिखता भरतमुनिना निगदितम् –

शैलयानविमानानि चर्मवर्मध्वजा नगाः।
यानि क्रियन्ते नाट्ये हि स पुस्त इति संज्ञितः ।।[10]

अर्थात् पर्वत – यान – विमान – स्यन्दन – गज – ध्वजा - दण्डादीनामनैकलौकिकपदार्थानां चर्मवस्त्रादिनिर्मितसांकेतिकपदार्थमाध्यमेन रङ्गमञ्चे यत्सादृश्यसारूप्यं सृज्यते सा पुस्तरचना इत्यभिधीयते ।
पुस्तरचनायाः भेदाः – नाट्यशास्त्रे पुस्तरचनायाः त्रयो भेदाः वर्णिताः – 1. सन्धिमः 2. व्याजिमः 3. वेष्टिमश्च । त्रयाणां लक्षणमत्र समासेन प्रदीयते –

➢ **सन्धिमः -** सन्धानं सन्धा , तया निर्वृत्तः , सदलादिरूपं क्रियते इति सन्धिमः।[11] यथोक्तं मुनिना -

किलिञ्जचर्मवस्त्राद्यैर्यद्रूपं , क्रियते बुधैः ।
सन्धिमो नाम विज्ञेयः पुस्तो नाटकसंश्रयः ।।[12]

अर्थात् नाट्योपयोगार्थं किलिञ्ज-चर्म-वस्त्राद्यैः यद् रूपं क्रियते स सन्धिमपुस्तः उच्यते ।

➢ **व्याजिमः - व्याजिमो नाम विज्ञेयो यन्त्रेण क्रियते तु यः ।** [13] अर्थात् भौतिक-यान्त्रिक-संसाधनैर्यत् प्रस्तुतीकरणं क्रियते स व्याजिमपुस्त इत्यभिधीयते ।अभिनवगुप्तपादेन उक्तं - **व्याजः सूत्रस्याकर्षादिरूपः आक्षेपः , तेन निर्वृत्तः व्याजिमः ।** [14]
➢ **वेष्टिमः – वेष्ट्यते चैव यद्रूपं वेष्टिमः स तु संज्ञितः ।**[15] अर्थात् नाट्यादिषु प्रयोगार्थं यद् वेष्टनादिभिः वस्तुनिर्माणं क्रियते स वेष्टिमपुस्त इत्युच्यते ।

2. **अलङ्करणम् -** भरतमुनिः प्रात्राणां प्रसाधनाय अलङ्काराणामपि विवेचनामकरोत् । पात्राणामलङ्कारो मुख्यतः त्रिधा भवति - मालाधारणम् , आभूषणपरिधानम् ,वेशविन्यासश्च।

- मालाधारणम् - माल्याभरणेनापि शरीरस्य प्रसाधनं पञ्चधा भवतीति मुनिना प्रोक्तं नाट्यशास्त्रे - **वेष्टिमं विततञ्चैव सङ्घात्यं ग्रन्थिमन्तथा ।**
प्रालम्बितं तथा चैव माल्यं पञ्चविधं स्मृतम् ।। [16]

आभूषणपरिधानम् - आभूषणानि चतुर्धा भवन्ति –

i. आवेध्यम् – कुण्डलादयः
ii. बन्धनीयम् - हेमसूत्रहारादयः
iii. प्रक्षेप्यम् – वस्त्राभरणादयः
iv. आरोप्यम् – स्वर्णशृङ्खलादयः

स्थानम्	पुरुषपात्राणामाभूषणानि
1. शिरसि	चूडामणिः , मुकुटः
2. कर्णे	कुण्डलम् , मोचकम् , पुष्पम्
3. कण्ठे	मुक्तावली , हर्षकम् , सूत्रकम्
4. अङ्गुल्याम्	वेतिकम् , अङ्गुलिमुद्रा
5. बाहौ	हस्तली , वलयम्
6. मणिबन्धनम्	रुचकः , चूलिका ,
7. कूर्परे	केयरम् , अङ्गदम्
8. वक्षसि	त्रिसरः , हारः
9. कट्याम्	तरलम् , सूत्रम्

स्थानम्	स्त्रीपात्राणामाभूषणानि
1. शिरसि	शिखापाशम्,शिखाव्यालः,पिण्डीपत्रम्,चूडामणिः,मकरिका,मुक्ताजालम्,गवाक्षिकम्
2. ललाटे	ललाटतिलकम् , शिखिपत्रम् , वेणीगुच्छम्
3. कर्णे	कुण्डलम् , कर्णिका,कर्णवलयः,कर्णभूषणम् , कर्णमुद्रादयः
4. नेत्रयोः	अञ्जनम्
5. अधरे	रञ्जनम्
6. कपोले	तिलकाः, पत्रलेखाः
7. वक्षस्थले	त्रिवेणी
8. कण्ठे	मुक्तामाला,व्यालपङ्क्तिः ,रत्नमाला,मंजरी, रत्नावलीइत्यादयः
9. बाहौ	अङ्गदम् ,वलयश्च,खर्जुरकम्,सोच्छितिकम्
10. अङ्गुल्याम्	कटकम्,कलशाखा,हस्तपत्रम्, सुपूरकम्,मुद्रा,अङ्गुलीयकम्,
11. कट्याम्	काञ्ची,मेखलम्,तलकम्,रशाना

12.गुल्फे	नूपुरः,किङ्किणीकाः,घण्टिका,रत्नजालकम्,
13. जङ्घयोः	पादपात्रम्
14. पादयोः	अलक्तरागः

आभूषणपरिधाने ध्यातव्यम्

- विद्याधरीणां यक्षीणामप्सरो नागयोषिताम्।
  ऋषिदैवतकन्यानां वेषैर्नानात्वमिष्यते ॥
- तथा च सिद्धगन्धर्वराक्षसासुरयोषिताम्।
  दिव्यानां नरनारीणां मानुषीणान्तथैव च ॥
- अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
  मेखलोरसि बद्धा तु हास्यं समुपपादयेत् ॥ [17]

3. अङ्गरचना - आहार्याभिनयस्य तृतीयो भेदो वर्तते अङ्गरचना। अङ्गरचना इत्यस्याभिप्रायो वर्तते शरीरस्य रङ्गविधानम् अर्थात् मेकअप इति आङ्ग्लभाषायामुच्यते । देश-जाति-व्यवस्थानुरूपं शरीरस्य रङ्गविधानं विधीयते। यथोक्तं नाट्यशास्त्रे –
आकृतिस्तस्य कर्तव्या यस्य प्रकृतिरास्थिता।
यथा जन्तुः स्वभावं स्वयं परित्यज्यान्यदैहिकम् ॥ [18]

अङ्गरचनायाः सिद्धता मुख्यतया त्रिधा भवति –

- वर्णरचना
- वेशरचना
- केशरचना

✓ **वर्णरचना** - नाट्यशास्त्रे मुलतः चत्वारि वर्णानि सन्ति – सितः नीलः पीतः रक्तश्च। परस्परमेतेषां सम्मेलनेन अन्ये वर्णाःभवन्ति, तद्यथा – पाण्डुः कपोतः पद्मः हरितः कषायः गौरश्च। विविधपात्राणां भिन्न-भिन्नवर्णाः भवन्ति। यथा - दिव्यपात्राणां वर्णः-

दिव्यपात्राणि	वर्णः
देवता-यक्ष-अप्सरसां	गौरवर्णः
सुर्य-ब्रह्म-सोम-बृहस्पति-शुक्र-तारागणानाम्	सुवर्णसदृशः
समुद्र-हिमवन्पर्वत-गङ्गा-बलरामादीनाम्	श्वेतवर्णः
दैत्य-दानव-राक्षस-गुह्यक-पिशाच-नग-जल-आकाशादीनाम्	नीलवर्णः
गन्धर्व-भूत-पन्नग-विद्याधर-पितर-वानरादीनाम्	विविधवर्णाः
बुधग्रह-अग्निदेवयोः	पीतवर्णः

विविधावस्थासु मानवपात्राणां वर्णः –

राज्ञाम्	पद्मगौरवर्णाः-श्याम-
सुखिमनुष्याणाम्	गौरवर्णः
कुकर्मि-ग्रहग्रस्त-व्याधित-तापस-कुजातीय-आयस्तकर्मिणाम्	असितवर्णः
ऋषीणाम्	पीतवर्णः
तपस्विनाम्	असितवर्णः
देश-जाति-वयानुगुणम्	विविधवर्णाः

विभिन्नजनजाति-देश-वर्णाना वर्णः -

किरात-बर्बर-आन्ध्र-तमिल-काशि-कोशल-पुलिन्ध्र-दाक्षिणात्यमानवानाम्	असितवर्णः
शक-यवन-पह्लव-वाहीक-उत्तरदेशीयानाम्	गौरवर्णः
पाञ्चाल-शौरसेन-माहिष-औद्र-मागध-अङ्ग-बङ्ग-कलिङ्गानाम्	श्यामवर्णः
ब्राह्मण-क्षत्रियवर्णयोः	गौरवर्णः
वैश्य-शुद्रयोः	श्यामवर्णः

रसानुरूपवर्णरचना –

रसः	वर्णः
शृङ्गाररसः	श्यामवर्णः
हास्यरसः	सितवर्णः
करुणरसः	कपोतवर्णः
रौद्ररसः	रक्तवर्णः
वीररसः	गौरवर्णः
भयानकरसः	कृष्णवर्णः
अद्भुतरसः	पीतवर्णः
बीभत्सरसः	नीलवर्णः

✓ **वेशरचना** - वेशरचनायाः वर्णनं कुर्वता प्रोक्तं मुनिना नाट्यशास्त्रे यत् केन पात्रेण कुत्र कीदृशो वेशः स्यादिति। देवमन्दिरगमनकाले माङ्लिकानुष्ठानसमये तिथिनक्षत्रादीनां शुभयोगे विवाहावसरे धार्मिककार्यक्रमावसरे शुद्धवेशः(शुभ्रवस्त्रम्)स्यादिति। देव-दानव-यक्षाणां गन्धर्व-उरग-रक्षसां नृपाणां कर्कशानाम् (उच्चपदस्थ-अधिकारीणाम्) कामुकानाम् विचित्रवेशः(विविधवर्णीयवेशः) स्यादिति। उन्मत्तानां प्रमत्तानाम् अध्वगानां विपत्तिग्रस्तजनानां निर्धनानां मलिनवेशःस्यादिति । मुनि-निर्ग्रन्थ-शाक्य-त्रिदण्डि-श्रोत्रिय-व्रतानुगानां वेशः लोकप्रसिद्धानुरूपः , परिव्राजक-महन्त-तापसादीनां वेशः कषायवर्णीयः , पाशुपतसम्प्रदायस्य वेशः विचित्रः । कुलीनजनानाञ्च – यथोचितवेशः स्यादिति।

✓ **केशरचना -** अङ्गरचनारूपाहार्यस्य तृतीयो भेदो वर्तते – केशरचना । केशरचनायाः अपि द्वौ भेदौ वर्तेते – शिरोवेशविन्यासः केशविन्यासश्च । शिरोवेशविन्यासः(मुकुटधारणम्) यथा –

पार्श्वगतमुकुटः (अर्धमुकुटः, पार्श्वमौली) स्वर्णादिरत्ननिर्मितः, वर्तुलाकारः	मस्तकी (मस्तकाच्छेदी, शीर्षमौली) स्वर्णादिरत्ननिर्मितः,	किरीटी
कनिष्ठदेवानाम् यथा - देव – गन्धर्व – यक्ष –नाग – पन्नग - यक्ष - राक्षसानाम् । युवराज-सेनापतीनाम् ।	मध्यमवृत्तिदेवानाम् । नराधिपानाम् ।	उत्तमदेवाम् यथा- विद्याधर-सिद्ध- चारणानाम्। अमात्य-कञ्चुकि-श्रेष्ठि-पुरोहितानाम् ।

विविधपात्राणां केशकर्म –

पात्राणि	केशकर्म
राक्षस-दानव-दैत्यानाम्	पिङ्गकेशाः
पिशाच-उन्मत्त-भूत-साधक-तपस्वि-अनिस्तीर्णप्रतिज्ञानाम्	लम्बकेशाः
बौद्धसाधु-जैनसाधु-श्रोत्रियब्राह्मण-परिव्राजक-यज्ञदीक्षितानाम्	शिरोमुण्डनम्
वारवधू-राजाधिकारि-शृङ्गारचित्तानाम्	कुञ्चितकेशाः (घुंघराले)
चेटानाम्	त्रिशिखम् , मुण्डनम्
विदुषकस्य	काकपदम् , मुण्डनम्
बालकानाम्	त्रिशिखम् , मुण्डनम्

विविधपात्राणाम् श्मश्रुकर्म –

शुद्धश्मश्रुः (शुक्लश्मश्रुः) प्रायः केशरहितः	विचित्रश्मश्रुः (आकर्षकश्मश्रुः)	श्यामश्मश्रुः	रोमशश्मश्रुः
ब्रह्मचारि-सन्यासि-अमात्य-पुरोहित-दीक्षितानाम्	सिद्ध-विद्याधर-नृप-राजकुमार-राजपुरुष-शृङ्गारि-यौवनोन्मादीनाम्	अनिस्तीर्णप्रतिज्ञ-दुःखिविपद्ग्रस्तानाम्।	ऋषि-तपस्वि-दीर्घव्रति-चीरबद्धनाम् ।

4. सञ्जीवाहार्यः - आहार्यस्य चतुर्थो भेदः सञ्जीवाहार्यो विद्यते । अस्य लक्षणं कुर्वता मुनिना प्रोक्तं नाट्यशास्त्रे – **यः प्राणिनां प्रवेशो वै स सञ्जीव इति संज्ञितः ।**[19] अर्थात् रङ्गमञ्चे कथानुगुणं प्रस्तुताःपशवादयः प्राणिनः सञ्जीवाहार्या उच्यन्ते ।

सञ्जीवाहार्यस्य भेदाः - 1. द्विपत्सञ्जीवः – मानवादयः । 2. चतुष्पत्सञ्जीवः – पशवादयः 3. अपत्सञ्जीवः – उरगादयः । एतेषां भेदानां पुनरपि भेदद्वयं भवति -

❖ सञ्जीवाः - मनुष्यादयः । अत्र रङ्गमञ्चे समागताः सर्वे नायक-नायिका-विट-चेट-विदूषक-प्रतिनायक-तपस्विप्रभृतयः ।

❖ आभासिकाः – यान् द्विपद्-चतुष्पद-अपद्-जीवान् रङ्गमञ्चे वयं प्रस्तोतुं न शक्नुमः तान् जीवान् पुत्तलिका-मुखौटादिमाध्यमेन प्रस्तुतं कुर्मः , वस्तुतः ते एव आभासिकाः भवन्ति ।

❑ **आहार्यप्रयोगे विवेकः** – नाट्यशास्त्रे आहार्यस्य प्रयोगविषये विवेकस्यापि विवेचनं कृतमस्ति । पात्राणां कृते भारयुक्ताहार्यस्य प्रयोगः न स्यात् अन्यथा स्वेदो मूर्च्छा च जायते। आहार्यनिर्माणज्ञाचार्यस्य निर्देशेनैवाहार्यस्य निर्माणं स्यात्। रङ्गमञ्चे आयुधं न मोक्तव्यम् , न छेद्यं , न च ताडनं स्यात् । केवलं दूरादेव प्रयोगः।अथवा प्रयोक्तृभिः शिक्षाभ्यासैः मायया वा शस्त्रमोक्षः कर्त्तव्यः । प्रकृति-देश-कालानुरूपम् आहार्यस्य योजना स्यात् । रस-भावानुगुणम् आहार्यस्य विधिः स्यात् ।

❑ **अन्यैरभिनयैःसह आहार्याभिनयस्य सम्बन्धः -** आङ्गिक-वाचिक-सात्विकाभिनयैः सह आहार्यस्य प्रायः आधाराधेयभावसम्बन्धो वर्तते । सर्वाभिनयानां लक्ष्यं कथावस्तुनः प्रतिपादनम् ,अतो वक्तुं शक्यते अन्यैः सह पूर्वापरभावसम्बन्धो वर्तते ।

❑ **अन्यशास्त्रीयग्रन्थेषु आहार्याभिनयः** - आहार्याभिनयस्य वर्णनं न केवलं नाट्यशास्त्रे एव प्राप्यते अपितु अन्येषु परवर्तिशास्त्रीयग्रन्थेष्वपि समुपलभ्यते । केषुचित् प्रमुखनाट्यशास्त्रीयग्रन्थेषु निरूपितः आहार्याभिनयमत्र समासेन प्रस्तूयते मया

1. **अभिनयदर्पणम्-** भरतमुनेः पश्चाद् आचार्यनन्दीकेश्वरः अभिनयदर्पणे आहार्याभिनयस्योल्लेखमकरोत् , तद्यथा – **"आहार्यो हारकेयूरवेषादिभिरलङ्कृतः"**[20] अर्थात् हार-केयूर-वेषभिषादिभिरलङ्कृतः आहार्योभिनयो भवति ।

2. **अग्निपुराणम्** – अग्निपुराणे चतुर्विधाभिनयानां निरूपणे आहार्याभिनयस्य व्याख्या विहिता , तद्यथा – अभिमुख्यं नयन्नर्थान् विज्ञेयोऽभिनयो बुधैः ।

चतुर्धा सम्भवः सत्त्ववागङ्गाहरणाश्रयः ।।
स्तम्भादिः सात्त्विको वागारम्भो वाचिक आङ्गिकः ।
शरीरारम्भ आहार्यो बुद्ध्यारम्भप्रवृत्तयः ।। [21]

अत्र अग्निदेववशिष्टमुनिः कथयति यत् सात्त्विकः वाचिकः आङ्गिकः आहार्यश्च एवं चतुर्विधः अभिनयो भवति । तत्र स्तम्भस्वेदादिः सात्विकाभिनयः , वागारम्भो वाचिकाभिनयः , शरीराम्भ आंङ्गिकाभिनयः यस्य च आरम्भो बुद्ध्या क्रियते तदाहार्याभिनय उच्यते ।

3. विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् – विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् इत्येकमुपपुराणं वर्तते । अत्रापि अभिनयस्य चत्वारो भेदाः वर्णिता, तद्यथा–

वाचिकश्च तथाहार्यस्त्वाङ्गिकस्सात्त्विकस्तथा ।
चतुष्प्रकारोऽभिनयः कीर्त्तितो नाट्यकोविदैः ।।[22]

अस्मिन् पुराणे सप्तविंशेऽध्याये 46 परिमितेषु श्लोकेषु आहार्याभिनयस्य विवरणं नाट्यशास्त्रानुगुणमेव वर्णितम् ।

4. **दशरूपकम्** – दशरूपककारधनञ्जयः आहार्याभिनयस्य पृथगुल्लेखं न कृतवान् । परन्तु दशरूपकस्य प्रथमप्रकाशे **"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्"**[23] इति नाट्यलक्षणप्रयोगप्रसङ्गे अनुकृतिपदस्य व्याख्यायां सात्त्विक-वाचिक-आङ्गिक-आहार्याभिनयानां ग्रहणं कृतवान् । आचार्यधनिकेन स्पष्टीकृतं दशरूपके यथा –

"काव्योपनिषध धीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाट्यम् ।"

5. **सङ्गीतरत्नाकरः** – शार्ङ्गदेवेनापि चतुर्विधाभिनयस्य निरूपणप्रसङ्गे आहार्याभिनयस्योल्लेखः कृतः –

आङ्गिको वाचिकस्तद्वदाहार्यः सात्त्विकोऽपरः ।
चतुर्धाभिनयस्तत्राङ्गिकोऽङ्गैर्दर्शितो मतः ।। [25]

आहार्याभिनयस्य व्याख्यासन्दर्भे प्रोक्तम् – "आहार्यो हारकेयूरकिरीटादिविभूषणम् ।" अस्य सुधासागरटीकायां व्याख्या कृता – अनुकार्यगता भरणसजातीयत्वेनानुकर्ता धृतं हारादिविभूषणमाहार्याभिनयः । आदिशब्देन धनुराद्यायुधं पुरस्कृतं ध्वजयानादि च विभूषणत्वेन ग्राह्यं तस्यापि शोभाहेतुत्वेन विभूषणत्वात् । आहार्यस्यापि अनुकार्यज्ञापकत्वेनाभिनयत्वं द्रष्टव्यम् ।

6. **सङ्गीतचन्द्रः** – सङ्गीतचन्द्ररचनाकारस्य विप्रदासस्य समयः चतुर्शदशताब्द्याः उत्तरार्द्धः स्वीकृतो विद्वद्भिः । भरतकोशे विप्रदासद्वारा निरूपितमाहार्यसम्बन्धितकथनमुद्धृतम् । यत्र चतुर्विधनाटकस्यापि वर्णनं दरीदृश्यते , तद्यथा –

अङ्गिका वाचिकाश्चैव आहार्याः सात्त्विका इति
चतुर्विधास्ते करणैश्चतुर्भिरूपपादनात् ॥
अङ्गैः शिरः प्रभृतिभिर्निवृत्ता आङ्गिका मताः ।
वाग्भिर्विरचिता गीतप्रबन्धाद्यास्तु वाचिकाः ॥
आहार्यं भूषणादिः स्यादाहार्यस्ततप्रदर्शिताः ।
सत्वं मनोभाविताः स्युस्तेन ये सात्त्विकास्तु ते ॥[26]

7. **अभिनवकालिदासः** - शास्त्रस्यास्य प्रणेता नञ्-राजयशोभूषणो विद्यते । अमुना आहार्याभिनयो नेपथ्यमिति नाम्ना अभिहितः । चतुर्विधनेपथ्यस्य(आहार्याभिनयस्य) व्याख्यां कुर्वता भणितमनेन यत् –

कुशीलवकुटुम्बस्य स्थली नेपथ्यमुच्यते ।
नेपथ्यजं तु नैपथ्यं तच्चतुर्विधमुच्यते ॥
पुस्तभूषाङ्गरचनासञ्जीवा इति भेदतः
पुस्तं प्रदर्शितं नाट्ये विमानाद्रिवनादिकम् ॥
कुण्डलादि सुभूषांगरचनात्वनुलेपनम् ।
सञ्जीवः पशुपक्ष्यादिप्राणिनां रूपधारणम् ॥[27]

8. **अन्यत्र** - भरतकोशे कुम्भकवेः मतं प्रस्तुतं वर्तते , तन्मतानुसारम् –

"आहार्यः स तु विज्ञेयः किरीटादिविभूषणैः शोभामाहृत्य जनितो नटेऽनुकृतिः" [28]

भरतकोशे एव शृङ्गानुसारम् आहार्यस्य स्वरूपं प्रदर्शितम् –

अर्धोरूपकादिकचैश्च शिरोवेष्टादिभूषणैः ।
निजाहार्य इति प्रोक्तो भरताम्नायवेदिभिः ॥[29]

इत्थं वक्तुं शक्यते यत् आहार्याभिनयस्य वर्णनं भरतमुनेः पंरवर्तिभिराचार्यैरपि कृतमास्ते । केनचित् विस्तृतव्याख्या कृता केनचित्त उल्लेखमात्रेणैव आहार्याभिनयस्य सत्ता स्वीकृता ।

❑ **उपसंहारः** - नाट्यप्रयोगे आहार्याभिनयस्य महती अनिवार्यता वर्तते । रस-भाव-देश-काल-अवस्था-प्रकृत्यानुगुणम् आहार्यस्य प्रयोगः विधातव्यः । नाट्यप्रयोक्तृणां कृते आहार्याभिनस्य ज्ञानं नितान्तमपेक्षते। आहार्याभिनस्य वर्णनं न केवलं भरतमुनिना कृतमपितु अन्यनाट्यशास्त्रविद्भिरपि विहितम् अनेनास्य महत्त्वमितोपि वर्धते । सामाजिकानां कृते अत्यन्तप्रभावकोऽयमभिनयः।

सन्दर्भसूची

1. नाट्यशास्त्रम् 8 –/6,8
2. दशरूपकम् - 1/6
3. साहित्यदर्पणम् - 6/2
4. नाट्यशास्त्रम् – 8/9
5. नाट्यशास्त्रम् – 23/2 पूर्वार्धः
6. नाट्यशास्त्रम् –23/1
7. नाट्यशास्त्रम् –23/उत्तरार्धः 2
8. नाट्यशास्त्रम् –23/4
9. अमरकोषः
10. नाट्यशास्त्रम् –23/9
11. अभिनवभारती टीका
12. नाट्यशास्त्रम् –23/7
13. नाट्यशास्त्रम् –23/ पूर्वार्धः 8
14. अभिनवभारती टीका
15. नाट्यशास्त्रम् –23/उत्तरार्धः 8
16. नाट्यशास्त्रम् –23/11
17. नाट्यशास्त्रम् –23/51,52,70
18. नाट्यशास्त्रम् –23/.पू 86
19. नाट्यशास्त्रम् –23/.उ 151
20. अभिनवदर्पणः/पृ 40-श्लोकसंख्या,76.सृ.पृ.
21. अग्निपुराणम् 342 –अध्यायः/श्लोकः 1,2 –
22. विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् 2/27/1
23. दशरूपकम् 1 -/7
24. दशरूपकम् 1 -/पृ9.सं.
25. सङ्गीतरत्नाकरः 7 -/27
26. सङ्गीतचन्द्रः
27. अभिनवकालिदासः/विलासषष्ठः83.सं.पृ,
28. भरतकोशः 65 .सं.पृ -
29. भरतकोशः 65 .सं.पृ -

****

नाट्यशास्त्रानुसारं यक्षगाने आहार्याभिनयस्यानुशीलनम्

डा.एम्.सुदर्शनचिपळूणकरः
साहित्यविभागः,रा.सं.सं.,
क.जे.सोमय्यासंस्कृतविद्यापीठम्,मुम्बई

यक्षगानं कर्णाटकस्य एकः कलाप्रकारः । अयञ्च कलाप्रकारः जानपदः इति व्यवह्रियते । पुराणसम्बद्धाः कथाः रामायणमहाभारतादिकथाः, स्थलपुराणानि च समाश्रित्य यक्षगानस्य प्रयोगः कन्नडभाषायाम् आरात्रि प्रवर्तते । किन्तु अधुना समग्रे विश्वे एव यक्षगानं प्रथते इत्यतः संस्कृते, तौळवभाषायां, हिन्दीभाषायाम्, आङ्गलभाषायां च यक्षगानस्य प्रयोगाः भवन्ति । अस्मिन् तेंकुतिट्टु, बडगुतिट्टु इति च नाम्ना शैलीद्वयं विद्यते ।यथा साहित्ये वैदर्भ्यादयः रीतयः तत्तद्देशनाम्ना प्रथन्ते तथा यक्षगानेऽपि प्रान्तभेदेन अनयोः शैल्योः नाम विद्यते । कन्नडभाषायां तेंकु इत्युक्ते दक्षिणभागः, तिट्टु इत्युक्ते शैली इत्यर्थः। कर्णाटकस्य दक्षिणकन्नडमण्डले अयं प्रकारः प्रचुरतया विद्यते इत्यतः अयं प्रकारः तेंकुतिट्टु इति नाम्ना व्यवह्रियते । घडगु इत्युक्ते उत्तरभागः। बडगुतिट्टुशैली कर्णाटकस्य उत्तरकन्नडमण्डले प्रचुरतया विद्यत इत्यतः तन्नाम्ना व्यवह्रियते । प्रायः १५-१६ शताब्द्याः ग्रन्थेषु यक्षगानस्य उल्लेखाः उपलभ्यन्ते । परं ततः पूर्वमपि यक्षगानम् आसीदिति विदुषामभिप्रायः । यक्षगानस्य प्रथम उल्लेखः शार्ङ्गदेवस्य **सङ्गीतरत्नाकरे** (क्रि. श.१२००)

इति विदुषामभिप्रायः । यक्षगानस्य **जक्क** इति नाम्ना उपलभ्यते । अनन्तरं **यक्कलगान, यक्षगान** इति च कालान्तरे व्यवहारः जातः इति विदुषामभिप्रायः । यक्षगानस्य प्रयोगं पृष्ठभूमिः मन्दिराण्येव । भगवतः सेवारूपेण अस्य कलाप्रकारस्य विकसो जातः । अधुनापि जनाः विशेषसन्दर्भेषु यक्षगानस्य प्रयोगं कारयित्वा भगवतः आराधनां कुर्वन्ति । अतः अधिकाः यक्षगानसमूहाः देवालयानां पक्षतः परिचाल्यन्ते । यक्षगानस्य प्रयोगः वर्षाकालसमाप्त्यनन्तरं प्रायः नवेम्बर् मासादारभ्य मेमासपर्यन्तं निरन्तरम् आरात्रि च प्रवर्तते । अस्य यक्षगानस्य आधारभूतः कोऽपि शास्त्रग्रन्थो नैव विद्यते । गुरुशिष्यपरम्परया एव बहुभ्यः वर्षेभ्यः अद्यावधि विकसितरूपेण दृश्यते । यक्षगाने केचन तादृशाः नटाः विद्यन्ते ये च पठितुं लेखितुं वा न जानन्ति किन्तु यक्षगाने पुराणपरिधौ ग्रान्थिकशैल्या च तथा भाषन्ते यथा नागराः अपि न भाषेरन् । अयं विचारः यक्षगानस्य परम्परां द्रढयति । किन्तु सूक्ष्मेक्षिकया परिशीलयामश्चेत् यक्षगानेऽस्मिन् नाट्यशास्त्रोक्ताः नान्दी, आङ्गिकादयः चत्वारः अभिनयप्रकाराः, नवरसाः, कैशिक्याद्याः चतस्रः वृत्तयः, घनादीनि आतोद्यानि, व्यवस्थितः नाट्यमण्डपः,व्यवस्थितं **नेपथ्यविधानम्,** गानम् इत्यादयो बहवो हि अंशाः यक्षगाने सन्तीत्यतः अयमेकः शास्त्रीयः कलाप्रकारः इति निश्चप्रचम् । किञ्च आहार्यादिषु केचन भरतमुनिना अनुक्ताः अंशा अपि यक्षगाने अधुना सन्दृश्यन्ते । अनेन वयम् इदं वक्तुं न शक्नुमः यदयम् अशास्त्रीयः प्रकारः इति । यतो हि एते च अंशाः न अशास्त्रीयाः अपि तु कालानुरोधेन विकासरूपं प्राप्तवन्तः । तत्र च मुनिना भरतेनापि प्रोक्तमस्ति यत् -

एवं लोकोपचारेण स्वबुद्धिविभवेन च ।
नाट्योपकरणानीह बुधः सम्यक्प्रयोजयेत् ॥[xxxvi]इति ।

पुनश्च तेन त्रयोविंशस्याध्यायस्य अन्तिमे प्रोक्तमस्ति यत्-

नोक्तानि यानि च मया लोकाद्ग्राह्याणि तान्यपि ।
आहार्याभिनयो ह्येष मया प्रोक्तः समासतः ॥[xxxvii] इति ।

पूर्णं यक्षगानम् एकः महाविषयः इति कृत्वा प्रसक्तं पत्रेऽस्मिन् केवलं यक्षगानस्य आहार्याभिनयविचारे किञ्चित् प्रस्तूयते मया । तत्र प्रथमं को नाम अभिनयः इति ज्ञाते सत्येव आहार्यविचारः सुस्पष्टो भवति । तत्रोच्यते मुनिना भरतेन **यस्मात्प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः**[xxxviii] इति । एवञ्च अभीत्युपसर्गपूर्वकः णीञ् प्रापणे इत्यस्माद्धातोः अच् प्रत्यये निष्पन्नः अभिनयशब्दः निरूप्यमाणस्य वस्तुनः नटेभ्यः प्रेक्षकान् प्रति सम्प्रेषणं सूचयति । स च अभिनयः आङ्गिकः वाचिकः आहार्यः सात्त्विकश्चेति चतुर्विधः । तत्र च अङ्गविक्षेपादिभिः क्रियमाणः अभिनयः आङ्गिक इति, वाचा क्रियमाणः वाचिक इति , भावप्रधानः सात्त्विक इति च कथ्यते। आहार्याभिनयश्च नेपथ्यजो विधिर्भवति । तत्रोक्तं मुनिना भरतेन-

आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नेपथ्यजो विधिः ।
तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता ॥[xxxix] इति । एतेषु आङ्गिकादयस्त्रयः अभिनयाः नटाधीनाः भवन्ति । किन्तु आहार्यः नटाधीनः न । यतो हि अस्मिन् आहार्याभिनये वर्णलेपनम्, आभूषणादीनि चान्तर्भवन्ति । एतानि च बहिष्ठादाह्रियन्ते इत्यतः अयम् आहार्यः इत्युच्यते । आहार्यं केवलं कस्यचन पात्रस्य आभूषणादिकमेव न सूचयति अपि तु कलादृष्ट्या, काल्पनिकसृष्ट्या च मुख्यं पात्रं निर्वहति । अतः अभिनयेषु आहार्यस्य नितान्तं प्राधान्यं विद्यते । तत्र च **अभिनवभारत्यां** प्रोक्तमस्ति यत् **समस्ताभिनयप्रयोगचित्रस्य भित्तिस्थानीयमाहार्यम्** [xl]इति । यक्षगाने आहार्यं विशिष्टा काल्पनिकी सृष्टिः । सृष्टिरियं मानवानां सौन्दर्यस्य प्रतीकमिव च दृश्यते । यदा नराणां कल्पनाविलासः कलापरिधौ परिपुष्टो भवति तदा सः सौन्दर्यकोटावन्तर्भवति । सौन्दर्यञ्च केवलं दृगादीन्द्रियाणां मोदप्रदं न अपि तु समग्रसमाजस्यैव विशिष्टसन्देशप्रदम् । समाजस्य हितप्रदः, सन्देशप्रदश्च स्वभावः यस्यां कलायां भवति सैव कला सौन्दर्यात्मिका भवति ।

नाट्यशास्त्रे **पुस्तः,अलङ्कारः,अङ्गरचना, सञ्जीवः**[xli] इति चतुर्विधं नेपथ्यं निरूपितम् । **पुस्तो** नाम नाट्ये आवश्यकानां शैलविमानदुर्गादीनां संरचना[xlii] । यक्षगाने च वाचा आङ्गिकेन वा साङ्केतिकरूपेण तेषामभिनयः क्रियते ।**अलङ्कारो** नाम माल्याभरणवाससां समायोगः[xliii] । अस्य च प्रयोगः यक्षगाने विपुलरूपेण द्रष्टुं शक्यः । विविधैः वर्णैः मुखस्य प्रसाधनम् अङ्गरचना इत्युच्यते । यक्षगाने विशिष्टरूपेण स्वभावानुसारं मुखप्रसाधनं क्रियते । नाट्यशास्त्रे सितनीलपीतरक्ताः मूलवर्णाः निरूपिताः[xliv]। तद्वदेव कारण्डवादयः उपवर्णाः अपि वर्णिताः[xlv] । नाट्यशास्त्रे तु पात्रस्य वयः, प्रकृतिं चानुसृत्य अङ्गरचनायाम् एकैकः वर्णः प्रयोक्तव्य इति निरूपितम् । किन्तु तादृशः वर्णविन्यासक्रमः यक्षगाने न विद्यते । अत्र च मुख्यतया सात्त्विकराजसतामसरूपेण पात्राणां विन्यासः क्रियते । **पीतवर्णः** सात्त्विकपात्राणि सूचयति । यथा ऋषिमुन्यादयः । **रक्तवर्णः** राजसपात्राणि सूचयति । यथा क्षत्रियराजाः। तामसपात्राणां **कृष्णवर्णः** प्रयुज्यते । यथा दुर्योधनरावणादयः ।

नाट्यशास्त्रे पुरुषाणां त्रिविधाः मुकुटाः प्रोक्ताः । ते च यथा –
पार्श्वगता मस्तकिनस्तथा चैव किरीटिनः ।
त्रिविधा मुकुटा ज्ञेया दिव्यपार्थिवसंश्रयाः ॥[xlvi]इति ।

यद्यपि यक्षगाने नाट्यशास्त्रे प्रोक्तमिव यथावत् मुकुटानां विभागः नैव विद्यते तथापि यक्षगाने स्वभावानुसार वयोऽनुसारं च प्रधानतया पुरुषपात्राणां त्रिविधाः मुकुटाः विद्यन्ते । यथा **किरीटवेषः, केदिगेमुन्दलेवेषः, मुण्डासुवेषः** इति । सामान्यतया राजपात्राणां किरीटवेषः भवति । यथा अर्जुनः, हंसध्वजः,दशरथः,दुर्योधनः,रावणः इत्यादयः । यूनां राजकुमाराणां च पात्राणां **केदिगेमुन्दलेवेषः** भवति । यथा अभिमन्युः, कुशलवौ, सुधन्वा इत्यादयः ।तद्वत् दर्पभूयिष्ठानां धीरोद्धतपात्राणां **मुण्डासुवेषः** भवति । एतदतिरिच्य आञ्जनेयः,महिषासुरः,विदूषकः,सर्पास्त्रं,गरुत्मान्,किरातराजः,वनेचरः इत्यादीनां पात्राणामपि विशिष्टः वेषसंरचनाक्रमः यक्षगाने अवलोक्यते । एवमेव स्त्रीपात्रेष्वपि राजकुमारी, पतिव्रतास्त्री, राजमाता, वृद्धा, दासी इत्येवं प्रकारेण वेषसंरचना क्रियते । अत्र च यक्षगाने एकः विशेषः अस्ति यत् पुरुषाः एव स्त्रीपात्राणि निर्वहन्ति इति ।

अपि च नाट्यशास्त्रे शुद्धः, विचित्रः, मलिनश्चेति त्रिविधः वेषः निरूपितः[xlvii]। देववन्दनम्, मङ्गलकर्म, विवाहविधिः इत्यादिषु विद्यमानाः सर्वेऽपि शुद्धवेषाः भवन्ति[xlviii] । किन्तु यक्षगाने पुराणकथाः एव कथावस्त्वित कारणेन कथापात्रदृष्ट्या एव पात्राणां विभागः क्रियते । अतः यक्षगाने देवेन्द्रः, रामः, स्त्रीपात्राणि, ब्राह्मणाः, ऋषयः, इत्यादीनि पात्राणि शुद्धवेषेषु अन्तर्भवन्ति । राजसप्रवृत्तियुतानि च पात्राणि विचित्रवेषेषु अन्तर्भवन्ति । यथा यक्षगन्धर्वादयः । किरातादीनि पात्राणि मलिनवेषेष्वन्तर्भवन्ति ।

एवं - रसा भावा ह्यभिनया धर्मी वृत्तिप्रवृत्तयः।
सिद्धिः स्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः॥ इति भरतमुनिना यानि नाट्यतत्त्वानि नाट्यशास्त्रे प्रतिपादितानि तेषु बहूनि यक्षगाने सङ्गच्छन्त इत्यतः अयमेकः शास्त्रीयः कलाप्रकारः इत्यत्र नास्ति सन्देहः।

****

१.नाट्यशास्त्रम्.२३.२१९
२. तत्रैव २३.२२३
३. तत्रैव ८.६
४. तत्रैव २१.३
५. तत्रैव /अ.भा.२३.२
६.चतुर्विधं तु नेपथ्यं पुस्तोऽलङ्कार एव च ।
तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सञ्जीव एव च ॥ / तत्रैव २३.४
७.शैलयानविमानानि चर्मवर्मध्वजा नगाः ।
यानि क्रियन्ते नाट्ये हि स पुस्त इति सञ्ज्ञितः ॥/ तत्रैव २३.८
८.अलङ्कारस्तु विज्ञेयो माल्याभरणवाससाम् ।
नानाविधसमायोगोऽङ्गोपाङ्गविनिर्मितः ॥/ तत्रैव २३.९
९.सितो नीलश्च पीतश्च चतुर्थो रक्त एव च ।
एते स्वभावजा वर्णा यैः कार्यं त्वङ्गवर्तनम् ॥ / तत्रैव २३.७३
१०. तत्रैव २३.७४-८०
११. तत्रैव २३.१३५
१२.शुद्धो विचित्रो मलिनस्त्रिविधो वेष उच्यते ।/ तत्रैव २३.११७
१३. तत्रैव २३.११८

नाट्यशास्त्रोक्ततत्त्वेपु एकोनपञ्चाशद्भावानाम् अनुशीलनम्

योगेन्द्रकुमार
(शोधच्छात्रः,साहित्यविभागः)
क.जे.सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्,
विद्याविहार, मुम्बई-400077

"न भावहीनोऽस्ति रसः न भावो रसवर्जितः ।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत् ॥" इति [1]

भावशब्देन चित्तवृत्तिविशेषः विवक्षितोऽस्ति। भावाः चित्तवृतिरूपेण प्राणिमात्रे विद्यमानाः भवन्ति। नाट्यशास्त्रे भरतेननाट्यशास्त्रस्य सप्तमाध्याये भावस्य शास्त्रीयस्वरूपविवेचनं कृतम्। उक्तञ्च तेन-

"किं भवन्तीति भावाः? किं वा भावयन्तीति भावाः?उच्यते-वागङ्गसत्त्वोपेतान् काव्यार्थान् भावयन्तीति भावा " इति[2]

अतः प्रसंगप्राप्तान् विभावान् तथा अनुभावान् भावरूपेण स्वीक्रियेते, यतोहि रसनिष्पत्तौ सर्वेषां योगः अस्ति। अतः सर्वप्रथमं भरतमुनिना अध्यायेऽस्मिन् कथ्यते-

"विभावैराहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते ।
वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः ॥" इति [3]

चित्तवृत्तिरूपेण स्थितत्वात् 'भावः' इति कथ्यते। अथवा वाचिकादिभिरभिनयैः चित्तवृत्तिरूपकाव्यार्थो भावितत्वात् 'भावः' कथ्यते। कथ्यते यत् वाचिक-आङ्गिक-सात्विकादिभिरभिनयैः सह ये काव्यार्थान् अर्थात् रसान् भावयन्ति, ते भावाः कथ्यन्ते। यदुक्तम्-

"नानाभिनयसम्बद्धान् भावयन्ति रसानिमान् ।
यस्मात्तस्मादमी भावाः विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः॥"इति[4]

तदुक्तमभिनवभारत्याम् –

"वागङ्गसत्त्वोपेतान् काव्यार्थान् भावयन्तीति भावाः ।"इति[5]

विभावानुभावादयः सर्वे अमी भावत्वेन भावाः । अतः विभावादीनामपि आलोचनमत्र क्रियते ।

तत्र विभावो यथा-

भरतानुसारं विभावशब्दस्यार्थः विज्ञानमस्ति। विभावः कारणं हेतुः इत्यादयः पर्यायवाचिनः शब्दास्सन्ति। एतैः वाचिक-आङ्गिक-सात्विकाभिनयाः विभाविताः भवन्ति,अतः विभावाः कथ्यन्ते। यदुक्तम्-

"अथ विभाव इति कस्मात्? उच्यते- विभावो विज्ञानार्थः। विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यतेऽनेनेति वागङ्गसत्त्वाभिनयाः इत्यतो विभावाः। यथा विभावितं विज्ञातमित्यनर्थान्तरम्।"इति[6]

किञ्च अग्निपुराणे –

"विभाव्यते हि रसादिर्यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम स द्वेधाऽऽलम्बनोद्दीपनात्मकः॥"इति[7]

विभावौ द्विधा भवतः- आलम्बनम् उद्दीपनञ्च। येनाश्रयेण रत्यादिस्थायिभावाः उद्बुद्धाः भवन्ति, तद् आलम्बनमिति कथ्यते। आलम्बनविभावः नायकनायिकदयः भवन्ति। आलम्बनविभावोऽपि आश्रयविषयत्वेन द्विधा भवति । यथा शृङ्गारे शकुन्तलाविषयकरतिमति दुष्यन्ते शकुन्तला विषयभूता आश्रयस्तु दुष्यन्तः । नायकनायिकादीनां संस्कारे विद्यमानात्रत्यादिभावानुद्दीप्तान्ये कुर्वन्ति ते "उद्दीपनविभावाः" कथ्यन्ते। पण्डितराजजगन्नाथेन उद्दीपनविभावो भावानामुत्कर्षः मन्यते। उद्दीपकानि निमित्तानीति भावप्रकाशे स्पष्टमुक्तम् । [8]

शार्ङ्गदेवेन संगीतरत्नाकरे चतुर्णामुद्दीपनविभानामुल्लेखः क्रियते । तद्यथा- आलम्बनगतगुणः, आलम्बनगतचेष्टा, आलम्बनगतालङ्काराः, आलम्बनगततटस्थता च। एतेपु आलम्बनगतगुणाः यथा-यौवनम्, रूपम्, लावण्यम्, सौन्दर्यम्, अभिरूपता, मार्दवम्, सौकुमार्यञ्च।

आलम्बनगतचेष्टाः दशधा भवन्ति- लीला-विलास-विच्छित्ति-विभ्रम-किलकिञ्चित्-मोट्टायित-कुट्टमित-विव्वोक-ललित-विहृताश्च। आलम्बनालङ्काराः चत्वारः सन्ति । ते वस्त्रालङ्कार-भूपालङ्कार-माल्यालङ्कार-अङ्गलेपनालङ्काराश्च। देशकालाश्रिततटस्थनामकम् उद्दीपनं विभावचन्द्रिका, धारागृहम्, चन्द्रोदयः, कोकिलालापः, माकन्दः, मन्दमारुतः, षट्पदस्वनम्, लतामण्डपम्, भूगेहः, दीर्घिका, जलदारवः, प्रासादगर्भम्, सङ्गीतम्, क्रीडाशैलम्, तथा सरितादयस्सन्ति। शारदातनयेन भावप्रकाशे अष्टप्रकारकाणामुद्दीपनविभावानां चर्चा क्रियते- ललित-ललिताभास-स्थिर-चित्र-रूक्ष-खर-निन्दित-विकृताश्च। इमे अष्टरसैः सम्बद्धाः सन्ति। एभिरभिनयैः स्थायीभावा उद्दीप्ताः क्रियन्ते, प्रतीतियोग्याश्च भवन्ति, अतः विभावाः कथ्यन्ते।

अनुभावः

"वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः॥"इति[9]

अनुभावाः वाचिक-आङ्गिकसात्विकाभिनयानामन्तर्गताः अनेकचेष्टाः एवं व्यापारास्सन्ति। भावः अयमस्ति यत् नाट्ये वाचिक-आङ्गिक-सात्त्विकाभिनयैः शाखया, अङ्गेन एवं उपाङ्गेन च युक्ताः अर्थाः अनुभाविताः भवन्ति, अतः ते अनुभावाः कथ्यन्ते। परवर्ती-आचार्यैः अनुभावस्य व्युत्पत्तिपरकार्थः क्रियते- "अनु पश्चात् भावो यस्य सोऽनुभावः"अर्थात् भावाद् पश्चात् ये भवन्ति ते अनुभावाः भवन्ति। भावाद् पश्चात् उत्पन्नाः भवन्तो भावाः कार्यरूपाः मन्यन्ते ।

अग्निपुराणानुसारं शरीर-मन-वचन-बुद्ध्या अनुभावाः आरभ्यन्ते। अतः अनुभावस्य चत्वारः प्रकाराः सन्ति- चितारम्भ-शरीरारम्भ-वागारम्भ-बुद्ध्यारम्भाश्च। चित्तारम्भानुभावः द्विप्रकारकौ स्तः- पौरुषः स्त्रैणश्च। एतयोः पुरुषगत मनोऽनुभावः अष्टप्रकारकाः भवन्ति- शोभा-विलास-माधुर्य-स्थैर्य-गाम्भीर्य-ललित-औदार्य-तेजश्च। स्त्रीगताः मनोगताः आरम्भानुभावाः द्वादश भवन्ति- हाव-भाव-हेला-शोभा-कान्ति-दीप्ति-माधुर्य-धैर्य-प्रागल्भ्य-औदार्य-स्थैर्य-गाम्भीर्याश्च। शरीरस्य अङ्गप्रत्यङ्गैः कृतो व्यापारः शरीरारम्भानुभावः अस्ति। एतस्य द्वादश भेदास्सन्ति- लीला-विलास-विच्छित्ति-विभ्रम-किलकिञ्चित्-मोट्टायित-कुट्टमित-विव्वोक-ललित-विकृत-क्रीडित-केलिश्च। वागारम्भानुभावस्य द्वादशभेदास्सन्ति- आलाप-विलाप-संलाप-प्रलाप-अनुलाप-अपलाप-सन्देश-अतिदेश-निर्देश-आदेश-उपदेश-व्यपदेशश्च। बुद्ध्यारम्भानुभावः त्रिप्रकारको भवति- रीति-वृत्ति-प्रवृत्तिभेदात्।[10]

नाट्यशास्त्रानुसारं भावाः विभावानुभावयुक्ताः भवन्ति। अत्र विभावानुभावौ लोके प्रसिद्धौ स्तः। विभावाः अनुभावाश्च यथा लोके दृश्यन्ते तथैव नाट्येऽपि दृश्यन्ते। अतः नाट्ये विभावानुभावाः लोकस्वभावानुरूपाः भवन्ति। अधुना विभावैःएवम् अनुभावैश्च युक्तानां भावानां लक्षणं सोदाहरणम् उपस्थापनं करिष्यते।

भावानां सङ्ख्या एकोनपञ्चाशद् भवन्ति। एतेषु अष्टौ स्थायिभावाः, त्रयस्त्रिंशद् व्यभिचारिभावाः तथा अष्टौ सात्विकभावाः सन्ति। एतैः भावैः सामान्यगुणानां योगेन सामाजिकहृदये रसानुभूतिः भवति। सामान्यगुणयोगस्य अयमर्थः अस्ति यत्, विशिष्टाः तथा व्यक्तिपरकभावाः साधारणीकरणभूमौ प्रतिष्ठिताः भवन्ति। एवं साधारणीकृतविभावादिभिः सामाजिकस्य हृदये रसानुभूतिः भवति।

स्थायिभावः

यः भावः अनुकूलैः प्रतिकूलैर्वा भावैः विच्छिन्नं न भवति तथा समुद्रवत् सर्वान् भावान् आत्मसात् करोति , सः स्थायिभाव इति कथ्यते। येन प्रकारेण समुद्रः सर्वप्रकारं जलम् आत्मसात् कृत्वा एकरूप क्रियते, तथैव स्थायिभावः सर्वानुकूल-प्रतिकूलभावान् आत्मसात् कृत्वा आत्मरूपं नयति। उक्तमेतत्-

"विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः॥"इति[11]

भरतानुसारं स्थायिभावाः अष्टौ सन्ति- रतिः,हासः,शोकः,क्रोधः,उत्साहः,भयं,जुगुप्सा,विस्मयश्च।

“रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्त्तिताः॥”इति [12]

रतिः- भरतेन रतिः श्रृङ्गाररसस्य स्थायीभावः इति मन्यते। रतिभावः ऋतुः, माला, अनुलेपनम्, आभरणम्, प्रियजनः, उत्तमभोजनम्, परभवनोपयोगः, आनुकूल्यादिभिर्विभावैः उत्पन्नः भवति। प्रसन्नतायुक्तमुखम्, मधुरवचनम्, भ्रूक्षेपः, कटाक्ष इत्यादिभिः अनुभावैः एतेषामभिनयः कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।९)

हासः- हर्षादयैः यः चित्तस्य विकासः भवति, तं हासः कथ्यते। हास-स्थायीभावः परचेष्टानुकरणम्, कुहकः, असम्बद्धप्रलापः, कुटिलकर्म तथा मूर्खतायाः प्रदर्शने आदयः विभावैः उत्पन्नः भवति। हसित-स्मित-उपहसित-अपहसित-अतिहसितादयः अनुभावैः एतस्याभिनयः कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।१०)

शोकः- करुणरसस्य स्थायीभावः शोकः अस्ति। शोकस्थायीभावः प्रियजनस्य वियोगः, विभव-नाशः, वधम्, बन्धनम्, दुःखानुभवमादयः विभावैः उत्पन्नः भवति। अश्रुपातः, विलापः, वैवर्ण्यम्, स्वर-भङ्गम्, अङ्गशैथिल्यम्, भूमिपतनम्, करुणक्रन्दनम्, दीर्घ-निःश्वासः, जडता, उन्मादः, मोहः तथा मरणादयः अनुभावैः एतस्याभिनयं कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।११-१४)

क्रोधः- क्रोध रौद्ररसस्य स्थायीभावः भवति। क्रोधनामक स्थायीभाव संघर्षः, आक्रोशः, कलहः, विवादः, प्रतिकूलतादयः विभावैः उत्पन्नः भवति। एतस्याभिनयं नासिकाकुञ्चने, अक्ष-आरोहे, ओष्ठचर्वणनम्, गण्डस्थलस्य स्फुरणादयः अनुभावैः क्रियते। इदं रिपुज-गुरुज-प्रणयिप्रभव-भृत्यज एवं कृत्रिम भेदेन पञ्चधा भवति।(नाट्यशास्त्रम्- ७।१५-२०)

उत्साहः- वीररसस्य स्थायीभावः उत्साहः वर्त्तते। उत्साहनामकं स्थायीभावः उत्तमप्रकृतिजनेषु भवति। अयम् अविषादः, शक्तिः, धैर्यम्, शौर्यादयः विभावैः उत्पन्नो भवति। धैर्यं, त्यागः , वैशारद्यादयः अनुभावैः एतस्याभिनयं कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।२१)

भयम्- भयानकरसस्य स्थायीभावः भयं वर्त्तते। इदं स्त्रीभिः क्षुद्रजनैः सम्बद्धः मन्यते। स्थायीभावोऽयं गुरुजनं तथा राजानं प्रति अपराध-कस्मित हिंसकपशु-वन-पर्वत-सर्पस्य दर्शनम्, भर्त्सना, दुर्दिनम्, रात्रि, तमस्, उलूकादयः शब्दानां श्रवणमादयः विभावैः उत्पन्नो भवति। कस्मित हस्तपादम्, हृदयकम्पनम्, मुखशोषम्, जिह्वापरिलेहनम्, स्वेदः, वेपथुः, त्रासः, परित्राणः, पलायनम्, आक्रोशनमादयः अनुभावैः एतस्याभिनयं कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।२२-२५)

जुगुप्सा- बीभत्सरसस्य स्थायीभावः जुगुप्सा वर्त्तते। जुगुप्सा नामकं स्थायीभावस्य सम्बन्धः स्त्रीणां तथा अधमप्रकृतिजनैः अस्ति स्थायीभावोऽयम् अरुचिकर वस्तूनां दर्शनम् वं श्रवणादयः विभावैः उत्पन्नो भवति। सर्वाङ्ग-सङ्कोचम्, ष्ठीवनम्, मुख-सङ्कोचम्, हृदयपीडा, हृदय-कम्पनादयः अनुभावैः एतस्याभिनयं कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।२६)

विस्मयः- अद्भुतरसस्य स्थायीभावः विस्मयः अस्ति। विस्मयनामकं स्थायीभावः माया, इन्द्रजालम्, चित्रम्, पुस्तकम् एवं शिल्पकलायाः अतिशयितादयः विभावैः उत्पन्नो भवति। नेत्रैः विस्फारणम्, निर्निमेषदृष्टिः, भ्रूक्षेपः, रोमांचम्, शिरःकम्पनम्, साधुवादादयः अनुभावैरभिनयं कुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- ७।२७)

व्यभिचारिभावः

वि-अभि उपसर्गपूर्वकेण गत्यर्थकेन ‘चर्’ इति धातुना ‘व्यभिचारी’ति शब्दः निष्पद्यते। यस्यार्थः- चलनम्- गतिशीलम् च अर्थात् ये विविधप्रकारैः रसाभिमुख्येन सञ्चरणशीलाः भवन्ति, ते व्यभिचारिभावाः कथ्यन्ते।[13]
धनञ्जयरनुसारम्- येन प्रकारेण समुद्रे तरङ्गाः उद्गच्छन्ति तथा विलीनं भवन्ति, तथैव व्यभिचारिभावाः रत्यादिस्थायिभावेषु उन्मग्न निमग्नाश्च भवन्ति।

विशेषादभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ॥[14]

अर्थात् इमे स्थायीभावेषु नानारूपेण विचरन्ते, अतः ‘सञ्चारीभावः’ अपि कथ्यन्ते।व्यभिचारिभावाः त्रयस्त्रिंशद् भवन्ति- निर्वेद-ग्लानि-शङ्का-श्रम-धृति-जडता-हर्ष-दैन्य-औग्र्य-चिन्ता-त्रास-असूया-अमर्ष-गर्व-स्मृति-मरण-मद-सुप्त-निद्रा-विबोध-व्रीडा-अपस्मार-मोह-सुमति-अलसता-वेग-तर्क-अवहित्था-व्याधि-उन्माद-विषाद-औत्सुक्य-चपलता च।

निर्वेदः- निर्वेदनामकंव्यभिचारिभावःदरिद्रता, रोगम्, अपमानम्, तिरस्कारः, आक्रोशः, क्रोधः, ताडनम्, प्रियजन-वियोगः, तथातत्त्वज्ञानादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।स्त्री, अधमएवंकुत्सितजनानांरुदनम्, निःश्वासः, उच्छवासादयःअनुभावैःएतस्याभिनयंकुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६५)

ग्लानिः- ग्लानिनामकंव्यभिचारीभावःवमनम्, रेचनम, व्याधिः, तपः, नियमः, उपवासम्, मनस्तापः, कामभावः, मद्यसेवनम्, अतिशयव्यायामः, दीर्घयात्रा, भुभुक्षा, पिपासा, निद्राभङ्गमादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।अस्यव्यभिचारीभावस्यअभिनयंवाण्यांदुर्बलता, कान्तिहीनता, नेत्रम्, उदरएवंकपोलानांक्षीणता, मन्दगतिः, कम्पनम्, अनुत्साहः, गात्रक्षीणता, विवर्णता, तथास्वरभङ्गादयःअनुभावैःकुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६७)

शङ्का- शङ्कानामकंव्यभिचारीभावःचौर्यकार्येप्राप्तः, राजद्रोहः, पापकर्मादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।कम्पनम्, मुखशोषः, जिह्वापरिलेहनम, वैवर्ण्यम्, स्वरभङ्गः, कण्ठावरोधादयःअनुभावैःएतस्याभिनयंकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६७-३६८)
शङ्काद्विधाभवति- आत्मसमुत्थापरसमुत्थाच।

श्रमः- श्रमनामकंव्यभिचारीभावःदूरयात्रा, व्यायामादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।दीर्घ-निःश्वासः, शिथिलगतिः, सीत्कारादयःअनुभावैःएतस्याभिनयंकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६०)

असूया- असूयानामकंव्यभिचारीभावःपरैश्वर्यम्, सौभाग्यम्, विद्या, बुद्धिःएवंलीलादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।सभायांदोषख्यापनम्, गुणानांतिरस्कारः, दृष्टि-निक्षेपः, अधोमुखम्, भृकुटीक्षेपः, परनिन्दादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३५८-३५९)

मदः- मदनामकंव्यभिचारीभावःमद्यस्योपयोगेनउत्पन्नोभवति।भरतेनमदस्यत्रिप्रकाराःउच्यते- तरुण-मध्य-अवकृष्टश्च। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३५८-३५९)

आलस्यम्- आलस्यनामकःव्यभिचारीभावःखेदः, व्याधिः, गर्भम्, श्रमादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःअरुचिः, शयनम्, आसनम्, निद्रा, तन्द्रादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३५९)

दैन्यम्- दुर्गतिःतथामनस्तापादयःविभावैःदैन्यंव्यभिचारीभावःउत्पन्नोभवति।अधीरता, शोरोरोगम्, अन्यमनस्कता, अशुद्धतादयःअनुभावैःएतस्याभिनयंकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६१)

चिन्ता- चिन्तानामकंव्यभिचारीभावःइष्टनाशः, ऐश्वर्यस्यक्षयः, दरिद्रतादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयम्उच्छवासः, निःश्वासः, सन्तापः, ध्यानम्, अधोमुख-चिन्तनम्, गात्र-क्षीणतादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६१)

मोहः- मोहनामकंव्यभिचारीभावःदैवोपघातः, आकस्मिकघातः, व्याधिः, भयम्, आवेगः, पूर्वबैरस्यस्मरणादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।निश्चेष्टता, भ्रमणम्, पतनम्, आघूर्णनम्, अदर्शनादयःअनुभावैःअस्याभिनयंकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६३)

स्मृतिः- स्मृतिनामकंव्यभिचारीभावःस्वास्थ्यम्, निद्राभङ्गः, दर्शनम्, चिन्ता, अभ्यासादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःशिरःकम्पनम्, अवलोकनम्, भृकुटिक्षेपादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६२)

धृतिः- धृतिःनामकंव्यभिचारीभावःविज्ञानम्, शौर्यम्, श्रुतिः, विभवः,शौचम्, आचारः, गुरुभक्तिः, मनोरथः, क्रीडादयःविभाविःउत्पन्नोभवति।एतस्यव्यभिचारीभावस्याभिनयंप्राप्तविषयानामुपयोगःतथाअप्राप्तः, अतीतः, विनष्टः, एवम्उपहतादयःअनुभावैःकुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३८०)

व्रीडा- व्रीडानामकंव्यभिचारीभावःकार्यकारणमूलात्मकंभवति।अयंगुरुजनंप्रतिविपरीताचरणम्, अपमानम्, प्रतिज्ञायारनिर्वाहः, तथापश्चात्तापादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।लज्जा, अधोमुख-चिन्तनम्, भूमिलेखनम्, वस्त्र-अङ्गुलीयकस्यस्पर्शम्, नख-निकृन्तनादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६२)

चपलता- चपलतानामकव्यभिचारीभावःरागः, द्वेषः, मात्सर्यम्, अमर्षः, ईर्ष्या, प्रतिकूलतादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।वाक्पौरुष्यम्, निर्भर्त्सनम्, वध-बन्धनम्, प्रहारः,ताडनादयःअनुभावैःएतस्याभिनयःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६४)

हर्षः- हर्षनामकंव्यभिचारीभावःमनोरथलाभः, प्रियजनसमागमः, मनः-परितोषः, देवता, गुरुः, राजातथास्वामीप्रसन्नता, भोजनम्, वस्त्रम्तथाधनप्राप्तिःतथाउपभोगादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयंनेत्रस्यतथामुखस्यप्रसन्नता, प्रियभाषणम्, आलिङ्गनम्, रोमाञ्चम्, अश्रुपातः, स्वेदादयःअनुभावैःकुर्यात्। (नाट्यशाम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६४)

आवेगः- आवेगनामकंव्यभिचारीभावःउत्पातः, वर्षा, पवनः, अग्निप्रकोपः, कुञ्जरभ्रमणम्, प्रियाप्रियस्यश्रवणम्, वइपत्तइःतथाप्रहारादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःअङ्ग-शैथिल्यम्, मनःखेदः, वैवर्ण्यः, विषादःतथाविस्मयादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६५)

जडता- जडतानामकंव्यभिचारीभावःइष्टानिष्टविषयस्यश्रवणम्एवंदर्शनंतथाव्याध्यादयःविभाविःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयंअकथनम्, अस्पष्टताभाषणम्, मौनम्, निर्निमेषपश्यन्, परवशंभवनादयैःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशाम्- गास्त्रयकवाड- पृष्ठ- ३६६)

गर्वः- गर्वनामकंव्यभिचारीभावःऐश्वर्यम्, कुलम्, रूपम्, यौवनम्, विद्या, बल-धनलाभादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।असूया, अवज्ञा, आघर्षणम्, अनुत्तरम्, अङ्गावलोकनम्, प्रहसनम्, कठोरवचनम्, गुरु-व्यतिक्रमः, अधिक्षेपः, वचन-विच्छेदादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६६)

विषादः- विषादनामकंव्यभिचारीभावःकार्यस्यनिर्वाहःनकृत्वातथादैव्यापत्त्याउत्पन्नोभवति।उत्तम-मध्यमजनानांविषादस्याभिनयःवैचित्र्योपायःएवंचिन्तातथाअधमजनानांविषादस्याभिनयनिद्रा, निःश्वासःएवंध्यानादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६७)

उत्सुकता - उत्सुकताव्यभिचारीभावःप्रियजनवियोगःएवंतेषांस्मरणेनउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःनिद्रा, तन्द्रा, शयनम्, दीर्घ-निःश्वासः, शरीरस्यबृहद्आदयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६७)

निद्रा- निद्रानामकंव्यभिचारीभावःआलस्यम्, दुर्बलता, श्रान्तः, श्रमः, चिन्ता, मदादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।मुखस्यभारीपन (), शरीरकम्पनम्, नेत्रघूर्णनम्, जम्भा, मन्दता, जडता, अक्षिनिमीलनादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६७)

अपस्मारम्- अपस्मारनामकंव्यभिचारीभावःभूत-प्रेत-पिशाचैःगृहीतः, तेषांस्मरणेन, उच्छिष्टभोजनम्, शून्यगृहसेवनम्, समयपालनेअसावधानीतथाव्याधादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःस्फुरणम्, निःश्वासः, कम्पनम्, धावनम्, पतनम्, स्वेदः,मुखफेनम्, स्तम्भनादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६८)

सुप्तः- सुप्तनामकंव्यभिचारीभावःनिद्रा-व्याघातः, विषयोपभोगः, मोहितः, भूमिशयनम्, शरीरस्यप्रसारण-सङ्कोचनञ्चादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःउच्छवासः, निश्चेष्टता, अक्षि-निमीलनम्, इन्द्रियसम्मोहनम्, स्वप्न-जल्पनादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६८-३६९)

विबोधः- बोबोधनामकंव्यभिचारीभावःआहार-परिणामः, निद्राभङ्गः, स्वप्नान्तेतीव्रशब्दः, स्पर्शम्, श्रवणादयःविभावैःउत्पन्नोजायते।एतस्याभिनयःजम्भाक्रिया, मुख-नेत्रस्यचमलनादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६९)

अमर्षः- अमर्षनामकंव्यभिचारीभावःविद्या, ऐश्वर्यम्, शौर्यम्तथाबलेअधिकजनैःअपमानितःएवंतिरस्कृतःजनेषुउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःशिरःकम्पनम्, स्वेदागमः, अधोमुख-चिन्तनम्, ध्यानम्, अध्यवसायादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३६९-३७०)

अवहित्त्था- अवहित्त्थानामकंव्यभिचारीभावःलज्जा, भयम्, पराजयः, गौरवः, छलादयःचविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःअन्यथा-कथनम्, अवलोकनम्, कथा-भङ्गः, कृत्रिम-धर्यादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७०)

उग्रता- उग्रतानामकः व्यभिचारीभावः चौर्याद् गृहीतः, राजानं प्रति अपराधः, असत्य-भाषणादयः विभावैः उत्पन्नो जायते। वधम्, बन्धनम्, ताडनादयः अनुभावैः एतस्याभिनयः करणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७०)

मतिः- मतिनामकंव्यभिचारीभावःनानाशास्त्र-चिन्तनंतथाऊहापोहादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।शिष्येभ्यःउपदेशम्, अर्थप्रख्यापनम्, संशयंदूरीकरणादयःअनुभावैःएतस्याभिनयंकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७१)

व्याधिः- व्याधिनामकंव्यभिचारीभावःवात-पित्त-कफस्यसन्निपातेनउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःअङ्ग-शैथिल्यम्, शरिर-विक्षेपः, मुख-सङ्कोचादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७१)

उन्मादः- उन्मादनामकंव्यभिचारीभावःप्रियजनवियोगः, विभवनाशः, वात-पित्त-कफस्यप्रकोपादयःविभावैःजायते।अकारणंरुदनम्, हसनम्,शयनम्उत्थानम्, धावनम्, गायनम्, नृत्यम्, पठनम्,भस्मावधूलनम्, तृणमर्दनम्, तथाअन्यविकारैःअस्याभिनयःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७२)

मरणम्- मरणनामकंव्यभिचारीभावःव्याधिःएवंकशाघातादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतेषुव्याधिजन्यमरणम्, व्यभिचारीभावस्याभिनयः, गात्राणांविषण्णता, निश्चेष्टता, नेत्र-निमीलनम्, इन्द्रियाणांस्वव्यापारेणवितरणमादयःअनुभावैःकुर्यात्तथाअभिघातजन्यमरणस्याभिनयःशस्त्रप्रहारः, सर्पदंशम्, विषपानम्, गजादैःपतनम्, हिंसकपशुभिःमारणमादयःअनुभावैःकरणीयम्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७२)

त्रासः- त्रासनामकंव्यभिचारीभावःविद्युत्पातः, उल्कापातः, वज्रपातः, भयङ्करध्वनयादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।अस्यव्यभिचारीभावस्याभिनयःअङ्ग-सङ्कोचः, कम्पनम्, स्तम्भनम्, रोमाञ्चम्, प्रलापादयःअनुभावैःकुर्यात्। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७३-३७४)

वितर्कः- वितर्कनामकंव्यभिचारीभावःसन्देहः, विमर्शः, तर्क-वितर्कादयःविभावैःउत्पन्नोभवति।एतस्याभिनयःविविधप्रकारस्यविचार-विमर्शः, मन्त्रगोपनम्, प्रश्न-सम्प्रधारणमादयःअनुभावैःकरणीयः। (नाट्यशास्त्रम्- गायकवाड- पृष्ठ- ३७४)

सात्विकभावाः

सत्वं मनसः एकाग्रतायाः उत्पन्नं भवति।अश्रु-रोमाञ्च-वेपथ्वादयःतस्यस्वभावाःसन्ति।तस्याभिनयःअन्यमनसानकर्तुंशक्यते।एकाग्रमनसास्वरभेदादयःअभिनयाःयत्क्रियन्ते ते सात्त्विकाभिनयाः सन्ति।स्तम्भः, स्वेदः, रोमाञ्चः, स्वरभेदः, वेपथुः, वैवर्ण्यम्, अश्रुः, प्रलयश्च- इमेअष्टौ सात्त्विकभावाःकथ्यन्ते।यदुक्तम्-

"स्तम्भःस्वेदोऽथरोमाञ्चःस्वरभेदोऽथवेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयइत्यष्टौसात्त्विकाःमताः॥"[15]

इमेभावाःसत्त्वेनउत्पन्नाःभवन्ति, अतःसात्त्विकभावाःकथ्यन्ते।

स्तम्भः- हर्षः, भयम्, शोकः, विस्मयः, विषादः,रोषादयःकारणात्मनअथवाशरीरस्यव्यापारान्निश्चेष्ट्यते, स्तम्भःअस्ति।स्तम्भ-सात्त्विकभावस्याभिनयःनिश्चेष्टता, निष्कम्पम्, स्थिरता, शून्यता, जड-आकृतिःतथाशरीरंसुदृढादयःकरणीयः।

स्वेदः- क्रोधः, भयम्, हर्षः, लज्जा, तापः, घातः, व्यायामः, श्रमः, रतिः, धूपादयःकारणात्शरीरात्जलस्यनिर्गच्छन् 'स्वेदः' अस्ति।व्यजनसञ्चालनम्, स्वेदशौचम्, पवनस्याभिलाषादयःस्वेदःसात्त्विकभावस्याभिनयःकरणीयः।

रोमाञ्चः- हर्षः, विस्मयः, भयम्, क्रोधः, शीतम्, स्पर्शम्, रोगादयात्कारणात् () रोंगटेखडेहोना 'रोमाञ्चः' कथ्यते।रोमाञ्चःसात्त्विकभावस्याभिनयःशरीरस्यबारम्बारंकण्टकितेन, पुलकितेनतथागात्रस्पर्शेनकुर्यात्।

स्वरभेदः- हर्षः, पीडा, भयम्, क्रोधः, जरा (वृद्धावस्था), रूक्षता, मदादयात्कारणात्कण्ठावरोधः 'स्वरभेदः' कथ्यते।स्वरभेदःसात्त्विकभावस्याभिनयःस्वराणांभिन्नताएवंप्रसन्नतयाकरणीया।

वेपथुः- हर्षः, भयम्, शीतम्, रोषः, स्पर्शम्, जरातथारोगात्कारणात्कम्पनंवेपथुःकथ्यते।कम्पनम्, स्फुरितम्, तथाभयात्वेपथुःसात्त्विकभावस्याभिनयःकरणीयः।

वैवर्ण्यः- शीतम्, भयम्, क्रोधः, श्रमः, रोगः, क्लान्तिःतथातापात्कारणात्उत्पन्नःकान्ति-मलिनता 'वैवर्ण्यः' कथ्यते।

अश्रुः- आनन्दः, अमर्षम्, धूम्रः, अञ्जनम्, जम्भा, भयम्, शोकः, शीतम्, रोगात्कारणात्नेत्रेजलमागमनम्'अश्रुः''अस्ति।अश्रु-सात्त्विकभावस्याभिनयःनेत्रेअश्र्वागमनेन, अश्रोःपतनंएवंशुचिःद्वाराकरणीयः।

प्रलयः- श्रमः, अचेतना, मदम्, निद्रा, घातः, एवंमोहेनप्रलयःउत्पन्नोभवति।प्रलयनामकसात्त्विकभावस्याभिनयःनिश्चेष्टक्ता, निष्कम्पम्, अस्पष्टश्वासः, भूमि-पतनादैःकरणीयः॥

इत्थंएकोनपञ्चाशद्भावानांमयाविवेचनम्/अनुशीलनंकृतम्।

पादटिप्पणी सन्दर्भग्रन्थसूची च -

१- नाट्यशास्त्रम्- ६।३७
२- नाट्यशास्त्रम्-
३- नाट्यशास्त्रम्- ७।३
४- नाट्यशास्त्रम्- ७।३
५- अभिनवभारती- भाग-१
६- नाट्यशास्त्रम्- भाग-१
७- अग्निपुराणोक्त काव्यालङ्कारशास्त्र-४-५१
८- निमित्तानि चोद्दीपकानीति बोध्यम्- भावप्रकाशन, पृष्ठ-४-५
९- नाट्यशास्त्रम्- ७।५
१०- अग्निपुराणोक्त काव्यालङ्कारशास्त्र-४।६०-७०
११- दशरूपक- ४।७
१२- नाट्यशास्त्रम्- ६।१७
१३- वि अभि इत्येतावुपसर्गौ। चर इति गत्यर्थो धातुः। विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः। नाट्यशास्त्रम्
१४- दशरूपक- ४।७
१५- नाट्यशास्त्रम्- ७।९४

नाट्यशास्त्रानुसारम् अमरुशतकस्थनायिकाभेदसमीक्षणम्

अश्विनीकदम
अनुसन्धात्री
क.जे.सोमैयासंस्कृतविद्यापीठम्

रसः नाट्यम्। नाट्यमपि रसः। **"न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रतीयते "**[१] इत्युक्तदिशा रसः प्रमुखं तत्त्वम् । तस्मात् नाट्ये रसस्य प्राधान्यं वर्त्तते । एवं नाट्ये रसः रसेषु च शृङ्गारः श्रेष्ठः इत्येतत्सर्वैः स्वीकृतमेव । काव्येषु नायकनायिकयोः परस्परानुरागः सामाजिकेषु रतिं जनयति । तेषां कार्यकलापाः रतिमनुभावयन्ति । चिन्ताहर्षादयः रतिं पोषयित्वा सामाजिकेषु शृंगाररसरूपं प्रकल्पयन्तीति भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे रससिद्धान्तस्याधारभूते रससूत्रे प्रतिपादितम् । तद्यथा-**"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः"** इति । भरतस्तु विभावो नाम विज्ञानार्थः इति वदति । विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्याया।:

"बहवोऽर्थाः विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रया।:
अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञित।।: "[२]इति

स च विभावो द्विविध-:

१) आलम्बनविभाव(२ : उद्दीपनविभावश्च

यथा लोके सीतादिविषयणी या रामचन्द्रादीनां रतिः तदुद्बोधकरूपेण प्रसिद्धाः विभावाः । तत्रालम्बनविभावा : । :हि तेषामेवाश्रयाद् रसोद्गम यतो :नायकनायिकादय चन्द्रचन्दनोपवनादयः येतावद्रसमुद्दीपयन्ति ते उद्दीपनविभावाः । शृंगारे नायकनायिकानिरूपणं, नायिकानां नखशिखादिविवेचनमपि साहित्यशास्त्रे कोविदानां रसिकानाञ्चाकुर्षणं वर्त्तते । काव्येषु नायकवर्णनादपि नायिकावर्णनं किमपि महत्तरं स्थानं भजते । नाट्याचार्येण मुनिना भरतेनापि" **सुखस्य हि स्त्रियो मूलम्** "[३] इत्यादिना स्त्रीमहत्त्वं निगदितं विस्तृतरूपेण च नायिकालक्षणभेदादिकं परिचर्चितम् ।

नाट्यशास्त्रस्य द्वाविंशतितमे अध्याये वर्णितानि नायिकालक्षणानि तद्भेदांश्च अनुसृत्य अमरूककविना विरचितस्य अमरूशतकस्य नायिकाभेदानां विवरणम् अत्र प्रस्तौमि।
इदानीं नायिकानां लक्षणविभागान् यथाशास्त्रं प्रदर्शयामि।

नाट्यशास्त्रे भरतमुनिना नायिकाया:उक्ता :मुख्यतया त्रयो भेदा : आभ्यन्तरा,बाह्याभ्यन्तरा,बाह्या, चेति।

ता एव स्वकीया, परकीया, सामान्या चेति शास्त्रकाराः निर्दिशन्ति । उक्तमेतत्साहित्यदर्पणे- **"अथ नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या साधारणी स्त्रीति।।"** इति [४]

१तत्र. **स्वकीया नायिका** :शीलार्जवादिगुणै - युक्ता, पतिप्रेमपरायणा, व्यवहारनिपुणा, गृहकार्यदक्षा, विवाहिता पतिव्रता नारी स्वकीया नायिका । [५]

एषा स्वकीयानायिका मुग्धा मध्या प्रगल्भा चेति त्रिधा । यदुक्तम्-
"सापि कथिता त्रिभेदा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति ॥" इति [६]

अ(**मुग्धा नायिका**एषा - नायिका अङ्कुरितयौवना, कामवासनायां नवीना, लज्जावती सुरतक्रीडायां भीता, माने मृदु च भवति । [७]

अस्या उदाहरणम् अमरुशतके यथा-

"तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टि-कृता पादयो :
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया ।
पाणिभ्यां च तिरस्कृतःस्वेदोद्गमो गण्डयो :सपुलक :
सख्य।।:किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके संधय !:" इति[८]

सखीभिर्मानं शिक्षितापि कृतप्रियसंगमा काचिन्नायिका तामानाभिव्यक्तये मया -प्राह : सर्वं कृतम् । तथाहि तस्य प्रियस्य - वक्त्राभिमुखं सत्स्वमुखं मया विनमितं नम्रीकृतम् । दृष्टिः स्वपादयोर्न्यस्तम् । अभिमुखमुखतया तद्दर्शनाभिलाषिणी दृष्टिरपि मया वारितेत्यर्थः । तद्वचनश्रवणकौतुकचपले श्रोत्रे च कर्णकण्डूयनव्यपदेशेनाकुञ्चिते । अपरं च स्वविवक्षारससूचकस :कपोलयो : रोमाञ्च : स्वेदोद्गमो हस्ताभ्यामाच्छादितः । किन्तु कञ्चुके मम सन्धयः शतधा विदलिताः जाताः । ममावयवानां प्रियसङ्गमौत्सुक्य बहुगुणितत्वात् मया मानः न पालितः ।
अत्र प्रियविषये प्रीतिप्रकर्ष एव । इयं स्वकीया मुग्धा नायिका।

२तत्र . **मध्या नायिका** यथा–

"मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता।।"इति[९]

उदाहरणं यथा अमरुशतके-

"श्लिष्टकण्ठे किमिति न मया मूढया प्राणनाथ :
चुम्बत्यस्मिन्वदनविनति।:किं कृता किं न दृष्ट :
नोक्तकस्मादिति नववधूचेष्टितं चिन्तयन्ती :
पश्चात्तापं वहति तरुणी प्रेम्णि जाते रसज्ञा।।" इति[१०]

काचित्तरुणी अत्र पश्चात्तापं कृत्वा वदति प्रणये जाते सति लज्जावरणं विहाय तदानीं अज्ञया मया प्राणनाथकिमिति कण्ठे : नालिङ्गितचुम्बति । किं चास्मिन्प्राणनाथेः सति मुखनमनं किं न कृतम् । किञ्च स प्राणनाथः किमिति मयानावलोकितपृष्टापि : च न संभाषितः । इत्यनेन प्रकारेण चिन्तयन्ती नववधूः पश्चात्तापमत्र प्रकटयति । अत्र नायिका स्वकीया मध्या च।

अ (**मध्या अधीरा**-"अधीरा परषोक्तिभिः" , या कठोरवचनैप्रिय :O प्रताडयति सा अधीरा नायिका। यदुक्तम्-

"स्वं दृष्ट्वा करजक्षतं मधुमदक्षीबविचार्येर्ष्यया
गच्छन्ती क्व नु गच्छसीति विधृता वाला पटान्ते मया।
प्रत्यावृत्तमुखी सबाष्पनयना मां मुञ्च मुञ्चेति सा
कोपप्रस्फुरिताधरा यदवदत्तत्केन विस्मार्यते।।" इति[११]

काचित् बाला दयितदेहे नखक्षतं दृष्ट्वा तत्स्वकृतमिति अज्ञात्वा मत्ता भूत्वा अविचार्य कोपेन सपत्नीकृतमित्यसहमाना अपगच्छन्ती कुत्र गच्छसीति कथयित्वा दयितया पटान्ते यदा गृहीता तदा सा प्रतिनिवृत्तवदना सबाष्पनयना सती मां मुञ्च मुञ्च इति

कोपप्रस्फुरिताधरा यदवोचत् तत् केन विस्मार्यते ,न केनाऽपि विस्मारयितुं शक्यमिति दयितस्य इयमुक्तिः । अत्र नायिकायाः परुषभाषणप्रतीतेः स्वकीया मध्या अधीरा च ।

ब(मध्या धीराधीराया अधीरा- भूत्वा तथा रोदित्वा स्वक्षोभं क्रोधं च प्रकटयति सा धीराधीरा नायिका भवति।

यथा-

"कपोले पत्राली करतलनिरोधेन मृदिता
निपीतो निश्वासैरयममृतहृद्योऽधररसः।
मुहुकण्ठे लग्नस्तरलयति बाष्पं स्तनतटी :
प्रियो मन्युर्जातस्तव निरनुरोधे न तु वयम्।।"इति [१२]

प्रियो वदति, हे निरनुरोधे । कपोले या पत्ररचना आसीत् सा तव करतलनिरोधेन मृष्टा । निश्वासैः: अमृतवन्मधुरोऽयमधररसो निपीतः । बाष्पः कण्ठे लग्नकम्पयति :पुन :सन् स्तनतटं पुन : । एवं प्रकारेण कोपस्तव प्रियो जातः । वयं तु प्रिया न भवाम इति । अत्र पत्रालीमर्दनादिव्यापारेण सौभाग्यहारी मन्यु तव हितो जात इत्यनेन च :त्वदनुवर्तनकारिणो वयं तु तव हिता न भवाम इत्यनेन चोपालम्भो गम्यते। अत्र नायिका स्वकीया मध्या धीराधीरा च।

३.प्रगल्भा नायिका -"स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा । भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका ।।" इति [१३]

यौवनारम्भे कामोन्मत्ता सूरतक्रीडायां अचेतयुता तथा विकसितहावभावयुक्ता प्रगल्भा नायिका उच्यते।

यथा-

"आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीत्वा कथंचिद्दिनं
वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति।
दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्गया रतिकातरेण मनसा नीतप्रदी :पशमम्।। :" इति [१४]

दयिते देशान्तरादागते सति तया नायिकया अनेकविधामिलाषैर्दिनं कथंचित् नीत्वा केलिभवनं गत्वा विवेकशून्ये परिचारकवर्गे दीर्घां कथां कुर्वति सति रतौ अधीरेण (कालविलम्बाऽसहिष्णुना) मनसा तन्वङ्ग्या क्षतास्मीति उक्त्वा चीनांशुकं प्रकम्प्य भवनदीपकं यत् प्रशमितं कृतं तेन तस्याः स्मरान्धत्वम्,गाढतारुण्यम्, समस्तरतकोविदत्वम्,भावोन्नतत्वम् प्रदर्शयत् पद्येऽस्मिन् प्रगल्भानायिकात्वम् व्यनक्ति ।

अ) प्रगल्भा धीरा यथा:व्यङ्ग्यपूर्णवचनै - छन्नेन क्रोधं प्रकटयति सा प्रगल्भा धीरा। यदुक्तम्-

"प्रगल्भा यदि धीरा स्यात् छन्नकोपाकृतिस्तदा ।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान् बहिः ।।" इति [१५]

तदुदाहरणं यथा -

"कृतो दूरादेव स्मितमधुरमभ्युद्गमविधिः
शिरस्याज्ञा न्यस्ता प्रतिवचनवत्यानतिमति।
न दृष्टेशैथिल्यं मिलन इति चेतो दहति मे :
निगूढान्तकोपा कठिनहृदये : संवृतिरियम्।। !" इति [१६]

अत्र पद्ये कश्चिद्दयितः कथयति, हे बाले ! स्वकोपं कृतार्थयितुं त्वया दूरादेव स्मितमधुरेण अभ्युद्गमनविधि : प्रत्युत्थानाचरणादिक्रिया विहिता, मया यद्यदुक्तं त्वया नम्रशिरसा तत्तदङ्गीकृतम्। तव दृष्टिरपि शैथिल्यं न भजते। तथापि हे निगूढान्तकोपे तवः औदासीन्यं काठिन्यं च मे चेतो दहति । अत्र बाह्यादर-प्रदर्शनपूर्वकं नायिकया कोपः कृतार्थीकृतः इति कृत्वा इयं नायिका स्वकीया धीरा प्रगल्भा।

ब(प्रगल्भा अधीरा-"तर्जयेत्ताडयेदन्या" । या कठोरवचनैप्रियं प्रताडयति सा अधीरा। : तद् यथा -

"कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन बद्धा दृढं

नीत्वा वासनिकेतनं दयितया सायं सखीनां पुरः
भूयोऽप्येवमिति स्खलत्कलगिरा संसूच्य दुश्चेष्टितं
धन्यो हन्यत एव निह्नुतिपरप्रेयान् : रूदत्या हसन्।।" इति [१७]

कयाचिल्ललनया कोपात्कोमललोलबाहुलतिकापाशेन दयितं दृढं बद्ध्वा मोहनमन्दिरं नीत्वा यथेच्छं सखीनां पुर :"किं पुनरपि एवं करोषीति" स्खलन्मृदुगिरा अर्धोक्त्या वाचा नायिकान्तरगमनरूपं दुश्चेष्टितं संसूच्य वञ्चनापरो धन्यो प्रियतमो हसन् हन्यत एव । एषा नयिका स्वकीया प्रगल्भा अधीरा च।

स(प्रगल्भा धीराधीराअधीरा - भूत्वा तथा रोदित्वा स्व क्षोभं,क्रोधं च प्रकटयति सा धीराधीरा नायिका भवति। **"धीराधीरा तु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम्"।**[१८]

यथा - **"कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं**
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपाताः प्रसाद :
तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षः।।खलाया :" इति [१९]

काचिन्नायिका वदति- यस्मिन्प्रेम्णि कोपो भृकुटिरचनामात्रं न तु निर्भर्त्सनादिकम् , यत्र वा विद्वेषः मौनं, यत्र प्रसाद : अवलोकनमात्रं नाश्रुपातादिकं चासीत् , तस्य प्रेम्णअधुना : इदं वैशसं जातं यत् त्वं पादान्ते लुठसि तथापि दुष्टाया मे कोपोपशान्तिः न भवति ।अत्र मन्युमोक्षाभावकथनेन प्रियस्यापराधातिशयो व्यजते। नयिकायाश्च स्वकीयात्वं प्रगल्भात्वं धीराधीरात्वं च । एवमेव स्वकीयानायिकानामुदाहरणं शतककाव्येऽस्मिन् दरीदृश्यते । परकीयानां वर्णनमत्र स्वल्पम् । तदिदानीमुच्यते । २.परकीया -

ति सा परपरिणीता अविवाहिता कन्यापरकीया नायिका नायकस्य स्वपत्नी न भव वा भवितुमर्हति । उदाहरणं यथा-

"आस्तां विश्वसनं सखीषु विदिताभिप्रायसारे जने
तत्राप्यर्पयितुं दृशं सुरचितां शक्नोमि न व्रीडया।
लोकोऽप्येष परोपहासचतुरः सूक्ष्मेङ्गितज्ञोऽप्यलं
मातः! कं शरणं व्रजामि हृदये जीर्णोऽनुरागानलः ।।"इति [२०]

हे मातः! कं शरणं व्रजामि ! प्रियं जनं प्रति प्रेषणानयनादिकार्यसाधके सखीजने विश्वसनं तावदास्ताम्, ताः कस्याप्यग्रे स्फुटित्वा कथयेयुः। इयं मयि सर्वात्मनानुरक्तेति विदितोऽभिप्रायसारो येन तस्मिन् जने मत्प्रिये दृष्टिमप्यारोपयितुं लज्जया न शक्नोमि, का कथा गमनानयनादेः। तर्हि लज्जां परित्यज्य तदवलोकनरसास्वादेनैव किमिति कालो नातिवाह्यत इति लोकः सूक्ष्मेङ्गितज्ञः परपरिहासचतुरः। अतः मे गतिर्नास्तीति । ममानुरागानलो जीर्णतां गच्छति। इयमनूढा।

३सामान्या नायिका रतिकुशला -सामान्या नायिका.,संगीतकलानिपुणा प्रगल्भा तथा धूर्ता गणिका भवति। **धीरा कलाप्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यानायिका ।** उदाहरणं यथा-

"क्व प्रस्थितासि करभोरुघने निशीथे !,
प्राणाधिको वसति यत्र जनप्रियो मे। :
एकाकिनी बत कथं न बिभेषि बाले
नन्वस्ति पुङ्खितशरो मदनः।।सहाय :"इति [२१]

हे करभोरु! अर्धरात्रे कुत्र प्रस्थितासि । एवं सख्या पृष्टा नायिका तां प्रत्याह मे हृदयस्य प्रियप्राणनाथो यत्र :प्राणेश्वर :अभीष्ट : यस्मिन्प्रदेशे वसति तिष्ठति तत्र गच्छामीति । अत्र नायिका सामान्या अनुरक्ता च।

एवमेव अवस्थाभेदैः नायिकाभेदोऽपि यथा नाट्यशास्त्रे परिचर्चितः [२२] तथा अमरुशतके नायिकाः लभ्यन्ते। तत्समयाभावान्मया नालोच्यते।

१-नाट्यशास्त्रम्/ ६.३२

२-तत्रैव/७.४
३- तत्रैव/२४.६८
४- साहित्यदर्पण/३.५६
५-साहित्यदर्पण/३.५७
६- तत्रैव
७- तत्रैव/३.५८
८-अमरुशतकम्/११
९-साहित्यदर्पण/३.५९
१०-अमरुशतकम्/५८
११-तत्रैव/५५
१२-तत्रैव/८१
१३-साहित्यदर्पण/३.६०
१४-अमरुशतकम्/७७
१६-तत्रैव/१४
१७-तत्रैव/९
१८-साहित्यदर्पण/३.६३
१९-अमरुशतकम्/३८
२०-तत्रैव/६३
२१-तत्रैव/७१
२२-नाट्यशास्त्रम्/२४.२११

****

नाट्यशास्त्रोक्त 'भाव'

हितेश त्रिवेदी
शोधच्छात्रः
साहित्यविभागः,रा.सं.सं.,
क. जे. सोमय्यासंस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई

नाट्य का साध्य यदि रस है तो साधन भाव है अतः बिना भाव के रस की सिद्धि ही नहीं हो सकती। वस्तुतः रससिद्धान्त काव्य के लिये मुख्याधार है लेकिन इससे सम्बन्धित अनेक वादों के सन्दर्भ में आज तक विवाद के प्रमुख विषय हैं भावों का स्वरूप एवं उनकी संख्या, रस संख्या, रसास्वाद एवं साधारणीकरण, आस्वाद की सुख-दुःखात्मकता आदि। रस सिद्धान्त के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण समस्या भाव विवेचन है।

भाव:-भाव 'भू' धातु, घञ् प्रत्यय से निष्पन्न है जिसके दो अर्थ हैं 1. होना और 2. जो भावित करे और वासित करे। अर्थात् करण से अभिप्रेरित करे।

भाव अर्थात् भावयति ज्ञापयति हृदयगतं इति भावःˇ जो हृदय की अवस्था, तथा मानसिक विकारों को प्रकट करने वाला,वह भाव है। आचार्य भरतमुनि के अनुसारकिं भवन्तीति भावाः,किं वा भावयन्तीति भावाःˇ।भाव क्यों कहा जाता है ?इसलिये कि वे भावन करने या स्थित होने से 'भावयन्तीति भावाः' के अनुसार भाव कहे जाते हैं और वे भाव किसका भावन करते है ?

यहा जो पहला अर्थ,होने के अर्थ मे है वह लोकार्थक है। जंगत में सुख-दुःखात्मक घटना द्वारा घटित वासना अनुप्रेरित समस्त भाव होने के अर्थ में हैं भरतमुनि कहते है किं भवन्तीति भावाः। तो क्या लोक में घटित घटना व्यापार के साथ संबद्ध कर्माशय से जुडे हुए भाव

व्यापार है ? क्या वे नाटक के अन्तर्गत मान्य है ? इसका निषेध करते हुए कहते है कि 'भावयन्ति इति भावाः' अर्थात् जो भावित करे, वासित करे वो भाव है,तो नाट्याचार्य कहते है

वागङ्गसत्त्वोपेतान्काव्यार्थान्भावयन्तीति भावाˇ इति।

अर्थात् ये, शब्दों (वाणी), शरीर के अवयवों तथा सात्त्विक भावों के द्वारा दृश्य-काव्य अभिप्राय को दर्शकों को बतलाते हैं।

"विभावैराहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः" ॥ˇ

जो अर्थ विभावों के द्वारा प्रस्तुत होते हुए अनुभावों से बोध्य होते है वे ही वाणी, अङ्ग, तथा सात्त्विक भावों को अभिनयों से युक्त होने पर भाव कहे जाते हैं।

लोक और काव्य में भिन्नता न स्वीकार करने पर अनेक भ्रम उत्पन्न होते हैं, अतः परवर्ती आचार्यों ने भाव का लोकात्मक विवेचन छोडकर काव्य में वर्णित भाव का ही विवेचन किया है। उदाहरणार्थ

श्रीआनन्दवर्धनाचार्य'रसस्यैकघनचमत्कारात्मनोऽपि कुतश्चिदं शात्प्रयोजकीभूतादधिकोऽसौ चमत्कारो भवति। तत्र यदा कश्चिदुद्रिक्तावस्थां प्रतिपन्नो व्यभिचारी चमत्कारातिशयप्रयोजको भवतिˇ, तदा भावध्वनिः'। अर्थात् एकघन चमत्कार रूप भी उस रस के कहीं प्रयोजक अंश से अधिक चमत्कार होता है। वहा जब कोई व्यभिचारि भाव उद्रिक्त या निष्पन्न अवस्था को प्राप्त करके अतिशय चमत्कार का प्रयोजक होता है, तब भावध्वनि होती है।

पण्डितराजजगन्नाथ– विभावादियों द्वारा ध्वनित किये जाने वाले हर्षादिकों में से अनन्यतम भाव कहा जाता है। 'व्यभिचार्यांञ्चितो भावःˇ' इति। तथा 'हर्षादिनां च सामाजिकगतानामेव स्थायिभावन्यायेनाभिव्यक्तिः'।

आचार्य महिमभट्ट–'न च लोके विभावादयो भावा वा सम्भवन्ति हेत्वादीनामेव तत्र सम्भवात्। न च विभावादयो हेत्वादयश्चेत्येक एवार्थ इति मन्तव्यम्। अन्ये हेत्वादयोऽन्य एव विभावादयः। तेषां भिन्नलक्षणत्वात्ˇ'। अर्थात् लोक मे विभावादि भावों का होना संभव नहीं हैं। लोक मे केवल हेतु आदि संभव हैं। यह माना नहीं जा सकता है कि विभाव आदि हेतु आदि अभिन्न हैं और हेतु आदि भिन्न है विभावादि भिन्न है क्योकि इनका लक्षण भिन्न हैं।

लोकात्मक भावों की उत्पत्ति का क्रम वस्तुतः वास्तविक और लौकिक है, किन्तु काव्य द्वारा आस्वादित किये हुए भाव कि प्रकृति न तो वह वास्तविक और न हि लौकिक है। यद्यपि जीवन में घटित किसी घटना से उत्पन्न भय आस्वाद न होकर वह एक यथार्थ घटना है और उत्पन्न हुए भाव भय का केंद्र मन से प्रत्यक्षतः जुड कर वह प्रकृति के अनुकूल प्रभावित करती है किन्तु काव्य का भय आस्वादित होता है जो लोकात्मक और यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः काव्य की आत्मा रस है तो उस रस तत्त्व में कौन सा तत्त्व स्थित है जो रस को उत्पन्न करता है और स्वयं ही रस बन जाता है, तो भरतमुनि कहते है –

रसनिरूपण

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।

तो विभाव, अनुभाव और संचारी भाव क्या हैं ?

विभाव :-

बहवोऽर्थो विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रयाः।ˇ अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति संज्ञितः ॥

वाणी, अंग तथा अभिनय में स्थित अनेक अर्थों का अवबोध होता है अतः इसे विभाव संज्ञा से अभिहित किया है।

उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति येˇ ॥

अर्थात जो रसको उद्दीप्त किया करते हैं। वे विभाव कहे जाते हैं। यथा नायक नायिका आदि की विविध आङ्गिक चेष्टायें।

अनुभावः-'अनुभावयन्ति तांस्तान् भावान्' अर्थात् उन भावों का अनुभव कराती है कार्य रूप जो लोकात्मक घटनाएँ है, वे काव्यादि में दिखांई जाती हैं। लोक में कर्ता के आचरण के साथ भाव उत्पन्न होते है स्थिति भिन्न होती है क्योकि ये अर्थानुभावन कराते हैं।

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिभावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः॥ ॥

उन उन कारणों से हृदय मे उद्बुद्ध रत्यादि रूप स्थायी भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले अङ्गादि-व्यापारों का नाम अनुभाव है। जो जो अङ्ग-चेष्टायें, उनसे उद्बुद्ध रत्यादि भावों को दूसरों पर प्रकाशित किया करती हैं।

नाट्याचार्य नेभावों के तीन प्रकार बताए हैं। स्थायी, व्यभिचारी(संचारी) तथा सात्त्विक। इन भावों मे 8 स्थायी, 33 संचारी तथा 8 सात्त्विक भाव होते हैं। जो 49 भाव होते हैं। ये भाव काव्य की रसाभिव्यक्ति में करणीभूत होते है।

स्थायिभावः-

अविरूद्धा विरूद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः॥

जो कि न तो किसी अनुकूल भाव से तिरोहित हुआ करता है और न किसी प्रतिकूल भाव से ही दबा करता है। यह भाव तो अन्त तक अवस्थित रहने वाला भाव है इसी में रस के अङ्कुरण की मूलशक्ति निहित रहा करती है।

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः"॥

यथा रति – रतिर्नाम प्रमोदात्मिका। ऋतु, माल्य, चन्द्रलेपन इत्यादि का उपभोग तथा प्रतिकूल आचरण न करने पर विभावों का उद्भूत होता है।

व्यभिचारिभाव (संचारिभाव):-व्यभिचारिभाव, वि तथा अभि उपसर्ग है और चर् धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ है जाना, हिलना अर्थात्जो भाव विविध प्रकार से रसाभिमुख होकर संचरण करते हैं,ये संचारि अनुभावों से युक्त होकर स्थायिभावों को रसत्व की ओर अभिमुख करने या ले जाने वाले होते हैं अतः ये स्थायिभाव के सहायक भाव भी हैं सभी व्यभिचारिभाव आत्मगत, परस्थ तथा मध्यस्थ भेद से तीन प्रकार के माने जाते हैं जिनका देश, काल, एवं अवस्था के अनुरूप उपयोग किया जाता है। यद्यपि यह स्थायिभावों की भाँति यह सहकारिभाव रस का आधारभूत रूप नहीं बनाते, फिर भी यह प्रवाहमान रस के पोषक हैं अतः ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रस की पुष्टि करते हैं।इनकी संख्या तैंतीस हैं। यथा -

"निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथासूयामदश्रमाः।
आलस्यञ्चैव दैन्यञ्च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च॥
सुप्तं विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः" ॥ इति॥

यथा निर्वेद –निर्वेद की उत्पत्ति दारिद्र्य-प्राप्ति, अपमान, अशिष्ट बकवास इत्यादि का अभिनय, रोना, साँसे भरना आदि अनुभावों के द्वारा।

सात्त्विकभाव :-

विकाराः सत्त्वसंभूताः सात्त्विकाः परिकीर्तिताः।

सत्त्व के उद्रेक से जो मनोविकार हैं उन्ही को सात्त्विक भाव कहा जाता है। वस्तुतः सात्त्विक शब्द सत्व से सम्बन्धित जो भाव है वह सात्त्विक भाव। तो सत्त्व क्या है? सत्त्व अर्थात् 'सतो भाव त्व' इति। सत्त्व,स्वभाव, मन और चित्त, जो मन से संबन्धित है वह सात्त्विक अर्थात् मन के द्वारा जो आन्तरिक भावनाओं या तरंगो / संवेगो के बाह्य संकेत उत्पन्न होते हैं। वे सात्त्विक भाव कहे जाते हैं। सत्त्व की उत्पत्ति समाहित मन से होती है अतः चित्त की एकाग्रता या समाहितमनस्त्व से सात्त्विकभाव उत्पन्न होते हैं। सात्त्विक अभिनय मन की एकग्रता के बिना सम्भव नहीं है। सात्त्विकभाव 8 हैं।

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयः इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥ इति॥

स्तम्भ – क्रोधभयहर्षलज्जादुःखश्रमरोगतापघातेभ्यः।

अतः विभावादि के साथ जो स्थायिभाव का संयोग होता हैउसी से रसनिष्पत्ति होती है। उनमें स्थायिभाव रूप चित्तवृत्ति की उत्पति में विभाव कारण होते है। रस के उत्पादन हेतु भरत द्वरा दिये गये दृष्टान्त में व्यंजन आदि के बीच में किसी की स्थायी भावना के समान वासनात्मक और कुछ की व्यभिचारी के समान उद्भूत रूप में स्थिति होती है इसीलिये विभाव, अनुभाव आदि से परिपुष्ट किया हुआ स्थायीभाव ही रस है। मुख्य रूप से वह अनुकर्ता रामादि में तथा रामादिरूपता की प्रतीति करवाने के कारण गौण रूप में अनुकर्ता (नट) में भी अनुसंधान के बल से अवस्थित रहता है।

उपसंहार

भाव चित्तवृत्ति स्वरूप होने के कारण प्राणिमात्र में व्याप्त है। विभावों द्वारा उत्पन्न, अनुभावों द्वार गम्य, चतुर्विध प्रकार के अभिनयों के द्वारा कर्ता (कवि) के हृदय में स्थित भाव काव्य के द्वारासहृदय मे निहित वासना का विषय बनना, काव्यार्थ में स्थित रस का सहृदय के हृदय में भावित करना भाव कहलाता है। विमर्श – रत्यादि काव्य में आस्वादनीय होते हैं। रसादि अनुभूतिरूप ही है। यह अनुभूति भी आस्वाद और आनन्दरूप है। रस का ज्ञान स्वयं रस से होता है। रस स्वानुभूति का स्वरूप है। काव्यादि में उत्पन्न रस, भाव कृत्रिम है किन्तु उसका आस्वाद अकृत्रिम है।

ग्रन्थसूची

1. नाट्यशास्त्रम् — रचयिता - भरतमुनि, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, द्वितीय संस्करण, वि. सं. 2040, सम्पादक एवं व्याख्याकार श्रीबाबूलाल शुक्ल, शास्त्री

2. साहित्यदर्पणः — रचयिता - विश्वनाथ कविराज, शालिग्रामशास्त्रिसम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास, पुनः मुद्रण 2000

3. भारतीय काव्य शास्त्र — रचयिता - डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह
लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण
इलाहाबाद, 1997

4. रसगङ्गाधर — रचयिता – पण्डितराज जगन्नाथ
चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी, नवम संस्करण, 2001

5. ध्वन्यालोक — रचयिता – आनन्दवर्धनाचार्य
व्याख्याकार – जगन्नाथ पाठक
चौखम्बा विद्या प्रकाशन

6. व्यक्तिविवेक — रचयिता – महिमभट्ट
व्याख्याकार , रेवाप्रसाद द्विवेदी
चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसि

7. काव्यादर्श — रचयिता – दण्डी
व्याख्याकार – योगेश्वकदत्त शर्मा
नाग पब्लिशर्स, नई दिल्ली

8. काव्यप्रकाश — रचयिता – मम्मट
नागेश्वरी टीका,
चौखम्बा संस्कृत संस्थान
वाराणसी, 8वा संस्करण 1994

9. काव्यालङ्कार — रचयिता – भामह
विहार राष्ट्रभाषा परिषद
पटना, 1962

10. अग्निपुराण — गीताप्रेस गोरखपुर
प्रथम संस्करण -2009

****

नाट्यशास्त्रदिशा शान्तरसनिरूपणम्

सत्यनारायणः
शोधच्छात्रः
साहित्यविभागः,रा.सं.सं.,
क. जे. सोमय्यासंस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

रसशब्दश्रवणेनैव मनसि प्रश्नः जायते यत् - कोऽयं रसः? ऋग्वेदे गदितं यत् "दधानः कलसे रसम्" इति तथा तैत्तिरीयोपनिषदि उक्तम् - "रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति" इति। मम्मटेनापि निगदितं यत् - "स्थायिभावः रसः स्मृतः" इति। काव्यशास्त्रे रसस्य महत्त्वं विषये नाट्यशास्त्रे प्रतिपादितं यत्- "न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" इति। न. ०६।
इत्युक्ते रसेन विना नाट्यकाव्ययोः कोऽपि प्रयोजनं नास्तीति। काव्यस्यात्मा रसः। तस्मादेव आचार्यविश्वनाथेन गदितम् - "वाक्यं रसात्मकं काव्यमिति"।
मुनिनापि उक्तम् - "यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतमन्नं भुञ्जानः रसास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषाः हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्वोपेतान् स्थायिभावान् आस्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः पुरुषाः हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति।" इति।
रसोऽयं नवविधं तद्यथा -
शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥"
तथा - शान्तोनाम शमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्तकः॥" इति।
अनेन वक्तुं शक्यते यत् नाट्ये नव रसाः प्रोक्ताः। तत्र शान्त रसः प्रमुख भवति। शान्तरसः शमस्थायिभावात्मकः भवति।
यथोक्तमाचार्यमम्मटेन काव्यप्रकाशे - " अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः" तथा "निर्वेदस्थायि भावात्मकः शान्तोऽपि नवमो रसः" "इति।
नाट्यशास्त्रानुसारं शमस्थायिभावात्मकः शान्तरसःमोक्षप्रदायको भवति। शान्त रसः तत्त्वज्ञान-वैराग्य-चित्तशुद्धीत्यादि विभावेन निष्पद्यते। यमनियमाध्यात्मध्यानधारणोपासनसर्वभूतादयालिङ्गग्रहणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्या" इति। ना. ०६)
अत्रार्याः श्लोकाश्च -
मोक्षाध्यात्मसमुत्थस्तत्त्वज्ञानार्थहेतुसंयुक्तः।
नैः श्रेयसोपदिष्टः शान्तरसोनाम सम्भवति॥
बुद्धिन्द्रियकर्मेन्द्रियसंरोधाध्यात्मसंस्थितोपेतः।
सर्वप्राणिसुखहितः शान्तरसोनामविज्ञेयः॥
न यत्र दुःखं न सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः॥
भावाः विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः।
विकारः प्रकृतेर्जातः पुनःस्तत्रैव लीयते॥
स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥
एवं नव रसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः।" इति। ना. ०६।
अत अनेन वक्तुं शक्यते यत् सर्वैरपि भावाः शान्तादेवोत्पद्यते तथाऽन्ते तत्रैव प्रलीयते। शान्तरसस्याभिनयविषये साहित्यदर्पणेऽपि प्रतिपादितं यत् -

> शान्तः शमस्थायिभावः उत्तमप्रकृतिर्मतः।
> कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायण दैवतः॥
> अनित्यत्वादिनाशेषस्तु निः सारता तु या।
> परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बमिष्यते॥

पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।
महापुरुष सङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः॥
रोमाञ्चाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।
निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः॥v इति।

केनापि उक्तम् यत्- न तत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता, न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः, सर्वेषु भावेषु समप्रमाणः॥ इति।

उदाहरणं यथा - अहो वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित् पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥v

v ऋग्वेद
v तैत्तिरीयोपनिषदि
v काव्यप्रकाशः 04
v नाट्यशास्त्र 06
v साहित्यदर्पण 01
v नाट्यशास्त्र 06
v नाट्यशास्त्र 06
v नाट्यशास्त्र 06
v काव्यप्रकाशः 04
v नाट्यशास्त्र 06
v नाट्यशास्त्र 06
v साहित्यदर्पण
v काव्यप्रकाशः 04

****

मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.एस. में नाट्यसंधियों का निर्वहण

राजेश कुमार मिश्र
[एम.ए. संस्कृत,हिन्दी,अर्थशास्त्र,अंग्रेजी]
शोधच्छात्र
पुराणेतिहास विभाग
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ
नवदेहली
Email-upniram1@gmail.com
Mob.9818607643

मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस.एस. राजकुमार हीरानी द्वारा निर्देशित एक लोकप्रिय चलचित्र है जो नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से चार अंकों की नाटिका है। प्रकरणवत् कल्पित कथावस्तु, सामाजिक विषय एवं सामान्यकुलीन नायक होने के कारण इसे प्रकरणात्मकनाटिका कहना उचित होगा। इसका नायक धीरललित कोटि का नायक है जो अपने सचिव सर्किट पर कार्य भार सौंपकर अपनी उद्देश्य सिद्धि में प्रवृत्त होता है। इस चलचित्र का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य इसमें पांचों संधियों का सम्यक् प्रयोग है जो इस शोधपत्र का विवेच्य विषय है। यद्यपि अभिनवगुप्त ने प्रधान इतिवृत्त के अंश को उसके स्वरूप एवं अंग से संबद्ध करने वाले तत्त्व को ही संधि कहा हैv तथापि धनंजयv,विश्वनाथv आदि आचार्य ५ अवस्थाओं और ५ अर्थप्रकृतियों को संयुक्त करने वाले तत्त्व को संधि मानते हैं जिसे निम्नवत् देखा जा सकता है-

अर्थप्रकृतिv	अवस्था	संधि
बीज	प्रारम्भ	मुख
बिन्दु	प्रयत्न	प्रतिमुख
पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
कार्य	फलागम	निर्वहण

प्रस्तुत चलचित्र में संधिप्रयोग की दृष्टि से दोनों विचारधाराओं का अनुपालन किया गया है जो इसके लोकप्रिय और प्रशस्त होने का कारण है।

नाटिका में अंक विभाजन-

नाटिका में चार अंकों का विभाजन निम्नवत् है-

प्रथम अंक-प्रारंभ से डीन के घर तक का दृश्य

द्वितीय अंक - एम.बी.बी.एस.एस. में प्रवेश के निश्चय से प्रवेश पर्यंत

तृतीय अंक-मेडिकल कालेज का घटनाक्रम

चतुर्थ अंक –मुन्नाभाई के कालेज परित्याग के बाद के दृश्य

चलचित्र में संधि-विवेचन-

मुख संधि

नाट्य शास्त्र में मुख संधि की परिभाषा है-

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरसंभवा|
काव्ये शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम्||[v]

प्रस्तुत चलचित्र में मुन्नाभाई का चिकित्सक अर्थात् एम.बी.बी.एस.एस. बनना साध्य फल है जिसके लिये प्रारंभ नामक नाट्यावस्था का आरम्भ मुन्ना के झूठ से होता है | वह अपने पिता को बताता है कि वह एक कुशल चिकित्सक है जबकि वह एक नामी गुंडा है| उसके माता-पिता उससे मिलने आते हैं और वह प्रसिद्ध चिकित्सक बनने का ढोंग रचता है| झूठ को सच समझकर वे अपने मित्र डा.अस्थाना के पस मुन्ना के विवाह का प्रस्ताव लेकर चले जाते हैं जो शहर के सबसे प्रसिद्ध कालेज का डीन है| सखूबाई के रहस्योद्घाटन से क्रुद्ध अस्थाना मुन्ना और उनके माता-पिता को अपमानित करता है | इस प्रकार अद्भुत,हास्य और शृङ्गार रसों से युक्त मुख संधि उपस्थित है |

एम.बी.बी.एस.एस. उपाधि प्राप्ति करने की उत्सुकता भी यहां निबन्धित हो जाती है जो अंकांत तक नायिका प्राप्ति से भी संयुक्त हो जाता है| आरम्भावस्था के विषय में नाट्य शास्त्र में कहा गया है –

औत्सुक्यमात्रबन्धस्तु यद्बीजस्यनिबध्यते |
महतः फलयोगस्य स फलारम्भ इष्यते||[v]

प्रतिमुख संधि

नाट्य शास्त्र में प्रतिमुख संधि की परिभाषा है-

बीजस्योद्घाटनं यत्र दृष्टनष्टमिव क्वचित्|
मुखन्यस्तस्यसर्वत्रतद्वैप्रतिमुखं स्मृतम्||[v]

चलचित्र के द्वितीय अंक में अपना भेद खुल जाने पर फल की प्राप्ति को न देखते हुए नायक एम.बी.बी.एस.एस. की उपाधि प्राप्त करने का निश्चय और प्रयास करता है | यहां अस्थाना के तिरस्कार द्वारा विच्छिन्न कथाबीज मुन्ना के निश्चय से नवरूप प्राप्त करता है जो वस्तु के अंत तक व्याप्त रहता है अतः बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है| प्रवेश प्राप्ति में छलपूर्वक सफलता से बीज दृष्ट होता है किन्तु सख्त डीन डा अस्थाना जोकि नायिका का पिता भी है उसका व्यवहार बीज को नष्टप्राय कर देता है | इस कठिनाई का ज़िक्र मुन्ना सर्किट से दूरभाष पर करता है |

'अबे सर्किट पूरे शहर में यही कालेज मिला था!'

यहां प्रयत्न नामक अवस्था भी द्रष्टव्य है जिसका लक्षण है-

अपश्यतः फलप्राप्तिं व्यापारो यः फलं प्रति|
परं चौत्सुक्यगमनं स प्रयत्नः प्रकीर्तितः||[v]

दशरूपककार ने प्रयत्न को अतित्वरायुक्त व्यापार कहा है[v]८ जो नायक के प्रयास में निश्चयेन द्रष्टव्य है | अपने निर्णय पर वह शीघ्र अमल करता है और मेडिकल कालेज में प्रवेश प्राप्त कर लेता है |

गर्भ संधि

नाट्य शास्त्र में गर्भ संधि की परिभाषा है-

उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिप्राप्तिरेव वा|
पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति संज्ञितः||[v]

चलचित्र के तृतीय अंक में मुन्ना प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है , यह प्राप्ति अवस्था है शरीर का शल्य परीक्षण करते समय उसका बेहोश होना अप्राप्ति अवस्था है डा. सुमन के माध्यम से नायिका की खोज अथवा रुस्तम के पिता की चिकित्सा द्वारा अन्वेषण किया गया है | पुनःपुनः प्राप्ति एवं अप्राप्ति के कारण यह अंक विशेष रोचक बन गया है| अनेक प्रकरियाँ एवं पताका की संयोजना इस अंक में की गयी है|आत्महत्या का प्रयास करने वाले किशोर की कथा,रुस्तम के पिता की कथा और ज़हीर की कथाएं प्रकरी कथाएं हैं और बंगालीबाबू की कथा पताका कही जा सकती है जो अंत में नायक की कार्यसिद्धि का प्रमुख कारण बनती है | उसी का पुनर्जीवन सुमन को मुखर होने का अवसर देता है और डीन का हृदय-परिवर्तन करता है | अंत में कथावाचक बनकर वही संपूर्ण फलप्राप्ति की सूचना देता है |अतः उसे पताका की कोटि में रखना उचित है जिसका लक्षण है-

यद्वृत्तं तु परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकं|
प्रधानवच्च कल्प्येतसा पताकेति प्रकीर्तिता ||[v]

विमर्श संधि

नाट्य शास्त्र में विमर्श संधि की परिभाषा है-

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थोविलोभनकृतो थवा|
क्रोधव्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृतः||[v]

चलचित्र के अन्तिम भाग में डीन मौखिक परीक्षा का आयोजन करता है ताकि असफ़ल होने पर उसे बाहर निकाला जा सके किन्तु मुन्नाभाई रुस्तम की सहायता से उनके उत्तर पहले ही तैयार कर लेता है; सभी चिकित्सक, छात्र, रुस्तम एवं नायिका सुमन भी उसके पक्ष में होती है | डीन का विरोध अकेला रह जाता है |मुन्ना प्रथम प्रश्न का उत्तर देता भी है | इस प्रकार नायक की सफ़लता निश्चित प्रतीत होती है |यहां नियताप्ति नामक कार्यावस्था भी है जिसका लक्षण है-

नियतं तु फलप्राप्तिं यदा भावेन पश्यति |
नियतां तां फलप्राप्तिं सगुणां परिचक्षते||[v]

किन्तु ज़हीर की मृत्यु से खिन्न मुन्ना स्वयं ही चिकित्सकों को धिक्कारता हुआ चला जाता है जिससे उसकी कार्यसिद्धि संशय में अटक जाती है | यहां स्पष्टतः विमर्श संधि सभी लक्षणों सहित दृष्टिगत होती है |

निर्वहण संधि

नाट्य शास्त्र में निर्वहण संधि की परिभाषा है-

समानयनमर्थानाम् मुखाद्यानां सबीजिनाम्|
नानाभावोत्तराणां यद्भवेन्निर्वहणं तु तत्||[v]

अंतिम अंक में जब नायक शराब पीकर निराश बैठा होता है तभी उसके माता-पिता आकर उसे गले लगा लेते हैं | यह मुखसंधि में प्रकीर्ण अर्थ का समाहार है | तदनु नायिकाप्राप्ति मुख,गर्भ एवं अवमर्श संधि में बिखरे अर्थों का समाहार है |नायक का उपकार करती हुई आनंद बाबू की कथा भी समाहृत हो जाती है |आनंद बाबू का चमत्कारिक ढंग से स्वस्थ होना हो प्रतिनायक अस्थाना की सैद्धान्तिक

पराजय का कारण बनता है | अंत में नायक को उस फल की प्राप्ति होती है जिसके लिये मुख संधि में बीजवपन किया गया था और वह फल है -चिकित्सक की उपाधि की प्राप्ति| यद्यपि नायक एम.बी.बी.एस.एस. की उपाधि प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु वह सच्चा चिकित्सक बन जाता है | सेवानिवृत्त होकर डा. अस्थाना का उसके अस्पताल में उसके सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करना ही उसकी कार्यसिद्धि का प्रमाणपत्र है | इस प्रकार नायक के अनुरूप समग्र अभिप्रेत क्रियाफल की प्राप्ति होती है जिसे नाट्यशास्त्र में फलागम नामक पंचम अवस्था कहा गया है |" बीजरूप में उत्क्षिप्त नायक के चिकित्सकत्व की प्राप्तिरूप कार्य नामक अर्थप्रकृति की भी यहां उपस्थिति है |" इन दोनों के योग एवं उपर्युक्त नानार्थों के समाहार के कारण यहां निर्वहण संधि संपन्न हुई है |

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत चलचित्र में नाट्य के शरीर इतिवृत्त को पांच संधियों में सम्यक् विभक्त किया गया है जो आचार्य भरत के निम्नलिखित निर्देश का अनुपालन है-एवं हि सन्धयः कार्या दशरूपे प्रयोक्तृभिः|"

अभिनवभारती-तेनार्थावयवा सन्धीयमानाः परस्परमंगैश्च संधय इति समाख्या निरुक्ता |१९-३७-३८ की व्याख्या
दशरूपक-प्रथम प्रकाश २२/२३
साहित्यदर्पण ६/७५
नाट्यशास्त्र २१/३९
नाट्यशास्त्र २१/९
नाट्यशास्त्र२१/४०
नाट्यशास्त्र २१/२०
दशरूपक,प्रथम प्रकाश,२० (प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारो तित्वरान्वितः)
नाट्यशास्त्र २१/४१
. नाट्यशास्त्र२१/२४
नाट्यशास्त्र २१/४२
नाट्यशास्त्र २१/१२
नाट्यशास्त्र २१/४३
नाट्यशास्त्र २१/१३
नाट्यशास्त्र २१/२६
नाट्यशास्त्र २१/४९

****

नाट्यशास्त्रीय तत्वों के आलोक में चलचित्र की समीक्षा "शोले"

ब्रिजेश कुमार मिश्र
शोधच्छात्र (संस्कृत विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली,

भरत मुनि के द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र एक सार्वभौमिक ग्रन्थ है व्याकरण के नियम जिस प्रकार पाणिनि मुनि के द्वारा प्रणीत| वैसे ही भरत मुनि के द्वारा प्रणीत नियम भी वर्तमान की नाट्यविधाओं , लागू होते हैं :संस्कृत से प्रभावित सभी भाषाओं पर अधिकांशत पर लागू होत◌े हैं चाहे वे नाट्यविधाएं किसी भी भाषा की क्यों न हों अनेकों निश्चय ही भरतमुनि के समय से लेकर नाट्यविधाओं में| इन्हीं विशेषताओं | परिवर्तन हो चुके हैं पर एक सार्वभौम ग्रन्थ की यही विशेषता होती है की वो ग्रन्थ देश या कालसापेक्ष नही होता है से युक्त होने के कारण नाट्यशास्त्र को पञ्चम वेद की संज्ञा दी गयी है |

लोक में रूपकों का प्रचलन आज भी उसी तरह से होता है किन्तु तकनीक के संयोग से उनकी प्रस्तुति का विधान अत्यधिक परिवर्तित हो गया है साथ ही बदलते परिवेश के साथ पाठकों की रुचि में आए परिवर्तनों ने रूपकों के स,◌्वरूप को भी प्रभावित किया है लगी व.्तमान में प्रत्यक्ष रूपकों की अपेक्षा चलचित्र दूरदर्शन के आविष्कार के बाद चलचित्रों के माध्यमों से कथा की प्रस्तुति होने|

प्रचीन समय में जिस प्रकार रूपकों के दश प्रमुख भेद तथा उन भेदों के उपभेद हुआ कर | अधिक लोकप्रिय हैंते थे परन्तु सर्वाधिक लोकप्रिय विधा नाटक थी उसी तरह सीरीयल | चलचित्र सर्वाधिक लोकप्रिय है लघुफ़िल्म आदि अनेकों विधाएं हैं इन विधाओं में , विधाओं में परिवर्तन अवश्य हो गया है परन्तु दोनों का उद्देश्य भरत मुनि द्वारा कथित लोकरञ्जन ही है इसके साथ ही इन | चलचित◌्रों में भी उन्हीं नियमों का प्रयोग होता है भले ही प्रयोक्ता को उन नियमों का ज्ञान न हो होते हैं निश्चय ही जो चलचित्र सफल| उनमें नाट्यशास्त्रीय नियमों के सफलतापूर्वक प्रयोग को देखा जा सकता है तथा जो असफल होते हैं उनमें भी नाट्यशास्त्रोक्त दोषों को भी देख◌ा जा सकता है रमेश सिप्पि | नामक चलचित्र की समीक्षा नाट्यनियमों के अनुसार की जायेगी "शोले" प्रस्तोतव्य शोधपत्र में| के द्वारा निर्देशित शोले जोकि अपने समय का लोकप्रिय चलचित्र रहा है इस चलचित्र ने पूरे एक सप्ताह तक सिनेमाघरों में रहने में सफलता प्राप्त की थ◌ी और १९७५ की सर्वाधिक कामाई करने वाली फिल्म बनी है शोधकर्ता के अनुसार इस चलचित्र की सफलता | , नायक , इन नियमों में प्रमुखरूप से नाट्यसन्धियों का निर्वहण | लचित्र की कथावस्तु का नाट्यनियमों पर खरा उतारनाका कारण था च संवादों की, नायिका तथा प्रतिनायक का चरित्र प्रभावोत्पादकता आदि इन नियमों से समीक्षा करने पर शोले चलचित्र की कथावस्तु | इसकी इसी विशेषता के कारण यह चलचित्र अपने समय के सफलतम चलचित्रों | क के कोटि की प्रतीत होती हैरूपकों में सर्वश्रेष्ठ नाट | में रहा है

शोले की कथावस्तु

कथावस्तु तीन प्रकार की होती है ऐतिहासिक इस चलचित्र का कथानक काल्पनिक तथा सामान्य | काल्पनिक तथा उत्पाद्य, कथावस्तु के दो भेद होते हैं १| इस दृष्टि से इसकी कथावस्तु प्रकरण के कोटि की कही जा सकती है | लोगों के जीवन से संबन्धित है | आधिकारिक तथा प्रासंगिक२ प्रासंगिक कथावस्तु के भी दो भेद हैं | पताका तथा प्रकरी -

आधिकारिक कथा

इस चलचित्र में आधिकारिक कथावस्तु ठाकुर वलदेव सिंह की है ठाकुर वलदेव सिंह रामगढ का रहने वाला पुलिस | गब्वर स | अधिकारी है जो कि रामगढ के इलाके के कुख्यात अपराधी गब्वर सिंह को गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर देता है◌◌ह अपने कौशल से जेल से भाग जाता है तथा वदले की भावना से गांव पर हमला कर ठाकुर के परिवार को मार देता है इतना ही नहीं अवसर पाकर वह ठाकुर के हाथ भी कटवा लेता है ऐसी स्थिति में भी ठाकुर हार नही मानता है वल्कि वो दो साहसी चोरों जय तथा | जिनके साहस का परिच ,वीरुय ठाकुर को पहले ही हो चुका है यता से अनेकों संघर्षों को पार करता हुआ ठाकुर अपने उनकी सहा , | लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है

पताका

इस कथानक में जय तथा वीरु की कथा मुख्य कथा की उपकारी है जय तथा वीरु को यद्यपि एक चोर के रूप में दर्शाया गया | है किन्तु वे नृशंसचोर नही हैं वे " जेलर से ठाकुर का यह कथन कि | उदारता आदि गुणों से परिपूर्ण है, वीरता ,उनका चरित्र चातुर्यता | |" खतरनाक हैं क्योंकि लडना जानते हैं तथा वुरे हैं मगर इन्सान हैं, वदमाश हैं पर वहादुर हैं दोनों के चरित्र के उज्जवल पक्ष को उद्धाटित करता है |दोनों का यही उज्जवल चरित्र ठाकुर को प्रभावित कर लेता है और ठाकुर दोनों को अपने साथ गांव ले आता है | इस प्रेम प्रसंग तथा गब्वर से संघर्ष करते हुए दोनों | गांव मे जय को ठाकुर की विधवा वहु से तथा वीरु को बसन्ती से प्यार हो जाता है जय की | की कथा आगे चलती है कथा पूर्णता को प्राप्त नही हो पाती है गब्वर के लोगों से संघर्ष करते हुए जय मार जाता है जिससे | इसके बाद वह गांव से चला जाता है और बसन्ती भी उसके साथ | क्रोधान्वित वीरु गब्वर को पकड कर ठाकुर को समर्पित कर देता है चली जाती है और इस प्रकार कथा पूर्णता को प्र◌ाप्त हो जाती है |

प्रकरी

अल्प समय तक चलने वाली तथा मुख्य कथा की उपकारी कथा प्रकरी कहलाती है इस चलचित्र में रहींम चाचा की कथा | प्रकरी हैं | जाते हुए गब्वर के आदमियों के द्वारा मारा जाता है, रहींम चाचा का पुत्र जिसे वह उसके मामा के पास भेजते हैं | कथावस्तु के गठन को मजबूत करने वाले तत्वों में पाञ्च संधियों का प्रमुख स्थान है संप्रति उन्हीं के अनुसार कथावस्तु की समीक्षा करते हैं |

मुख संधि

आरम्भ नामक कार्यावस्था तथा बीज नामक अर्थप्रकृति के योग से मुख संधि का निर्माण होता है ,त्पत्तिजिसमें बीजों की उ |अनेक प्रकार के प्रयोजनों और रसों की निष्पत्ति का हेतु होती हैइस कथानक में ठाकुर का गब्बर को मारने के ४| वह मुख सन्धि कहलाती है , संकल्प की पूर्ति के लिये जेलर को बुलाना तथा जय तथा वीरु की कथा के माध्यम से उत्साहित होना उत्साहित होना आरम्भ रूप पार तथाव्या बीज नामक अर्थप्रकृति है सूरमा भोपली कि कथा का प्रयोजन चलचित्र में हास्य उत्पन्न करना तथा पताका नायकों के | | चरित्र का उत्कर्ष है

प्रतिमुख संधि

प्रयत्न नामक कार्यावस्था तथा बिन्दु नामक अर्थप्रकृति के योग से प्रतिमुख सन्धि का निर्माण होता है इसमें जह |ाे लक्ष्य तथा अलक्ष्य की भांति बीज का प्रकाशन होता है उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं इस चलचित्र में ठाकुर द्वारा जय तथा वीरु की प्राप्ति लक्ष्य ५| प्रति का प्रकाशन है तथा जय और वीरु द्वारा ठाकुर के घर से पैसे चुरा कर भागने का प्रयास अलक्ष्य है इस प्रकार यहांमुख सन्धि है|

गर्भ संधि

प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था तथा पताका नामक अर्थप्रकृति के योग से गर्भ सन्धि का निर्माण होता है इसमें खोये हुए बीज का बार | तथा वीरु इस चल चित्र में जय | बार अन्वेषण किया जाता है बीज कभी नष्ट होता दिखता है तो कहीं प्राप्त होता द्वारा गब्बर तथा गब्बर के आदमियों को परास्त करने से लक्ष्य की प्राप्ति तथा वीरु तथा बसन्ती की पताका प्रारम्भ होने से बीज की अप्राप्ति दिखाई देती है | | जय तथा वीरु की पताका के कारण ऐसा लगता है कि गब्बर को पकडने रूप बीज कहीं खो गया है

विमर्श संधि

नियताप्ति नामक कार्यावस्था तथा प्रकरी नामक अर्थप्रकृति के योग से विमर्श सन्धि का निर्माण होता है इस चलचित्र में रहीम चाचा | जिससे क्रोधित हो कर | गांव से जाते हुए उनके बेटे को गब्बर के द्वारा मारा जाना कथा में एक नया संचार करता है | की कथा प्रकरी है जय तथा वीरु गब्बर के आदमियों को मार देते हैं तथा तुम एक मारोगे हम चार मारेंगे लिखा हुआ पत्र गब्बर तक भिजवा देते हैं जिसके | शुरु हो जाता है और फल की नियताप्ति भी :फलस्वरूप गब्बर बसन्ती को उठवा लेता है और यहीं से लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संघर्ष पुन निश्चित हो जाती है |

निर्वहण संधि

फलागम नामक कार्यावस्था तथा कार्य नामक अर्थप्रकृति के योग से निर्वहण सन्धि का निर्माण होता है बिन्दु आदि समाहृत ,बीज | बसन्ती को बचाने के लिए जय जात | ठाकुर अपने जूतों में कीलें लग्वाता है | होकर लक्ष्य के लिये संघर्षरत हो जाते हैंा है तथा संघर्ष करते हुए मारा जाता है जय के मरने से क्रोधित वीरु गब्बर के आदमियों को मार कर गब्बर को मारता है तभी ठाकुर आकर वादे के | अन्त में वीरु | गब्बर के मरने रूप फलागम से आधिकारिक कथा पूरी हो जाती है | अनुसार वीरु से गब्बर को बचाकर स्वयं मारता है गांव से चला जाता है और उसके साथ जाती है बसन्ती | इसी के साथ वीरु की पताका भी पूरी हो जाती है |

रस

शोले वीररस प्रधान सामाजिक कथानक है ७| नाट्याचार्यों के अनुसार नाटक में वीर अथवा शृङ्गार रस को प्रधान होना चाहिये|

नायक

नांट्यनियमों के अनुसार चार प्रकार के नायक होते हैं धीरोद्धत्त शोले चलचित्र में जय तथा वीरु ,धीरललित ,धीरोदत्त ,धीरप्रशान्त | की वीरता के कारण सामान्य रूप से उन्हे ही नायक माना गया है पर नाट्य नियमों के अनुसार चलचित्र की आधिकारिक कथा का वह ही कथा के फलं को प्राप्त | नायक ठाकुर बलदेव सिंह हैकरता है यद्यपि जय तथा वीरु वीरतापूर्वक गब्बर से युद्ध करते हैं परन्तु | गब्बर से उनका कोई निजी वैर नही है वे तो केवल ठाकुर बलदेव सिंह के आश्वासनपर की वह उन्हे मदद के बदले में धन देगा इस स्वार्थ के कारण ठाकुर के किये काम करते हैं यद्यपि बाद में जय तथा वीरु अपने धन के स्वार्थ को त्यागकर ठाकुर से भावनात्मक रूप से मिल जाते हैं परन्तु गब्बर को मारने में उनका व्यक्तिगत स्वार्थ नही है इसलिये ये तो कहा जा सकता है कि ठाकुर की कार्य सिद्धि जय तथा वीरु के अधीन है परन्तु वे नायक नही कहे जा सकते| नायक ठाकुर बलदेव सिंह है| कथा में गब्बर का मुख्य वैरी ठाकुर है| गब्बर का अत्याचार उसके गांव पर होता है जिसमें ठाकुर का परिवार मार जाता है केवल उसकी बहू बचती है | इस घटना के प्रतिशोध में ही आगे की कथा का संचालन होता है| इस घटना से ही ठाकुर के मन में प्रतिशोध के शोले पनपते हैं जो जय तथा वीरु की सहायता से गब्बर से

बदला लेने के लिये उसे प्रेरित करते हैं और अन्त में जय के वीरु के द्वारा गब्बर को मारने से रोककर ठाकुर के द्वारा गब्बर को मारा जाना, ठाकुर के नायकत्व को सिद्ध् करता है| नाट्य नियमों के अनुसार इस चलचित्र का नायक ठाकुर बलदेव सिंह धीरोदात्त नायक है| हाथों के न रहने पर भी हार न मानना तथा वीरता पूर्वक युद्ध करना उसकी विशेषता है|

पताका नायक

जय तथा वीरु यद्यपि आधिकारिक कथा के नायक नही माने जा सकते तथापि उनकी भूमिका के विना कथा पूर्ण नही हो सकती है ज :वस्तुत |य तथा वीरु की कथा पताका है जो मुख्य कथा की उपकारी रूप में अपनी भूमिका निभाती है इन दोनों को भी :अत | | पताका नायक कहा जा सकता है

पताका नायक के रूप में जय धीरोदात्त नायक है तथा वीरु धीर ललित नायक है यद्यपि वीरु भी वीर है परन्तु बसन्ती के प्रेम प्रसंग में उसकी चपलता उसके ललित स्वभाव को बाताती है |

नायिका

आधिकारिक कथावस्तु की नायिका का चरित्र प्रकट नही हुआ है नायिका तीन | किन्तु पताका नायिका दो हैं बसन्ती तथा राधा| नाट्य नियमों के अनुसार बसन्ती एक परकीय | परकीया तथा साधारणा,प्रकार की होती है स्वीयाा नायिका है जो कि अपनी मौसी के अधीन है बसन्ती कन्या नायिका है तथा राधा यद्यपि | कन्या तथा पर पुरुष विवाहिता – परकीया नायिका भी दो प्रकार की होती है| विधवा नायिका है है परन्तु वह वह अपने पितृतुल्य ससुर के अधीन है इसलिये उसे परकीया नायिका ही कहा जाना चाहिए परकीया नायिका के भेदों में उसे कन्या ही माना जाना चाहिए क्योंकि वह नवयुवती तथा लज्जा आदि गुणों से युक्त है |

विष्कम्भक =इंटर्ल्यूड/फ्लैष्वाक्

विष्कम्भक तथा प्रवेशक दोनों कथा वस्तु के आधार की भांति कथा को अवलम्बन प्रदान करते हैं | इस चलचित्र में दो विष्कम्भक हैं | नियम के अनुसार विष्कम्भक प्रथम अंक में आता है इस चलचित्र में भी ठाकुर द्वारा जेलर को जय तथा वीरु की वीरता को बताना विष्कम्भक है जो कि प्रारम्भ में आया है | विष्कम्भक मध्यम पात्रों द्वारा प्रयोजित होता है जिनमें राजा से भिन्न अमात्य मन्त्री सेनापति की गणना की जाती है परन्तु इस चलचित्र में स्वयं नायक द्वारा कथित है इसको दोष नही मानना चाहिए क्योंकि समय के साथ नायक का स्तर तथा कोटि बदल गयी है , ठाकुर यद्यपि नायक है तथापि उसकी कोटि सेनापति की है राजा की नही | दूसरा विष्कम्भक जय तथा वीरु की सहायता न करने पर ठाकुर से वीरु प्रश्न करता है कि आप ने हमारी सहायता क्यों न कि इसके उत्तर में ठाकुर द्वारा अपने परिवार का नाश तथा हाथों के कटने का कथन दूसरा विष्कम्भक है जो कि मध्य में आया है|

प्रवेशक-

जय द्वारा पूछे जाने पर हरिराम काका द्वारा राधा के विवाहपूर्व स्थिति का वर्णन प्रवेशक है |

अंकास्य

किसी अंक के अन्त के कथन द्वारा अग्रिम अंक के अर्थ की सूचना देना अंकास्य कहा जाता है | इस चलचित्र के प्रारम्भ में जय तथा वीरु के चरित्र कथन के बाद जेलर द्वारा ये कहना कि ऐसे लोगों का क्या ठीकाना इसके साथ ही जय तथा वीरु के द्वारा एक बाइक चोरी कर भागने के दृश्य से अग्रिम अंक प्रारंभ हो जाता है | यद्यपि वर्तमान के चलचित्रों में नाटक के समान अंक विभाजन नही होता है तथापि सुधी दर्शक कथा में अंक विभाजन को समझ सकता है | इस प्रकार शोले चलचित्र नाट्यतत्वों का संक्षिप्त निदर्शन करने का प्रयास किया गया | इस चलचित्र में इसके अतिरिक्त संवादों की सार्थकता ,गीतों की सरसता तथा दृश्यों की सजीवता आदि अनेकों गुण विद्यमान हैं जो इस चलचित्र को सुदृढ बनाते है | यद्यपि इस चलचित्र में यथावत सभी नाट्यनियमों का प्रयोग किया गया हो ऐसा नही है परन्तु अधिकांशत: इस चलचित्र में नाट्यनियमों का प्रयोग परिलक्षित होता है जो कि इस चलचित्र की सफलता का कारण है | नाटक हो अथवा चलचित्र दोनों का उद्देश्य लोकरंजन है इसलिये लोकरंजन के लिये यथावश्यक नियमों में शैथिल्य भी श्लाघ्य है |महाकवि विल्हण के शब्दों में कवि यदि विशेष प्रौढी के आधान के उद्देश्य से पदों का प्राचीन रीति के अनुसार प्रयोग नही करता है तो यह निंदनीय न होकर वन्दनीय ही है |[८]

संदर्भग्रन्थ

१ .३दशरूपक) "| अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्"३९(
२ तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासंगिकं विदु.१दशरूपक) || :११ (
३ प्रकरी च प्रदेशभाक्) |दशरूपक १(१३.
५ मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभव) || बीजारम्भसमन्वयात्.......... :दशरूपक १(२५-२४.
६ लक्ष्यालक्ष्य तयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्) |दशरूपक १(३०.
७ एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीर(३३.३) दशरूपक | शृङ्गार एव च :
८ प्रौढीप्रकर्षेण पुराण रीति व्यतिक्रम.१विक्रमांकदेवचरित्तं) पदनाम :शलाघ्यतम :१५

नाट्यशास्त्रोक्तरससूत्रव्याख्यानम्

श्री जीतेन्द्र कुमार गुप्ता
शोधच्छात्रः, साहित्यविभागः,
रा.सं.सं., क.जे.सोमय्यासंस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

रसः कथमनुभूयते? इति गूढं प्रश्नं समादधन् नाट्यशास्त्रे भरतमुनिः प्राह "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः" इति । अस्यैव सूत्रस्य व्याख्यानं भट्टलोल्लट-श्रीशंकुक-भट्टनायकाभिनवगुप्तपादैः मीमांसा-न्याय-सांख्य-शैववेदान्तदर्शनानुसारिभिः व्याख्यातृभिर्भिन्नभिन्नतया कृतम्। एवमत्र भट्टलोल्लटस्योत्पत्तिवादः-श्रीशंकुकस्यानुमितिवादः-भट्टनायकस्य भुक्तिवादः-अभिनवगुप्तस्याभिव्यक्तिवादश्च प्रथितास्सन्ति। एतेषां विचारो यथा-

१. भट्टलोल्लटस्योत्पत्तिवादः -

अभिनवगुप्तपादाचार्येण स्वकीयाभिनवभारत्यां भट्टलोल्लटस्य मतोल्लेखः कृतः। एषा रससूत्रस्योपरि प्रथमा व्याख्या वर्तते। एतेन हि "संयोगात्" इत्यस्य कार्यकारणभावसम्बन्धः इत्यर्थः तथा "निष्पत्तिः" इति पदस्योत्पत्तिः इत्यर्थः गदितः। अयं मीमांसकोऽभिवादी आसीत्। यथा एकैव बाणः कवचं निर्भिद्य शरीरे प्रविश्य प्राणानपहरति, तथैव एकैवाभिधाव्यापारः वाच्य-लक्ष्य-व्यङ्ग्यार्थानां प्रतिपादको भवति। एतन्मतं मम्मटेनोद्धृतं यथा - " सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतराऽभिधाव्यापार" इति । अस्य सारः एवं प्रकारेणास्तीति -

* स्थायिभावस्य सूत्रे उल्लेखो नास्ति, किन्तु मतेऽस्मिन् तस्य रसमूलरूपेण पृथगुल्लेखः सञ्जातः। स्थायिभावेन सह संयोगः स्वीकृतः।
* अयञ्च स्थायिभाव आलम्बन विभावेभ्यःउत्पन्नो भवति (अत एवैनमुत्पत्तिवादनाम्ना व्यवहरन्ति) एवंव्यभिचारिभावैः पुष्टीभूय अनुभव द्वारा व्यक्तीभूयानुकार्ये रसरूपेण तिष्ठति।
* नटे नायं स्थायिभावस्तिष्ठति किन्तु रूपसमानतया विद्यमानत्वेन तत्र (नटे) एतस्यारोपो क्रियते, अत एवैवमित्यादि इत्यपि कथयन्ति शिष्टाः।
* अभिनयकुशलतयाऽऽरोपितः स्थायिभावः सामाजिकेषु चमत्कारहेतुः सञ्जायते। नतस्यानुकृतिसफलतया उत्पन्नः सामाजिकमनसि चमत्कारजन्य आनन्दात्मकोरसो निष्पद्यतेश्रीशङ्कुकस्यानुमितिवादः

नैयायिकः शङ्कुकः विभावादिसाधनेषु रसरूपसाध्येषु च अनुमाप्यनुमापकभावं कल्पयति। यथा पर्वते धूमं दृष्ट्वा "पर्वतोऽयं वह्निमान्, धूमत्वात्" इत्येपरामर्श द्वारा पर्वते वह्निस्थितेरनुमितिस्तथैव नटे रामादिवदनुभादिकं दृष्ट्वा सामाजिकास्तत्र रसस्थितिमन्वन्ति। एवञ्च रसोऽनुमेयोऽनुमितिगम्यो वेति श्रीशङ्कुको मनुते। अथ चैतदतिरिक्तं चित्रतुरगन्यायस्य कल्पनां करोति। एतत्कल्पनानुसारेण नटो न वास्तविको दुष्यन्तः, किन्तु "चित्रे लिखिताश्ववत्" दुष्यन्त इति। कल्पनामेनां दशरूपकारोऽपि स्वीकरोति। सहृदये सामाजिके वा रसस्य स्थितिस्तथैव स्वीक्रियते यथा चित्रे अश्वः। श्रीशङ्कुकस्य मतसारांशो यत्-

* वास्तविकरूपेण अनुकार्यरूपान् (दुष्यन्त-शकुन्तला रामादीन्) एव विभावपदव्यपदेश्यान् वक्तुं शक्यते अस्माभिः। तदनुभावान् सञ्चारिणश्चानुभावान् सञ्चारिणः कथयिष्यते।
* नटो ह्येताननुकरोति। सामाजिकास्तु चित्रतुरगन्यायेन नतमेवानुकार्यं बुध्वा तदनुभावादिद्वारा (क्रोधे दन्तान् सम्पिष्य मुष्टिदर्शनम्, शोकावेगेन केशाकर्षणम्, वक्षःस्थलताडनम्, भूमौ पतनम् इत्यादिद्वारा) नटे स्थायिभावस्यानुमानं किर्वन्ति।

भट्टनायकस्य भुक्तिवादः

काव्यादिद्वारा रसनिष्पतौ व्यापारत्रयं स्वीक्रियते। तत्र प्रथमाभिधा, यया शब्दार्थयोः ज्ञानं भवति, द्वितीयो भावकत्वव्यापारो येनविभावादयो रत्यादिस्थायिभावश्च साधारणीकृताः सन्तः "परस्य न परस्येति ममेति न ममेति च" इत्यादिबन्धनान्मुक्ता उपभोगयोग्या जायन्ते। सीता शकुन्तला च जनकतनयाऽथवा रामकान्ता दुष्यन्तकान्ता न भूत्वा साधारणतया रमणीमात्रव्यपदेशयोग्ये भवतः। अयमाचार्यो भोगव्यापारं भोजकत्वमिति कथयति। नाटके च नोक्तव्यापारत्रयं किन्त्वाद्यद्वमेव। भोजकत्वव्यापारेण हि रजस्तमसी अभिभूय सत्त्वस्याविर्भावो भवति। चित्तवृत्तीनां शान्ततया स एवानन्दस्य कारणं भवति। मतमिदं सांख्यमतस्यानुकूलम्। एवञ्च रससूत्रस्य "सम्योगात्" इत्यस्य "भोज्यभोजकभाव सम्बन्धात्" ; "निष्पत्ति" रित्यस्य "भुक्ति" रित्यर्थः " भट्टनायकेन गदितम्।

अथैतन्मतसारांशः -

भट्टनायकस्यमेव विशेषता यदेतेंन स्वमनस्येवं चिन्तितं दुःखेन कथं सुखम्। नायिकादि विभावेषु सामाजिकानामानन्दावप्त्यर्थमभिधादिव्यापारत्रयमङ्गीकृतम्। तत्र भावकत्व व्यापारेण निजपरादिभेदं दूरीकृत्य तद्भावस्य पूर्तिभवति । एतन्मतानुसारेण काव्यनाटकादिविभावादयोऽभिधाद्वारा बोधगम्या भवन्ति। तदनन्तरं विभावादयो भावकत्वव्यापारेण निजपरबन्धनाद्विमुच्यार्थात् साधारणीकृतास्सन्तः सहृदयोपभोगयोग्या भवन्तीति।

अभिनवगुप्तस्याभिव्यक्तिवादः -

भरतसूत्रव्याख्यानविषये व्यञ्जनावादिनोऽभिनवगुप्तस्यैवान्तिमं मतम्। रसशास्त्रालङ्कारयोर्मध्ये मतमिदं दार्शनिक-मनोवैज्ञानिकाधारभित्तिहेतुना अत्यधिकं प्रसिद्धत्वमुपगतम्। अयमभिनवगुप्तः व्यञ्जनावादी शैवदार्शनिकः वेदान्ती ध्वनिवाद्यालङ्कारिक आसीत्। अस्य व्यक्तिवादस्यायं तावतसारांशो यत् -

* रसनिष्पत्तिः (रसाभिव्यक्तिः) सामाजिकेषु भवति।
* सामाजिकेषु स्थायिभावो वासना(संस्कारः) रूपेण स्थिरतया तिष्ठति।
* साधारणीकृतविभावदिद्वारा स्थायीभाव उद्बुद्धो भवति। विभावदिसंयोगादव्यक्यरूपेणाभिव्यक्तो भवति, यता जलबिन्दुपतनेन मृत्तिकायाः गन्धस्याभिव्यक्तिर्जायते तद्वत्।
* काव्यादिनां पाठो नाटकाभिनयः सहृदयानां स्थायिभावस्य जागृतिसाधनम्। पाठकदर्शकयोः स्वोद्बुद्धस्थायिभावस्य शुद्धरूपे तन्मयतया चित्तवृत्तिनामेकाग्रत्वाद् ब्रह्मानन्दसहोदराखण्डरसस्यानन्दप्राप्तिर्भवति।
* रससूत्रस्थ "संयोगात्" इत्यस्य व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावात्" इत्यर्थः; "निष्पत्ति"रित्यस्य "अभिव्यक्ति"रित्यर्थः।

****

भरतकृतं रससूत्रं तत्समीक्षणञ्च

स्मिताकुमारी सामन्तराय
शोधच्छात्रा
साहित्यविभागः ,,सं.सं.रा,
कमुम्बई,सोमय्यासंस्कृतविद्यापीठम्,जे.।

भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे उक्तम्- "न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते" इति । अत्र कथं रसनिष्पत्तिः इति जिज्ञासायां तेन उच्यते "विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" अत्र "रस्यते आस्वाद्यते इति रसः" इत्यनेन भावादयोऽपि गृह्यन्ते। अतएव रसादिः रसादयः तु रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलताः तत्र रसः -

श्रृङ्गारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥

अत्र विभावकारणानि, अनुभावाः कार्याणि, व्यभिचारिणः च सहकारिणः एषां संयोगात् रसस्य निष्पत्तिः उक्तं च मम्मटेन -

कारणान्यथकार्याणि सहकारिणि यानि च
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।
विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥

अत्र विभाव आलम्बन् उद्दीपन- रूपेणद्विधः। आलम्बन विभावःशकुन्तलादुष्यन्तादिरूपः। उद्दीपन विभावः उद्यान-चन्द्रिकादि रूपः। अनुभावः आलिङ्गन- चुम्बनादि रूपः। व्यभिचारिणः रोमाञ्च-स्वेद इत्यादयः तथा चोक्तं मुनिना - "विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः" इति । अत्र "संयोग" शब्दं "निष्पत्तिः" शब्दं चाश्रित्य विविधवादाः प्रादुरभवन्। प्राधान्येन निम्न चत्वारः वादाः सन्ति।

१. भट्टलोल्लटेन मीमांसादर्शनमाश्रित्य उत्पत्तिवादः।
२. श्रीशङ्कुकेन न्यायदर्शनमाश्रित्य अनुमितिवादः।
३. भट्टनायकेन सांख्यदर्शनमाश्रित्य भुक्तिवादः।
४. अभिनवगुप्तेन वेदान्तदर्शनमाश्रित्य अभिव्यक्तिवादः।

१. भट्टलोल्लटस्योत्पत्तिवादः -

तन्मतानुसारं विभावानामनुभावानां व्यभिचारिभावानां च संयोगेन रसस्योत्पत्तिर्भवति। तन् मतानुसारं संयोगात् इत्यस्य विभावैः सह उत्पाद्य उत्पादकभावसम्बन्धः स्थायिभावानां तेन रसस्योत्पत्तिरित्यर्थः। द्वितीयः अर्थः अनुभावैः सह स्थायिभावानां गन्यगमकसम्बन्धः तेन रसस्योत्पत्तिः प्रतीतिः इति। तृतीयः अर्थः व्यभिचारिभावैः सह स्थायिभावानां पोष्यपोषकभावसम्बन्धः तेन रसस्य निष्पत्तिः पुष्टिः इति। रसमुख्यावृत्ति अनुकार्य रामादौ तदनुकरणात् च अभिनेतृषु च भवति। एतत् मतं न युक्तः रसः कदापि अनुकार्ये (रामादि) नटे च न सम्भवति। नाटकादौ तेषां अभावात्। रसस्य प्रतीतिः सामाजिकेषु कथं भवतीति मुख्यविषयः तत्र अप्रधानिकृतः एव अतः मतमिदं न युक्तम्।

२. श्रीशंकुकस्यानुमितिवादः -

शम्कुकः न्यायदर्शनमाश्रित्य अनुमितिवादं प्रस्तौति। प्रतीतिः चतुर्धा - १) सम्यक प्रतीतिः २) मित्याप्रतीतिः ३)संशय प्रतीतिः ४. सादृस्य प्रतीतिः। सामाजिकाः चित्रतुरगन्यायेन रामोऽयं प्रतिपत्या सामाजिकानां वासनया रसानुभूतिः। अत्र अनुमानेन रसनुभूतिः जायते। शंकुकः भरतसूत्रे संयोगशब्दस्यार्थः गन्यगमकाभावसम्बन्धः निष्पत्तिः शब्दस्यानुमितिः इति स्वीक्रियते। एतदपि स्वीकर्तुं न शक्यते यद् एतद् मतमपि न युक्तम्। अत्र रसास्वादनत्वं सामाजिकेषु न भवति। अनुमिति द्वारा आस्वादनस्य असम्भवात्।

३. भट्टनायकस्य भुक्तिवादः -

भट्टनायको रसं न अनुमेयं मन्यते अपि तु भोज्यं मन्यते। तन्मते संयोगस्याभिप्रायः भोज्यभोजकभवः अस्ति निष्पत्तेः च तात्पर्यं भुक्तिः च वर्तते। रसानुमिति प्रक्रियायाः अवस्था त्रयं १) अभिधा, २) भावकत्वम्, ३) भोजकत्वम् च तत्र अभिधेया शब्दार्थे अवगते भावकत्व व्यापारेण विभावादिनां साधारणीकरणं भवति। ततश्च भोजकत्व व्यापारेण रसो भोज्यते आस्वाद्यते इत्यर्थः।

भट्टनायकस्य इमं सिद्धान्तम् अपि अलङ्कारिकाः न स्वीकुर्वन्ति कारण किं चेत् भावकत्व भोजकत्व व्यापारयोः कल्पना स प्रस्तौति । एतौ द्वौ व्यापारौ नानुभवसिद्धौ तथा स्थायिभावस्य भोगः स्वीक्रियते। भट्टनायकेन स स्थायिभावः रामादिगत नटादिगत अथवा सामाजिकगत इति स्पष्टरूपेण न स्वीकृतः।

४. अभिनवगुप्तस्य अभिव्यक्तिवादः -

अभिनवगुप्तेन रसस्याभिव्यक्ति व्यञ्जनावृत्या स्वीकृता। रसनिष्पतिः इत्यस्य रसाभिव्यक्तिः इत्यर्थःस्वीकुरुते। अभिनवगुप्तः रसं व्यङ्ग्यं मनुते। रसः व्यञ्जनया सहृदयं प्रभावयति। रसास्वादः च सहृदयैव अत्र संयोगः शब्देन व्यङ्ग्यव्यञ्जक सम्बन्धो गृह्य्यते । स्थायिभावो व्यङ्ग्यः विभावदयः च व्यञ्जकाः। व्यञ्जनाया विभावेन व्यापारेण विभावानां स्थायिभावानां च साधारिकरणं भवति । एवं रामादि अनुकार्याणां भावाः वैशिष्ट्य विरहिताः सन्तः सहृदयानां हृदयस्थितान् वासनारुप भावान् उद्बोदयति वासना एषा सुप्तावस्थायां विद्यमान अभिनयादिभिः काण्यार्थे प्रकाशिते जागर्ति साधारिकरणेन सहृदयस्य वासना संवादो भवति । सुगुप्तः च स्थायिभावो आनन्दास्तादं कारयति एषा एव रसास्वादः अस्मिन्
आस्वादे एवा रसस्य स्थितिः रसानुभूतिःइयं सामान्यानुभूतिभिन्नत्वाद् उदातत्वत् सर्वजनविद्यत्वाद् च अलौकिक कथ्यते रसोऽयं सहृदयसंवेदाः
अभिनवगुप्तस्य मतम् इदं अद्यत्वे अपि सर्व एव काव्यतत्वज्ञैः गृह्यते स्वीक्रियते प्रसस्यते च।

****

नाट्यंशास्त्रदिशा शृङ्गाररसनिरूपणम्

रविकुमारः
शोधच्छात्रः
के.जे.सोमैया संस्कृतविद्यापीयम
विद्याविहारः, मुम्बई

रसशब्दश्रवणेनैव मनसि प्रश्नः जायते यत् - कोऽयं रसः ? ऋग्वेदे गदितं यत् -"दधानः कलसे रसाम्" इति तथा तैत्तिरीयोपनिषदि उक्तम् - "रसो वै सः, रस ह्येवायंलब्ध्वाऽऽनन्दीभवति" इति । मम्मटेनापि निगदितं यत् - "स्थायिभावो रसः स्मृतः" इति । काव्यशास्त्रे रसस्य महत्वविषये नाट्यशास्त्रे प्रतिपादितं यत् - "न हि रसादृते कश्चिदर्थः" प्रवर्तते इति। इत्युक्ते रसेन विना नाट्यकाव्ययोः किम् अपि प्रयोजनं नास्तीति। काव्यस्यात्मा रसः। तस्मादेव आचार्यविश्वनाथेन निगदितम् - "वाक्यं रसात्मकं काव्यमिति"
मुनिनापि उक्तम् - "यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतमन्नं भुञ्जानः रसमास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषाःहर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्गसत्तवोपेतान् स्थायिभावान् आस्वादयन्तिसुमनसः प्रेक्षकाः पुरुषाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति"। इति।

रसोऽयं नवविधः । स यथा -
शृङ्गारहास्यकरुण रौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्चेते नाट्ये रसाः स्मृताः॥

शृङ्गाररसः
शृंङ्गं हि मन्मथोभ्देदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसःशृङ्गारइष्यते ।।
परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् ।
आलम्वनं नायिकाः स्युर्दक्षीणाद्याश्च नायकाः।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः।।
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्साव्यभिचारिणः।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोयं विष्णुदैवतः।।
विप्रलम्भो सम्भोग इत्येष द्विविधो मतः (सा.द.तृतीयपरिच्छेदे)

विवेचनम् –शृङ्गमृच्छतीतिशृङ्गारः । शृङ्गं नाम कामुकयुगलयोरुत्पीडकम् ।अनेन कामोद्भवेन यः सम्भूयते सःशृङ्गार इत्युच्यते। आस्य रसस्यालम्बनविभाव उत्तमप्रकृतिको नायकः । परकीया अनुरागशून्या वेश्यानायिका अस्य आलम्बनानि न भवन्ति । तद्भिन्नाः नायिकास्तथा च दक्षिणनायका आस्योपयुक्तमालम्बनानि,चन्द्र -चन्द्रिका-चन्दनानुलेपन- भ्रमरझङ्कारादय उद्दीपनविभावा,भ्रुविक्षेप-कटाक्षादयोनुभावाः , औग्र्य-मरण-आलस्य-जुगुप्सादिव्यभिचारिभावान् विहाय अन्ये चास्य पोषकाः भवन्ति । रतिरस्य स्थायिभावः। वर्णः श्यामोदेवता च विष्णुः। सम्भोगः, विप्रलम्भश्चेति अस्य द्वौ भेदौ स्तः।

सम्भोगस्योदाहरणं यथा -
शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनैः
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकमालोक्य गण्डस्थलिं
लज्जा नम्रमुखी प्रियेण हसता वाला चिरं चुम्बिता।।

अत्र व्याजेन सुप्तः,निदित इति मत्वा च प्रियां चुम्बितः पतिः , तथा च उक्तस्वरुपा बाला आलम्बनविभावौ। शून्यं वासगृहमुद्दीपनविभावः । चुम्बनमनुभावः। लज्जाहासौ व्यभिचारिणौ । एतैरभिव्यक्तस्सहृदयविषय रतिभावः शृङ्गारः रसरुपतां भजते। अत्र सम्भोगगाख्यः श्रृङ्गारो भवति । अन्ये भेदोपभेदा अपि परिकल्पितास्सन्ति ।
विप्रलम्भो यथा
जयतितेऽधिकंजन्मनावृज, श्रयतइन्दिरांदिक्षुतावका।
स्त्वयिधृतासवस्त्वां विचिन्वते, शरदुदाशये साधुजात सत् ।।
विप्रलम्भ –

1. शृङ्गाररसस्य पन्चविधित्वम मम्मतानुसारम्।
2. तत्र पंदितराजस्य कोभिप्रायः ।
3. देवविषया रतिः कुतो न शृङ्गारः

आचार्य तुलसी प्रणीत संस्कृत साहित्य-काव्यशास्त्रीय समीक्षा रस के संदर्भ में

डा. प्रकाश वर्मा सोनी

रस

आचार्य तुलसी के संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय समीक्षा के अन्तर्गत रस पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य तुलसी विरचित संस्कृत कृतियों में रस का निर्देश करने से पूर्व रस के स्वरूप, भेद आदि का विवेचन अपेक्षित है, अतः उसका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

रस का स्वरूप

रस स्वरूप के विषय में भारतीय समीक्षाशास्त्र का मेरूदण्ड नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि के मतानुसार रस से रहित कोई भी अर्थ प्रवर्तित नहीं होता।[1] रस को परिभाषित करते हुए कहा गया है-रस उस अलौकिक एवं चामत्कारिक आनंद विशेष का बोधक है जिसमें सहृदय के हृदय को द्रुत, मन को तन्मय, हृदय-व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचना रचना को गद्गद् करने की क्षमता रहती हैं। यही आनंद काव्य का लक्ष्य है और इसी की जागृति वाङ्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य की प्राणप्रतिष्ठा करती है।[2] आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार रस का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है-''लौकिक कारण, कार्य, सहकारी के जो प्रतिबिम्ब आत्मरूप सामाजिक के चित्त पर आहित होते और अपना असाधारण्य खोकर सामाजिक की चित्तवृत्तियों को जगाते हैं, अतएव केवल काव्य तक सीमित विभाव, अनुभाव और संचारी नाम से पुकारे जाते हैं, उनके परस्पर में सम्मिलित रूप में हुए अनुभव से उद्बुद्ध और परिपुष्ट जो सामाजिक के हृदय की रति आदि स्थायी वृत्ति, उसी का उन विभावादि के साथ जो अनुभव, वही है रस।''[3] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने सत्वोद्रेक को रस का हेतु बतलाया है और रस को अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, वैद्यांतरस्पर्शशून्य, ब्रह्मानंदसहोदर तथा लोकोत्तर चमत्कार को प्राण कहा है।[4] तैतिरीयोपनिषद् में 'रसो वै सः'[5] सिद्धान्त द्वारा ब्रह्म को आनंद एवं रस-स्वरूप प्रतिष्ठित किया गया है।

रस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ

रस शब्द 'रस्यते आस्वाद्यते इति रस' इस व्युत्पत्ति द्वारा निष्पन्न हैं। जिसका अर्थ है आस्वाद्यमान या जिसका आस्वाद्यंन किया जा सके।[6]

(1) रस्यते-आस्वाद्यते इति रसः
(2) रस्यते अनेन इति रसः
(3) रसति रसयति वा रसः
(4) रसनं रसः आस्वादः[7]

प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार रस शब्द परमात्म रूप, रस, मधु, सोम, गन्ध, मधुर आदि अर्थ का द्योतक है। इसी प्रकार द्वितीय व्युत्पत्ति में रस शब्द, गुण, वीर्य, राग, देह आदि का वाचक है। तृतीय व्युत्पत्ति में धातु, पारद, द्रव्य, जल आदि अर्थों का बोध होता है। चतुर्थ अर्थ में शृंगारिक रसों के तात्पर्य को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार रस मुख्यता आस्वाधन के अर्थ को सूचित करता है। अभिप्राय यह है कि जिसके द्वारा भावों का आस्वादन हो उसे रस कहते है-''आस्वाद्यत्वाद्रसः''। काव्यजगत् का प्रजापति[8]

कवि अपनी आनन्दपिपासु प्रज्ञा सहृदय की पिपासा का शमन करने के लिए जीवन और जगत् को अपनी नवनवोन्मेष प्रज्ञा द्वारा नित नूतन रूप में अभिव्यक्त करता है और उसकी यह अभिव्यक्ति जन-मन-रंजन में समर्थ होती है। कवि की वाणी से प्रस्फुटित नूतन-नूतन उद्गार प्रमाता को आह्लादकता प्रदान करते हैं और यह आह्लादकता काव्यशास्त्रियों की दृष्टि में रस कहलाती हैं। रस वस्तुतः काव्य का प्राण हैं। जिस तरह प्राण शरीर के अन्दर रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है, वैसे ही रस शब्दार्थ के अन्दर उपस्थित रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है। काव्य के संदर्भ में रस काव्यास्वाद की अनुभूति का पर्याय बना हैं तो कला के संदर्भ में इसे कलास्वाद की अनुभूति का पर्याय माना गया हैं। सौन्दर्य-शास्त्र एवं मनोविज्ञान की शब्दावली में कलानुभूति को सौन्दर्यानुभूति भी कहा जाता है। अतः इस दृष्टि से काव्यानुभूति-कलानुभूति-सौन्दर्यानुभूति अर्थात् रस का व्यापक अर्थ सौन्दर्यानुभूति सिद्ध होता है।[9]

रस के घटकतत्त्व

रस के मुख्य चार अंग है-विभाव, अनुभाव, संचारीभाव एवं स्थायीभाव। इन्हें क्रमशः रस का कारणकार्य और सहकारी कारण कहा जाता है। इसकी अभिव्यक्ति विभाव, अनुभाव तथा संचारीभावों द्वारा व्यक्त स्थायीभाव से होती है।[10]
मम्मट के अनुसार आलंबन विभाव से उद्बुद्ध उद्दीपन से उद्दीप्त, व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट तथा अनुभावों द्वारा व्यक्ति हृदय का स्थायी भाव ही रस दशा को प्राप्त होता है।[11] काव्य के पढ़ने, सुनने या अभिनय रूप में देखने पर विभावादि के संयोग से निष्पन्न होने वाली आनंदात्मक चित्तवृत्ति ही रस है। काव्य में चमत्कार ही रस का प्राण है और चमत्कार का अर्थ चित्त का विस्तार या विस्फार अर्थात् अलौकिक आनंद की प्राप्ति।[12] इनका स्वरूप इस प्रकार है- विभाव - विभाव का तात्पर्य विशेष प्रकार का भाव है। इस शास्त्र में यह हेतु निमित्त या कारण का वाचक हैं। लोक में जो पदार्थ सामाजिक के हृदय में वासना रूप से स्थित रति, उत्साह, शोक आदि भावों के उद्बोधक कारण हैं, वे काव्य-नाटकादि में वर्णित होने पर शास्त्रीय शब्दों में विभाव कहलाते हैं।

'रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।[13]

विभाव सामाजिक के हृदयस्थित रत्यादि स्थायिभावों को उद्बोधित करते हैं, उनका विभाजन करते हैं, उन्हें आस्वाद-योग्य बनाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये रस को व्यक्त करने के कारण हैं। इस विभाग के आलम्बन एवं उद्दीपन ये दो भेद हैं।[14]
आलम्बन विभाव - आलम्बन विभाव उन्हें कहते हैं जो आलम्बन के द्वारा रस की निष्पत्ति कराते हैं अर्थात् जिसके आलम्बन से रस की निष्पत्ति होती है।[15] जैसे शृंगार रस मे नायक-नायिका[16], वीर रस में शत्रु तथा शांतरस में, तत्त्वज्ञानादि आलंबन विभाव हैं। आलंबन विभाव के दो भेद हैं-विषय और आश्रय। विषय को आलंबन भी कहते है। उद्दीपन विभाव - उद्दीपन विभाव उन्हें कहते हैं जो रस को उद्दीप्त या तीव्र करते है। इसकी सीमा में नायक-नायिका की विविध चेष्टाएं, आभूषण, वस्त्र तथा देश, काल, चन्द्र, चन्दन, उद्यान आदि आते हैं।[17]

अनुभाव - अनुभाव अर्थात् भाव के पीछे उत्पन्न होने वाला। ये विभाव के पश्चात् उत्पन्न होते हैं इसलिए इन्हें अनुभाव कहा जाता है। अनुपश्चात् भावः उत्पत्तिः यस्य सः अनुभावः अथवा अनुभावयन्ति इति अनुभावः अर्थात् जो उत्पन्न रत्यदि स्थायिभावों का अनुभव कराते हैं। भरत के अनुसार अनुभावों के द्वारा वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय अनुभावित होते हैं, अतः इनको अनुभाव कहते हैं।[18] धनंजय ने भावों के सूचक या भावों के भावन कराने
वाले विकार को अनुभाव कहा है। कटाक्ष या भुजाक्षेप आदि अनुभाव हैं।[19] साहित्यदर्पणकार के अनुसार हृदय में उद्भूत् रत्यादि भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले अंगादि व्यापार अनुभाव हैं।[20] जो कार्य माने जाते हैं, वे काव्य में अनुभाव अलौकिक संज्ञा से विभूषित होते हैं। इनके द्वारा हृदयस्थ रत्यादि भावों की अभिव्यक्ति होती है तथा उनका अनुभव होता है। ये मनोगत भावों के अभिव्यंजक बाह्य उपादान हैं। अनुभाव के चार रूप माने जाते है-आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक।[21]

संचारीभाव - संचारी या व्यभिचारी रस का सहकारी कारण माना जाता है। व्यभिचारी शब्द वि + अभि + चर के रूप में व्युत्पन्न है। यहां 'वि' विविधता का 'अभि' अभिमुख्य एवं 'चर्' धातु संचरण का बोधक है। संचारी शब्द का अर्थ है साथ-साथ चलना तथा संचरणशील होना। संचारीभाव स्थायिभावों के सहकारी कारण हैं, उन्हें रसावस्था तक ले चलते हैं, परन्तु स्वयं बीच में जलतरंगवत् आविर्भूत तथा तिरोभूत होते रहते हैं।[22] विविध प्रकार के रसों की और उन्मुख होकर संचरणशील होने के कारण इन्हें संचारीभाव कहा जाता है।[23] संचारी का संचरण वाक्, अंग तथा सत्त्वादि के द्वारा होता हैं। विविध प्रकार की रसानुभूति के समय प्रेक्षक के अभिमुख होने के कारण इसे व्यभिचारी कहा जाता हैं।[24] दशरूपककार ने समुद्र में लहरों की भांति उठते और डूबते भावों को व्यभिचारी भाव कहा है।[25] साहित्यदर्पणकार के मतानुसार जो भाव विशेष उत्कटता अथवा अनुकूलता से रत्यादि स्थायी भावों को रसास्वादन में परिणत कर उन्हें स्थायी भावों के सागर में बुद्बुद् की नाई उन्मज्जित या निमज्जित करते हैं, उन्हें व्यभिचारी भाव कहते है।[26] उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि विश्वनाथ ने संचारीभाव को सर्वांग सुंदर और स्पष्टरूप से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। संचारीभाव मनोविकार हैं, ये शरीर के धर्म नहीं है। यद्यपि मनोविकारों की कोई संख्या नियत नहीं की जा सकती, तथापि सुविधा के लिए संचारीभावों की संख्या 33 निर्धारित की गयी है-निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, भ्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चापल्य, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अवमर्ष, अवहित्थां, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।[27]
स्थायिभाव - रस के मूल भाव को स्थायिभाव कहते हैं। सहृदय के अन्तः करण में जो मनोविकार रूप से सदा विद्यमान रहते हैं तथा जिन्हें अन्य कोई भी अविरुद्ध भाव दबा नहीं सकता, उन्हें स्थायिभाव कहते हैं। यही स्थायिभाव ही (रस रूप) आस्वाद का अंकुरकन्द अर्थात् मूलभूत है -

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संयमः।।[28]

भरत ने स्थायिभावों की महनीयता को सिद्ध करते हुए कहा है-

यथा नाराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः। एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महाविहः।।[29]

उक्त भरत की परिभाषा को परिपुष्ट करते हुए साहित्यकौमुदीकार के अनुसार स्थायिभाव सुराजा की भांति प्रतिष्ठित हैं।[30] यह अन्य भावों को उसी प्रकार आत्मीय बना लेता हैं, जिस प्रकार विभिन्न सरिताओं के मधुर जल को लवणाकर अपने में मिलाकर बना देता है[31] सरस्वती कंठाभरणकार ने इसी भाव को संपुष्ट किया है।[32] जगन्नाथ के अनुसार आप्रबंध-स्थित रहने के कारण इसे स्थायिभाव की संज्ञा प्राप्त हुई है33 निस्संदेह रसावस्था तक पहुंचने का श्रेय स्थायिभाव को ही प्राप्त होता है। आचार्य भरत ने इनकी संख्या आठ मानी है। परन्तु कतिपय आचार्य इनकी संख्या नौ-दश तक मानते हैं। ये इस प्रकार हैं-रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा, भय, और निर्वेद।[34]

रस भेद

आचार्य भरत अपने नाट्यशास्त्र में आठ रसों की गणना करते है।[35] महाकवि कालिदास भी विक्रमोर्वशीय में आठ रसों की ओर ही संकेत करते है।[36] ये आठ रस इस प्रकार-शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। आचार्य उद्भट[37] ऐसे प्रथम काव्यचार्य है जो नौ रसों की कल्पना करते है। अभिनय गुप्त ने यह भी संकेत किया है कि कतिपय विद्वान तीन और रसों की कल्पना करते है स्नेह, वात्सल्य और भक्ति रस। परन्तु वे इनकी पृथक् सत्ता नहीं मानते।[38] आचार्य मम्मट भी शान्त को नवम रस के रूप में स्वीकार करते है।[39] आचार्य आनन्दवर्धन अपने ध्वन्यालोक में शान्त रस की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- 'तदेवमस्ति शान्तो रसः'।[40] वे इसका स्थायिभाव तृष्णाक्षय सुख या निर्वेद मानते है।[41] आचार्य विश्वनाथ वात्सल्य को भी रस मानते

है।[42] परन्तु इसके विपरीत आचार्य मम्मट वात्सल्य और भक्तिरस को भावध्वनि में अन्तर्भूत कर लेते हैं।[43] वस्तुतः आचार्य मम्मट की यह मान्यता युक्तिसंगत है। यतोहि सहृदयों को किसी भी चित्तवृत्ति का आस्वाद चमत्कारजनक लग सकता हैं। परन्तु यदि उनके आधार पर रस की गणना होने लगेगी तो रसों की संख्या अनन्त हो जायेगी।

शान्तरस का स्वरूप

आचार्य भरत ने शांतरस को प्रकृति रूप मानते हुए रत्यादि भावों को विकार माना हैं। विकार प्रकृति से पैदा होते हैं और फिर उसी में लीन हो जाते हैं।[44] ध्वन्यालोककार ने शांतरस को अंगी रस के रूप में स्वीकृत किया है।[45] शारदातनय के मतानुसार बाह्य पदार्थों का स्पर्श न होने पर शांतरस होता है।[46] अभिनवगुप्त के गुरु भट्टतौत शांत रस को मोक्ष फल प्रदायी होने से सभी रसों में प्रधान मानते हैं।47 संसार के प्रति अत्यन्त निर्वेद होने या तत्त्वज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शांतरस की प्रतीति होती हैं।[48] तृष्णा के क्षय से जिस सुख की प्राप्ति होती हैं वह मुख्य अनिर्वचनीय है, अलौकिक है। इसी कारण कुछ आचार्यों ने शांत रस को 'रसराज' भी कहा है।[49] उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता हैं कि शांत इस अव्यक्त परम आह्लाद में प्रतिष्ठा का अपर पर्याय है।

शांत रस के घटक तत्त्व

शांत रस का स्थायिभाव निर्वेद शम हैं। मम्मट ने इसके दो रूप स्वीकृत किए हैं। तत्त्व ज्ञान से विषयों में निर्वेद की उत्पत्ति होती है। वह स्थायी भाव होता है और जहां इष्टवियोग और अनिष्ट संयोग निर्वेद से उत्पन्न होता है वहां वह संचारिभाव होता है। आचार्य भरतमुनि भी दरिद्रता, अधिक्षेप, क्रोध, ताड़न, इष्टजन वियोग, अनिष्टजन संयोग एवं तत्त्व ज्ञान आदि के द्वारा निर्वेद नामक संचारी की उत्पत्ति मानते है।[50] शांत रस के स्थायिभाव के विषय में आचार्यों में विप्रतिमति है। आचार्य रुद्रट, 'सम्यक् ज्ञान' अथवा तत्त्वज्ञान को[51] आनंदवर्धन 'तृष्णाक्षय सुख' को[52] आचार्य मम्मट
प्रशम को[53] धनंजय 'सम' को[54] शांतरस का स्थायिभाव स्वीकार करते हैं।

शांतरस के स्थायी के विषय में एकमत हैं। तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद को स्थायी मानना। जिसका खंडन करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है कि सब विषयों में अग्राहिता बुद्धिरूप 'निर्वेद' वैराग्य स्वरूप है। वह तत्त्वज्ञान में उपयोगी है, क्योंकि विरक्त मनुष्य ऐसा प्रयास करता है, फलस्वरूप उसको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है और तत्त्वज्ञान से मोक्ष होता है। न कि तत्त्वज्ञान को जानकर निर्वेद को प्राप्त होता है और निर्वेद से मोक्ष प्राप्त होता है।[55] इससे स्पष्ट होता है कि अभिनव गुप्त ने तत्त्वज्ञान को ही मोक्ष का साधन माना है और उसी को स्थायिभाव मानते हैं। इसी की पुष्टि करते हुए उन्होंने कहा है-शांत का स्थायिभाव तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञान अन्य समस्त स्थायिभावों का आधार हैं। अर्थात् स्थाइयों का स्थायी हैं, अतः यही स्थायी भाव हैं। अन्य स्थायी यहां व्यभिचारित्व को प्राप्त हो जाते हैं।[56] शांत रस स्थायी भाव वाला एवं मोक्ष प्रवर्तक होता है। उसकी उत्पत्ति तत्त्व ज्ञान, वैराग्य एवं चित्तशुद्धि आदि विभावों के द्वारा होती है। उसका अभिनय यम, नियम, अध्यात्म, ध्यान, धारणा, उपासना सभी प्राणियों के प्रति दया आदि अनुभवों के द्वारा होतीं है। निर्वेद, स्मृति, धृति, सर्वाश्रम, शौच, स्तंभ, रोमांच आदि उसके व्यभिचारिभाव हैं। शांतरस मोक्ष
एवं आध्यात्मिक ज्ञान में प्रवृत्त करने वाला तथा तत्त्व ज्ञान के कारणों से युक्त होता है।[57]

आचार्य तुलसी के संस्कृत साहित्य में रस

आचार्य तुलसी विरचित शिक्षाषण्णवति, कत्र्तव्यषट्त्रिंशिका, पंचसूत्रम् व संघषट्त्रिंशिका में भरपूर शांत रस की उपस्थापना की गयी हैं। आद्योपांत शांत रस की प्रवहमान स्वच्छ सलिला का दिग्दर्शन होता है। उपर्युक्त संस्कृत साहित्य में शांत रस के उत्कर्ष का साक्षात् निदर्शन होता है। जैसे -

विष्वग् विषादपरिपूरितविष्टपेऽस्मिं, स्तस्यैव मौलिकमिहास्ति जनुर्जनस्य,
यस्य क्रियारचितिराचरणे भवेयु, रालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।58

जिस मनुष्य के कार्य, रचना और आचरण संसार-सिन्धु के अथाह जल में डूबते हुए मनुष्यों के उद्धार का कारण बनते हैं, उसी मनुष्य का जन्म इस दुःखों से परिपूर्ण संसार में मौलिक कहलाता है। आचार्य तुलसी ने शान्तरस की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है -

इक्षुवद्विरसाः प्रान्ते, सेविताः स्युः परे रसाः।
सेवितस्तु रस शान्तः, सरसः स्यात् परे परम्।।[59]

दूसरे सारे रस अन्त में ईक्षु की तरह विरस हो जाते हैं। एक शान्त रस ही ऐसा रस हैं, जो ज्यों-ज्यों सेवन किया जाता हैं, त्यों-त्यों सरस बनता जाता है।

आलम्बनं भवजले पततां जनानाम्, स स्यात् समस्तभुवने तिलकायमानः।
यस्य स्वयं विकृतयः प्रलयं प्रयाता, यत्सूक्तयः प्रकृतपापविमुक्तये स्युः।।[60]

जो स्वयं विकारों को नष्ट कर चुका हो, जिसके एक-एक वचन पूर्वकृत पापों से मुक्ति दिलाने वाले हों वही संसार का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य, संसार-समुद्र में डूबते हुए मनुष्यों के उद्धार का कारण बन सकता हैं। संसार की नश्वरता ने आलम्बन विभाव एवं विकार, पाप आदि ने उद्दीपन विभाव का कार्य किया है। त्याग, तप, चिन्तन आदि अनुभाव है। निर्वेद स्थायी भाव उद्बुद्ध होकर शान्त रस को उपस्थित कर रहा है।

येषां स्वभावरमणप्रकृताशयानां, पञ्चेन्द्रिय-प्रबल-भोग-परम्पराभिः।
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गं, ते धार्मिका ध्वनिधुरीणपदं लभन्ते।।[61]

स्वभावतः सुन्दर और सरल आशय वाले जिन मनुष्यों का मन पांचों इन्द्रियों की प्रबल भोग-सामग्रियों से किंचित् भी विकार-ग्रस्त नहीं होता, वे ही धर्म के मार्ग में प्रमुखता पा सकते हैं। यहां पर निर्वेद रूप इन्द्रिय संयम एवं वैराग्य रूप आलंबन, उद्दीपन विभाव के द्वारा बीज रूप में प्राप्त तथा उद्दीप्त होकर ध्यानादि अनुभावों से धर्म के मार्ग को पाना के द्वारा पोषित रोमांचादि सात्विकों से परिबृंहित होकर शांत रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा हैं। किं वा शांत रस की उत्पत्ति हो रही है।

श्रद्धा-क्षमा-विनय-मार्दव-सत्य-भक्ति, सारल्य-साम्य-शुचि-सद्गुणरत्नमालाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं, तस्यास्पदं भवति भ्रदमचिन्त्यमेव।।[62]

श्रद्धा, क्षमा, विनय, मृदुता, सत्य, भक्ति, सरलता, समता और शुचितारूप परम पवित्र गुणों की माला को जो निरन्तर अपने कण्ठ में धारण करता है, उसका निवास स्थान भी अनिर्वचनीय कल्याणमय बन जाता है। प्रस्तुत पद्य में
शांत रस का लक्षण घटित हो रहा है।

अध्यात्मचिन्ता सुचिरं विधेया, कदापि हेया न विमोक्षवीधिः।
गेया गुरोः सद्गुणगीतिरेव, ध्येया कृतिः सद्धिषणाधनेन।।
क्वचित् कलाया न मदो विधेयो, न दम्भचर्या न च दोषवृद्धिः।
कृतातिचारस्य विशुद्धिराशु, कार्या विकार्या न विचारवृत्तिः।।[63]

तुम्हें अपनी बुद्धि का सदुपयोग करना है तो तुम निरन्तर अध्यात्म चिन्तन करते रहो। मोक्षमार्ग को कभी मत छोड़ो। गुरुजनों के सद्गुणों याद करते रहो। अपने कार्यों को पैनी दृष्टि से देखते रहो। अपने में कोई कला या गुण हो तो उसका अहंकार मत करो। कपट से दूर रहो। दोष-वृद्धि को रोकने में सचेष्ट रहो। भूल से किए गए दोष का दण्ड लेकर शीघ्र ही उसकी विशुद्धि करते रहो और चित्तवृत्ति को

कभी विकार की ओर मत झुकने दो। सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और मोक्ष का विवेचन पढ़कर सहृदय पाठक की मनोवृत्ति में निर्वेद जागृत हो जाता है और वैराग्य भावना पुष्ट होती हैं।

वृद्धिर्यतः समुपयाति सुभारतेश्च, तां भारतीं भगवतां वदनाद्विवृष्टाम्।
धत्ते जनो य इहः कण्ठगतामजस्रं, शुद्धान्ततः सृतमलंकृतिभिः कृताभिः।।[64]

जिससे पवित्र आनन्द की वृद्धि होती है, भगवान के मुख से उत्पन्न उस वाणी को जो विशुद्ध भाव से अपने कण्ठ में धारण करता है, उसे अन्य अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं है। चित्त निग्रह आलम्बन विभाव भगवतवाणी उद्दीपन विभाव संताप संचारी से तत्वज्ञान जनित शम स्यायिभव होने से शांत रस उद्घाटित हो रहा हैं।

उपसंहार

इस प्रकार आचार्य तुलसी के साहित्य में शांतरस का शुभग एवं आस्वाद्यरूप विद्यमान है जो कृतियों के मूल स्वरूप के अनुरूप हैं। रस का प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है। आचार्य तुलसी के पंचसूत्रम्, शिक्षाषण्णवति, कातन्त्रषट्त्रिंशिका, संघषट्त्रिंशिका में प्रसंगाकूल रसों के प्रयोग होने से अपूर्व लावण्य की सृष्टि हुई। सहृदय पाठक का अन्तःकरण काव्य का श्रवण करते ही द्रवीभूत होने लगता है, प्रेम या करुण के प्रसंगों को सुनकर मनुष्य का चित्त अकस्मात् आर्द्र हो जाता है तभी वह उस भाव भूमि पर आसीन होता है और उसका चित्त आनन्द से आप्लावित होने लगता है। इन उपादानों के निकष पर परीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि आचार्य तुलसी काव्यशास्त्र के प्रयोगधर्मा, मर्मज्ञ उत्कृष्ट मनीषी है। आचार्य तुलसी के संस्कृत साहित्य का भावगाम्भीर्य, काव्यशास्त्रान्विति और तदनुरूप प्रस्तुतिकरण सर्वतोभावेश प्रशस्य है। इन समस्त रचनाओं ने अपने भाव प्रसूनों और रचना कौशल से वाग्देवी के भव्यप्रसाद का अभिराम अलंकरण किया है।

आचार्य तुलसी का संक्षेप परिचय

भारतीय वाङ्मय के अंतर्गत संस्कृत साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत भाषा में जैन साहित्य की (मधुर) सरिता द्वितीय शताब्दी से लेकर अद्यावधी तक निर्बाध गति से प्रवाहित होती रही है। यद्यपि साहित्य सृजन की यह धारा कभी तीव्र हुई तो कभी क्षीण परन्तु 8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक यह अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही। 18वीं शताब्दी के पश्चात भी संस्कृत भाषा में जैन साहित्य लिखा जाता रहा है। 20वीं सदी के प्रमुख संस्कृत जैन रचनाकारों में आचार्य तुलसी का अप्रतिम स्थान है। आचार्य तुलसी ने जैन सिद्धांतदीपिका, भिक्षुन्यायकर्णिका, मनोनुषासनम्, पंचसूत्रम्, शिक्षाषण्णवति, कातन्त्रषट्त्रिंशिका, संघषट्त्रिंशिका जैसे सुन्दर रचनाएं प्रस्तुत कर संस्कृत साहित्य के भण्डार को समृद्ध बनाया हैं।

संदर्भ सूची

1 भरत नाट्यशास्त्र 6.32 वृत्ति 92
2 काव्य दर्पण - पृ. 43
3 ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धन, अनुवादक डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी, पृ. 160
4 साहित्यदर्पण-विश्वनाथ, 3. 2-3.71
5 तैत्तिरीयोपनिषद् 2.7.1
6 भारतीय साहित्यशास्त्र कोश, पृ. 1038

7 काव्यात्मा मीमांसा, पृ. 12-13
8 अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मैः रोचते विश्वम् तथेदम् परिवर्तते।। ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत, पृ.530
9 रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन - पृ. 388
10 भारतीय साहित्यशास्त्र कोश,पृ. 1042-43

11 काव्यप्रकाश, 4.28.91
12 साहित्य दर्पण 3.3.72
13 तत्रैव 3.28 व्याख्या 95
14 तत्रैव 3.29
15 तत्रैव
16 आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात् - साहित्यदर्पण 3.29
17 आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा - साहित्य दर्पण 3.132
18 भरत-नाट्यशास्त्र, 7.5.106
19 दशरूपक 4.3.263
20 साहित्यदर्पण 3.132.200
21 भारतीय काव्य शास्त्र- डा. सत्यदेव चैधरी
22 स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः-साहित्यदर्पण, 3.140
23 संचारयति भावस्य गतिमिति संचारी। विशेषेण आभिमुख्येनस्थायिनं प्रति चरति इति व्यभिचारी-साहित्य कौमुदी, 4.7
24 भरत-नाट्यशास्त्र, 7; व्यभिचारीवृत्ति - 112
25 दशरूपक -धनंजय 4.7.267
26 साहित्यदर्पण 3.140
27 महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्त्व-डा. शिवबालक द्विवेदी, पृ. 50
28 साहित्यदर्पण 3.174
29 नाट्यशास्त्र- भरत 7.8
30 साहित्यकौमुदी 4.7
31 दशरूपक 4.34.301
32 सरस्वती कण्ठाभरण 5.19.541
33 रसगंगाधर समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 38
34 महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनितत्त्व-डा. शिवबालक द्विवेदी, पृ. 51
35 नाट्यशास्त्र-भरत, 6.15-17
36 विक्रमोर्वशीयम् .1.18

37 एन.एफ.आर.पी. पृ. 13
38 अभिनवभारती 1.342
39 काव्यप्रकाश 2.35
40 ध्वन्यालोक पृ. 384
41 तत्रैव पृ. 390
42 सादित्यदर्पण 3.251
43 काव्यप्रकाश 4.35
44 नाट्यशास्त्र-भरत, 7.4; प्रक्षिप्त 104
45 ध्वन्यालोक-आनन्दवर्धन, 4.5.572
46 भाव प्रकाशन, पृ. 48
47 लोचन, पृ. 434
48 साहित्यदर्पण 3.246-47
49 श्रीमद्भागवतः काव्यशास्त्रीय परिशीलन, पृ. 265
50 नाट्यशास्त्र- भरत 7.28-29.113
51 काव्यालंकार 15.15-16, 166
52 ध्वन्यालोक 3.431
53 काव्यप्रकाश 4.36-135
54 दशरूपक 4.45.352
55 अभिनवभारती, भाग 1.334
56 तत्रैव, भाग 1.624
57 नाट्यशास्त्र- भरत 6 प्रक्षिप्त अंश 103-4
58 शिक्षाषण्णवति 1
59 पंचसूत्रम् 4.5
60 शिक्षाषण्णवति 2
61 तत्रैव
62 तत्रैव 92
63 कातन्त्र्यषट्त्रिंशिका 37
64 शिक्षाषण्णवति 91

****




02 12 2015
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
02 12 2015
03 12 2015
03 12 2015
03 12 2015
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
UNDER MHRD.GOVT OF INDIA
02 12 2015


03 12 2015
03 12 2015
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
UNDER MHRD.GOVT OF INDIA
03 12 2015
03 12 2015
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
DEEMED UNIVERSITY
UNDER MHRD.GOVT OF INDIA